उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

MAJY - 102

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग
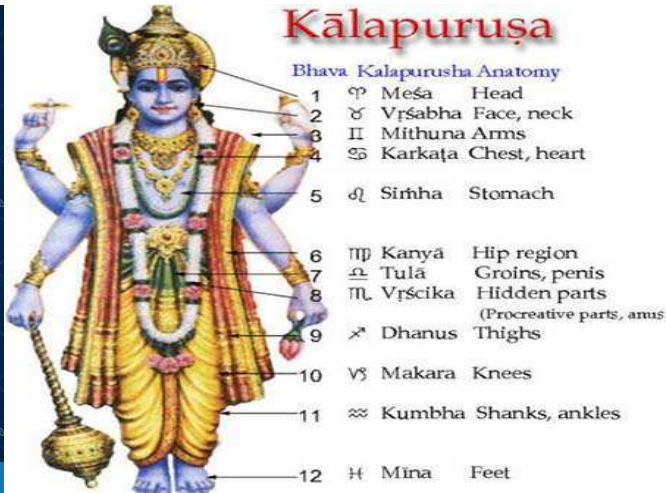
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं. – 05946 - 261122 , 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. देवेश कुमार मिश्र
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

प्रोफेसर चन्द्रमा पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रोफेसर शिवाकान्त झा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत
विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय
राष्ट्रिय महासचिव, अखिल भारतीय विद्वत परिषद्
वाराणसी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. पी.वी. सुब्रह्मण्यम एसोसिएट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, शिमला	**1**	**1, 2, 3**
प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग श्रीलालबहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	**2**	**1,2,3,4**
डॉ. शत्रुघ्न त्रिपाठी एसोसिएट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**3**	**1,2,3,4,5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1/4**	**4,5/ 1,2,3,4,5**

प्रकाशन वर्ष - 2019 **प्रकाशक** - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: - **ISBN NO : -**

MAJY -102

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन

अनुक्रम

एम0ए0 ज्योतिष

(MAJY-18)

प्रथम वर्ष

द्वितीय प्रश्न पत्र

सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल विवेचन

MAJY-102

खण्ड - 1
सिद्धान्त स्कन्ध

इकाई – 1 सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय तथा उसके महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। समय व काल के बारे में अब तक अनेक प्रकार के विवरण प्राप्त कर चुके हैं। ज्योतिष के बारे में भी विभिन्न प्रकार की जानकारियों से परिचित हुए है। काल व समय स्थान के आधार पर परिवर्तित होते हैं। स्थान स्थान में दिशा के आधार पर काल अलग अलग होता है। अर्थात् एक ही समय में भिन्न भिन्न स्थानों का काल भिन्न भिन्न प्रकार से होता है।

उदाहरण के लिये भारत के ही दो स्थान लेते है। कोलकत्ता भारत के पूर्वीभाग में है जिसका रेखांश ८८^0/ २१^{I}पू तथा वड़ोदरा भारत के पश्चिमी भाग में है जिसका रेखांश ७३^0/ १०^{I}पू. है। अर्थात् वड़ोदरा कोलकत्ता से १५^0/ ११^I पश्चिम में स्थित है।

अब इन दोनों स्थानों में दिशा भेद के कारण समय का अन्तर क्या होता है इसे यहाँ पर समझने का प्रयास करते है। जिस समय कोलकत्ता में सुबह के ६ बजते है ठीक उसी समय वड़ोदरा में सुबह के ५ बजते है। क्योंकि दोनों के बीच का १५^0/ ११^I अन्तराल में ६० मिनट ४४ सेकंड काल का अन्तर है। अर्थात् एक ही समय में भारत के ही दो स्थानों में दिशा भेद के कारण इतना अन्तर पाया जाता है। यही स्थिति पूरे विश्व की है।

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य व उद्देश्य ही काल साधन है। काल साधन ग्रहों के अधार पर किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि काल के साधन से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियां प्राप्त करने तथा काल साधन करने की विधाओं को जानने के लिये सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में काल साधन के लिये आवश्यक उस सिद्धान्त ज्योतिष का परिचय आप प्राप्त करेंगे।

काल साधन क्रम में प्राप्त होने वाले ग्रह गति स्थिति आदि का प्रयोग ज्योतिष के अन्य स्कन्धों में भी होता है। वे स्कन्ध है - होरा और संहिता स्कन्ध। आप जानते है कि होरा स्कन्ध के आधार पर फलादेश किया जाता है। तथा संहिता स्कन्ध के आधार पर समष्टिगत फलों का विचार किया जाता है। ये दोनों कार्य सिद्धान्त ज्योतिष के बिना नहीं हो सकते है। अर्थात् ज्योतिष का होरा स्कन्ध और संहिता स्कन्ध दोनों सिद्धान्त स्कन्ध पर ही निर्भर है। सिद्धान्त ज्योतिष का यह भी एक वैशिष्ट्य व महत्त्व है।

ज्योतिष शास्त्र का उद्भव ही काल साधन के लिये हुआ है। उस काल के बारे में जानकारी देने वाला तथा उस काल का साधन करने का विभिन्न प्रकार की विधाओं को समझाने वाला ज्योतिष का भाग ही सिद्धान्त स्कन्ध के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्त, संहिता, होरा नामक तीन

स्कन्धों में विभक्त समस्त ज्योतिष शास्त्र का आधार भूत स्कन्ध यही कालविधायक स्कन्ध है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत प्राप्त विभिन्न जानकारियों का ही प्रयोग फलित ज्योतिष अर्थात् होरा स्कन्ध तथा मुहूर्त्त वास्तु आदि अनेक समाजोपयोगी विषयों का विश्लेषण इत्यादि संहिता स्कन्ध में प्रयुक्त होते है।

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष की आवश्यकता तथा सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में तीन खण्डों में जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रथम खण्ड में सिद्धान्त का परिचय प्राप्त करेंगे। द्वितीय खण्ड में ग्रहों के आधार पर काल साधन के संक्षिप्त परिचय के साथ साथ सिद्धान्त ज्योतिष के योगदान एवं विभिन्न प्रकार के परम्पराओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। तीसरे खण्ड में सिद्धान्त ज्योतिष की आवश्यकता, महत्त्व व वैशिष्ट्य के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई के अन्त में सारांश, शब्दावली, प्रश्न आदि होंगे जो इकाई में प्रस्तुत विषय पर पकड को और मजबूत करेंगे। बीच बीच में बोध प्रश्न प्रस्तुत है जो विषय के अवगमन को अधिक सरल करेंगे। अतः आप प्रत्येक विषय के उपरान्त प्रस्तुत बोध प्रश्नों को सम्यक् प्रकार से देखने के उपरान्त ही अध्ययन में आगे बढने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से है –

- ज्योतिष के तीन स्कन्धों में अन्यतम सिद्धान्त स्कन्ध के बारे में सामान्य परिचय प्राप्त करना है।
- ग्रहों के आधार पर काल का साधन किस प्रकार से किया जाता है तथा उन ग्रहों के साधन में सिद्धान्त ज्योतिष की भूमिका के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- सिद्धान्त ज्योतिष के प्रमुख भेदों, विचारधाराओं व परम्पराओं से सम्बन्धित सामान्य जानकारी प्राप्त करना है।
- अन्य स्कन्धों के लिये उपादेय सिद्धान्त ज्योतिष के वैशिष्ट्य के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
- निष्कर्ष के रूप में कहा जाय तो इस इकाई का मुख्य उद्देश्य काल साधन करने वाले ज्योतिष के एक महत्त्व पूर्ण अंग से परिचित होना और उसकी आवश्यकता व महत्त्व से सम्बन्धित जानकारियों को प्राप्त करना है।

1.3 सिद्धान्त का परिचय

अभिलक्षण के आधार पर यदि ज्योतिष शास्त्र का विभाजन किया जाय तो मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रायः अधिकांश आचार्य इस विभाजन से सहमत है। सूक्ष्म अभिलक्षणों को गिनती में लेने पर ज्योतिष का अनेक भागों में विभाजन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु ये सभी भाग उपरोक्त तीन मुख्य भागों में समाहित हो जाते है। उन भागों को अनेक स्थानों में स्कन्ध के नाम से व्यवहार किया गया है।

सिद्धान्त शब्द का संस्कृत वाङ्मय में अनेक अर्थ प्राप्त होते है। परिस्थितियों के आधार पर इसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। ज्योतिष एक प्रायोगिक विज्ञान है। अर्थात् इसमें समय, स्थान तथा व्यक्ति के अनुसार नियम परिवर्तित होते है। काल साधन के नियम भी परिवर्तन शील है। काल साधन के नियमों के साथ साथ परिवर्तन के नियमों को स्थिति के अनुसार प्रयुक्त करने का निर्देश सिद्धान्त देता है। अर्थात् सिद्धान्त विभिन्न नियमों का समाहार है और उन नियमों के प्रयोग करने पर प्राप्त होने वाला फल विलक्षणता को धारण करता है। वह फल स्थान दिशा और काल पर आधारित होता है। यदि संक्षेप में कहना है तो काल साधन हेतु प्रयुक्त प्रयोगों का नियामक है सिद्धान्त ज्योतिष।

सिद्धान्त के नाना प्रकार की परिभाषाओं में अन्यतम है " अन्ते सिद्धः" का सिद्धान्त। अर्थात् प्रयोगादि असकृत् व वारं वार क्रियाकलापों के अन्त में जो फल सिद्ध हुआ उसे भी सिद्धान्त कहा जा सकता है।

उलझन से सुलझने का मार्ग सिद्धान्त है। जैसे दो ग्राम भार वाली पिन (सूई) को पानी में
डालने पर डूब जाती है। किन्तु 400 टन लोहे का जहाज पानी में नहीं डूबता है। यदि सोचे कैसे सम्भव है तो साधारण रूप से असम्भव लगता है। वह जहाज किस कारण से नहीं डूबता है ? नही डूबने के लिये उसका निर्माण कैसे करना है? किन किन नियमों का पालन करना है? उसका लम्बाई चौडाई गहराई आदि का नाप क्या होना है? इन प्रश्नो का उत्तर जो मिलता है वहीं सिद्धान्त कहलाता है। कार्य क्यों हुआ? कैसे हुआ? होने के लिये क्या कारण है? इन प्रश्नो का निर्माण कर उनका उत्तर यदि सफल परीक्षण के साथ प्राप्त करते है तो उन उत्तरों के समूह को सिद्धान्त कह सकते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति एवं स्थिति के आधार पर अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करके काल का साधन किया जाता है। इसी काल साधन विधि के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रन्थकार विभिन्न मार्गो में समझाने का प्रयास किये है। अनेक प्रकार की युक्तियों के समूह को भी इस सन्दर्भ में सिद्धान्त कह सकते हैं।

सिद्धान्त के महत्त्व के सन्दर्भ में आचार्य भास्कर लिखते है -

यः सिद्धान्तमनन्तयुक्ति विततं नो वेत्ति....

इस वाक्य में सिद्धान्तं अनन्तयुक्ति विततं इस खण्ड पर ध्यान देने से उपरोक्त वाक्य स्पष्ट हो जाते है। मध्यम ग्रह को स्पष्ट ग्रह बनाने के लिये जितने उपायों की आवश्यकता होती है उन सभी उपायों के समूह को सिद्धान्त कहते हैं।

यः (जो) अनन्तयुक्तिविततं (अनन्त युक्तियों से युक्त) न वेत्ति (नहीं जानता है) वह दीवार पर बनाये गये राजा के चित्र के बराबर होता है। अर्थात् राजा का चित्र जैसे राजा नहीं हो सकता है उसी तरह जातक आदि जानकर भी सिद्धान्त की युक्तियों को नहीं जानने वाले की स्थिति होती है।

1.3.1 गणित तथा गोल के सामंजस्य को सिद्धान्त कहते हैं -

कालसाधन ग्रहों के आधार पर होता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से होता है। एक गणित से तथा दूसरा प्रत्यक्ष वेध से। गणित से ग्रह का साधन करने के लिये व्यक्त और अव्यक्त संज्ञाओं से विभक्त गणित का ज्ञान अपेक्षित है। वेधप्रक्रिया को अपनाने के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल से एक ही फल यदि प्राप्त होता है तो उसे स्पष्ट कहते है। अत एव स्पष्टग्रहसाधन में गणितागत तथा दृगुपलब्ध दोनों ग्रहों का सामंजस्य अपेक्षित है। इसी सामंजस्य को सिद्ध करने के लिये जिन उपायों का वर्णन किया गया है उन सभी को समष्टि रूप से 'सिद्धान्त' कहते है। अर्थात् सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित ग्रन्थों में गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता साधन के लिये अनेक प्रकार के उपाय बताये गये है।

गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता को ही 'स्पष्ट ग्रह' कहते है तथा स्पष्ट ग्रहों से ही अभीष्ट फल की सिद्धि होती है। इस सन्दर्भ में कुछ आचार्यों के वाक्य यहां प्रस्तुत हैं जो ग्रहस्पष्टीकरण के लिये उत्पन्न सिद्धान्त ज्योतिष के आन्तर्य को और स्पष्ट कर सकते हैं।

आचार्य भास्कर के अनुसार -

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खैटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या**।।

सिद्धान्त शिरोमणि., गणिताध्याय, स्पष्टाधिकार, श्लो.१

यात्रा विवाह जातक आदि में स्पष्ट ग्रहों से ही स्पष्ट फल प्राप्त होता है। अतः स्पष्टग्रहों का ही प्रयोग अभीष्ट है। उसी सन्दर्भ में आचार्य कहते है **स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या**। या दृक् गणितयोः ऐक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। अर्थात् जो प्रक्रिया दृक् तथा गणित से प्राप्त फलों का एकीकरण का मार्ग बताती है वही स्पष्टीकरण प्रक्रिया है। इसी वाक्य से स्पष्ट होता है कि ग्रह साधन गणित और गोल के सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

सूर्यसिद्धान्त में –

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः ।
प्रयान्ति **तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्**।।

सूर्यसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थ में ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के सन्दर्भ में आचार्य द्वारा प्रस्तुत यह वाक्य ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के महत्त्व को तथा सिद्धान्त ज्योतिष के उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् । तत् स्फुटीकरणं आदरात् प्रवक्ष्यामि। मै उस स्पष्टीकरण को आदर से बताता हूं। किस स्पष्टीकरण को? यथा दृक्तुल्यतां
ग्रहाः प्रयान्ति। जैसे ग्रह दृक्तुल्यता को प्राप्त करते है?

सूर्य सिद्धान्त के इन वचनों से भी गणित तथा गोल का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है तथा उसी सम्बन्ध के आधार पर गणितागत ग्रहों को दृक्तुल्य ग्रह बनाने की विधि भी बताई गई है। सूक्ष्मरूप से बताया जाय तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने का कार्य ही सिद्धान्त ज्योतिष करता है।

1.3.2 विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र के अनेक आचार्य हैं। इस शास्त्र के मुख्य रूप से अट्ठारह प्रवर्तक माने जाते हैं। उन सभी प्रवर्तक आचार्यों की तीनों स्कन्धों में कृतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उन आचार्यों में तथा उनके अनन्तर काल में जिन जिन आचार्यों ने सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में अथवा ज्योतिष के स्कन्धों के बारे में चर्चा की है उन आचार्यों का तथा उनके द्वारा प्रस्तुत चर्चा की संक्षेप प्रस्तुति यहा की जा रही है। इस से सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित जानकारी और सुदृढ हो सकती है।

आचार्यों में कुछ के नाम इस प्रकार से है। नारद, वसिष्ठ, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट, भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति, मुञ्जाल आदि। सबसे पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ। ब्रह्मा ने नारद को तथा नारद ने शौनक को एवं शौनक ने आगे की श्रेणियों को यह ज्ञान प्रदान किया। प्रवर्तकों की श्रेणी में महर्षि नारद और वसिष्ठ आदि आते हैं। आचार्य आर्यभट को प्रथम पौरुष ज्योतिष ग्रन्थकार कहते हैं। अर्थात् महर्षियों की श्रेणी के बाद जो मानव मात्र ज्योतिष शास्त्र में ग्रन्थ रचना करने का प्रयास किया उनमें पप्रथम व्यक्ति आचार्य आर्यभट है। आर्यभट के ही समय के आचार्य रहे आचार्य वराह मिहिर। इस नाम से सभी विदित ही हैं। इनके कुछ समय के बाद क्रमशः लल्ल मुञ्जाल, श्रीपति, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे आचार्य उत्पन्न हुए जो सिद्धान्त ज्योतिष को नई दशा और दिशा प्रदान किये।

उन आचार्यों में से तथा उन ग्रन्थों में से सिद्धान्त को स्पष्ट करने वाली कुछ उक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं। प्रदत्त सन्दर्भ प्रायः सभी आचार्यों के मत को दर्शाते हैं।

1.3.2.1 बृहत्संहिता में -

ज्योतिश्शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्
तत्कात्स्न्यौपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होरान्योङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोपरः।।

अनेक प्रकार के विषयों से संवलित ज्योतिष शास्त्र को तीन मुख्य स्कन्धों में विभक्त किये है। उनका इस प्रकार से विभक्त करने का आधार उनकी उपयोगिता ही है। निरवशेष जहाँ पर उन विषयों का वर्णन किया जाता है उसे संहिता स्कन्ध कहते है। जिस स्कन्ध में गणित के आधार पर ग्रहों का साधन किया जाता है उसे तन्त्र अथवा सिद्धान्त कहते है। अंग विनिश्चय अर्थात् अंग यानी लग्न का विनिश्चय यानी निर्णय जहां होता है उसे होरा कहते है।

इस श्लोक में आचार्य स्पष्ट कर चुके है कि जहां पर गणित के आधार पर ग्रहों का साधन होता है उसे सिद्धान्त या तन्त्र कहते है। गणित के आधार पर ग्रहों का साधन अनेक प्रकार के युक्तियों के आधार पर होता है। गणित का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ पर लक्ष्य सिद्धि हेतु एक से अधिक मार्ग होते है तथा ये सभी युक्ति अथवा तर्क के अधीन होते है। अतः स्पष्ट रूप से अनेक प्रकार के युक्तियों का प्रयोग जहां किया जाता है उसे सिद्धान्त कहा जाता है।

1.3.2.2 सिद्धान्तशिरोमणि में -

सिद्धान्तशिरोमणि में वर्णित सिद्धान्त का लक्षण बहुविस्तृत तथा सरल है। इस वर्णन में सिद्धान्त ज्योतिष का बिन्दुशः उद्धरण प्राप्त होता है।

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।।

जिस स्कन्ध में -

- काल का आरम्भ त्रुटि से तथा अन्त प्रलय से होता है। अर्थात् काल का अत्यन्त सूक्ष्मविभाग त्रुटि है तथा अत्यन्त विशालतम इकाई की समाप्ति प्रलय से होती है। प्रारम्भिक अवयव से अन्तिम अवयव तक काल की कलना पद्धति जहाँ वर्णित है तथा जहाँ पर उस प्रकार के काल का साधन करने की विधि बतायी गयी हो।
  (त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना)

- ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और आर्क्ष नामक नवविध कालमानों का वर्णन जहाँ पर किया गया हो।
  (मानप्रभेदः)
- द्युसदां अर्थात् आकाश में वास करने वाले ग्रहों का चार (गति) जहाँ बताया गया हो।
  (चारश्च द्युसदां)
- दो प्रकार के गणित का जहाँ विशद वर्णन हो।
  (द्विधा च गणितं)
- उत्तर सहित प्रश्न जहाँ पर हो।
  (प्रश्नास्तथा सोत्तराः)
- भूमि के अभिप्राय से ग्रहों की स्थिति जहाँ पर वर्णित हो।
  (भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं)
- यन्त्रों का वर्णन किया गया हो।
  (यन्त्रादि यत्रोच्यते)

ज्योतिष के उस भाग को गणित प्रबन्ध में बुद्धिमानों ने सिद्धान्त नामक संज्ञा दी। (सिद्धान्तस्स उदाहतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः - सः गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः सिद्धान्त इति उदाहृतः)

1.3.2.3 सूर्यसिद्धान्त में -

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अपनी अपनी कक्षाओं की विलक्षणता के कारण आठ प्रकार की गति के साथ राशि चक्र
में चलने वाले ग्रह जिस तरीके से दृक्तुल्यता को प्राप्त करते हैं उस स्फुटीकरण नामक प्रक्रिया को मै (सूर्यांशपुरुष) बताता हूँ।

ग्रह अपने कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की गतियों से भ्रमण करते हैं। ग्रह गति के वर्णन से सम्बन्धित पाठ में ग्रह गति का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करेंगे। सामान्य जानकारी के लिये ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम यहाँ पर उल्लिखित है। वैसे तो उनका नाम ही उनके लक्षणों
को प्रतिबिम्बित कराने में पर्याप्त है।

आठ प्रकार की ग्रह गति -

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।

तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

वक्रा, अतिवक्रा, विकला , मन्दा, मन्दतरा, शीघ्रा, शीघ्रतरा, समा ये ग्रह की आठ प्रकार की गतियाँ हैं।

1.3.3 बोध प्रश्न

1. मध्यम और दृगुपलब्ध ग्रह एक होने पर उसको किस नाम से जाना जाता है?
2. दृगुपलब्ध ग्रह किसे कहते है?
3. प्रथम पौरुष ग्रन्थकार के रूप में किसे जाना जाता है?
4. बृहत्संहिता में सिद्धान्त के लिये किस नाम का उल्लेख है?
5. “ दृग्गणितैक्यकृत् “ का क्या अर्थ है?

1.4 ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त

सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्योद्देश्य काल का साधन है। काल के साधन हेतु ग्रहों का साधन किया जाता है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है भूकेन्द्राभिप्रायिक ग्रह स्थिति। अर्थात् भूमि के दृष्टि कोण में चारों ओर परिकल्पित क्षेत्र व राशिचक्र में ग्रह की कोणीय स्थिति को ग्रह स्थिति कहते हैं तथा उसी स्थिति के आधार पर समय का साधन किया जाता है।

सिद्धान्त ज्योतिष मुख्य रूप से काल साधन करने के लिये ग्रहों का साधन करता है। इस बात को और सूक्ष्मता के साथ जानने के लिये एक जिज्ञासा को शान्त करना आवश्यक है। वह जिज्ञासा है “ काल साधन ग्रहों की स्थिति के आधार पर कैसे किया जाता है? ”

काल स्थान सापेक्ष व व्यक्ति सापेक्ष होता है। यह बहुत गम्भीर विषय लगता है। सिद्धान्त ज्योतिष को समझने के लिये इस गम्भीर विषय को सरलता से समझने का प्रयास करना आवश्यक है। एक पंक्ति में भोजन करने चार लोग बैठे है। पंक्ति में पहला व्यक्ति भोजन 15 मिनट के समय में, दूसरा 20 मिनट में, तीसरा 40 मिनट में तथा चौथा 60 मिनट में पूरा करता हैं। इसको इस तरीके से दोबारा पढने का कोशिश कीजिये। भोजन पूरा करने में पहले व्यक्ति को 15 मिनट का , दूसरे को 20 का , तीसरे को 40 का तथा चौथे को 60 मिनट का समय लगा। यहाँ भोजन का पूरा करना व्यक्ति सापेक्ष रहा।

इसी प्रकार से सूरज प्रत्येक स्थान में अलग अलग उदय होता है। प्रत्येक स्थान में उदय तथा अस्त का अन्तराल अलग अलग होता है। जब एक स्थान में सूर्योदय और अस्त के बीच का समय लगभग 12 घंटे का है उसी समय दूसरे स्थान में वह समय छ महीने का भी हो सकता है। कुछ स्थानों

में 60 दिन का भी हो सकता है और कुछ स्थानों में 60 घटी का भी हो सकता है। सूरज तो वही है। उसकी गति भी सब के लिये बराबर है। किन्तु गोलाकार पृथ्वी में अन्य पिण्डों के भ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति अलग अलग है।

सिद्धान्त स्कन्ध इसी विलक्षणता को अनेक माध्यमों से समझाने का प्रयास करता है। अनेक प्रकार से एक ही काल का साधन बताये जाने के पीछे सत्यापन विधि मुख्य कारक है। एक से प्राप्त काल का सत्यापन दूसरे विधान से प्राप्त कालखण्ड से होता है।

1.4.1 समान विभाग

पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्त की कल्पना काल साधन हेतु की गई है उसको क्षेत्र कहते है। कल्पना शब्द का प्रयोग शास्त्र के लिये समस्यापूर्ण नहीं है। वास्तव में चारों और राशि चक्र में दिखने वाली राशियाँ तारों के समूह के कारण उत्पन्न खगोलीय दृश्य है। इनका वर्णन प्राच्य (पूरब के देशों) में और पाश्चात्य (पश्चिमी देशों) में अनेक प्रकार से किया गया है। अनेक वर्णनों में मतभेद भी है। अतः राशिचक्र को व समय साधन हेतु निर्णीत वृत्ताकार स्थान को कल्पना कहना अनुचित नहीं है।

इस क्षेत्र को कालविभागों के अनुरूप विभक्त किया गया है। वे विभाजन इस प्रकार से है-

क्षेत्र विभाग	काल विभाग
राशिचक्र (360 अंश)	वर्ष (360 दिन)
राशि (बारहवाँ भाग)	मास (बारहवाँ भाग)
अंश (राशि का तीसवाँ भाग)	दिन (मास का तीसवाँ भाग)
कला (अंश का साठवाँ भाग)	घटी (दिन का साठवाँ हिस्सा)

इन विभागों में ग्रहों की गति के आधार पर काल के विभाग कलित होते है। अर्थात् क्षेत्र वा राशिचक्र में ग्रहों की गति काल के विभिन्न घटकों की कलना (गणना) करने में सहयोग करते है।

1.4.2 कालगणना

सिद्धान्त की परिभाषा के सन्दर्भ में ९ प्रकार के कालमानों की चर्चा की गई। उन कालमानों को और सूक्ष्म रूप से समझने की कोशिश करने पर ग्रहों के आधार पर कालगणना करने का तात्पर्य भी समझ में आ जाता है।

सूर्य को राशिचक्र का पूरा भ्रमण करने के लिये एक वर्ष का समय लगता है। क्षेत्र तथा काल के समान विभागों की बात को यहाँ एक बार स्मरण करना है। क्षेत्र विभाग में सबसे बडा विभाग राशि चक्र है। उसके बराबर का काल विभाग है वर्ष। सूर्य को राशि चक्र में भ्रमण करने के लिये व सूर्य को राशि चक्र का एक चक्कर पूरा करने के लिये जो समय लगता है वह काल विभाग के सबसे

बडे अवयव (हिस्सा) वर्ष के बराबर है। उसे सौर वर्ष कहते है। सौर वर्ष का बारहवाँ भाग सौरमास कहलाता है। अर्थात् इस समय में सूर्य एक राशि का भोग करता है। सौरमास का तीसवा भाग एक सौर दिन कहलाता है।

इसी प्रकार से अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में भी विचार करना है। सूर्य और चन्द्रमा की युति को अमावास्या कहते है। सूर्य और चन्द्रमा की यह युति मीन राशि में होने के बाद पुनः मीन राशि में होने तक एक चान्द्र वर्ष होता है। मीन राशि में संगम के बाद प्रत्येक राशि में सूर्य और चन्द्रमा की प्रत्येक युति एक एक चान्द्रमास को दर्शाती है। सूर्य से आगे बढकर अधिक गतिमान चन्द्रमा लगभग २९ दिनों के अन्तराल में पुनः सूर्य को प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा का गति विलक्षण होने के कारण यहाँ पर सूर्य और चन्द्र के 360 अंशों के अन्तर को तीस भागों में विभक्त कर चान्द्रदिनों का व्यवहार किया जाता है। 360 को तीस   से भाग देने पर 12 अंश प्राप्त होते है। सूर्य चन्द्रमा के प्रत्येक बारह अंश के अन्तराल को तिथि कहते है तथा तिथि को ही
चान्द्र दिन कहते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति के आधार पर कालावयवों की गणना करने की प्रथा सिद्धान्त ज्योतिष के रूप में अनादि काल से प्रचलित है। सौरवर्ष की भांति गौरववर्ष आदि भी विचारणीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि काल साधन करने के लिये तथा काल के विविध अवयवों का अनुमान लगाने के लिये ग्रहों का सहारा लिया जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य आर्यभट की उक्ति स्मरणीय है -

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

काल अनादि और अनन्त है तथा उस काल का ग्रहों और राशियों के आधार पर क्षेत्र में अनुमान लगाया जाता है।

1.4.3 सिद्धान्त की तीन मुख्य परम्परा

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य काल साधन ही है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर क्षेत्र (राशि चक्र) में किया जाता है। कालक्रम में भारत में कालगणना की तीन मुख्य परम्परा उत्पन्न हुये। उन तीन परम्पराओं का नाम है आर्य, सूर्य तथा ब्राह्म। आर्यभट के सिद्धान्त के अनुसार काल गणना करने वालों को आर्यसिद्धान्त के अनुयायी, सूर्य सिद्धान्त के अनुसरण करने वालों को सूर्यानुयायी तथा ब्रह्मसिद्धान्त का अनुसरण करने वालों को ब्रह्मसिद्धान्तानुयायी कहते हैं।

1.4.3.1 आर्य परम्परा

आर्यभट की एक मात्र कृति आर्यभटीयम् नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ केवल सिद्धान्त

ज्योतिष के ही विषयों का वर्णन करता है। इसमें आर्यभट काल को अनादि और अनन्त मानते है तथा उपदेश देते है कि काल का अनुमान क्षेत्र (राशिचक्र) में ग्रह और राशियों के आधार पर लगाया जाता है।

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे

अपने मंगलाचरण में आर्यभट लिखते हैं -

आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलं च।

अर्थात् आर्यभट गणित कालक्रिया और गोल नामक तीन विषयों को बता रहें हैं।

गणित काल साधन का मूलाधार है। गणित के ज्ञान के बिना काल गणना की नहीं जा सकती है। ज्ञानियों का एक पक्ष का मानना है कि बीजगणित के आविष्कारक आर्यभट ही हैं। अपने ग्रन्थ के गणित पाद में आर्यभट अनेक प्रकार के गणितीय विषयों का उल्लेख किये हैं जो उनके पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों में देखने को नहीं मिलता है। उनमें से कुछ है व्यास और परिधि का सम्बन्ध, दशमलवपद्धति, दशोत्तरसंख्यामान आदि। शून्य के भी आविष्कारक के रूप में आर्यभट आजके विद्वानों में प्रसिद्ध है।

अन्य सिद्धान्तों से आर्यभट का सिद्धान्त मुख्य रूप से मन्वन्तर प्रमाण में मतभेद रखता है। अन्य सिद्धान्तों में एक मनु का अन्तर 71 महायुग का है वहीं आर्यभट मनु को 72 महायुग का मानते है। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त है जो आर्यभट के सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिये अयनांश विचार को लिया जा सकता है। आज प्रबल विवादांश के रूप में प्रचलित अयनांश का किसी भी रूप में वर्णन आचार्य आर्यभट नहीं किये हैं।

आर्यभट के समय के पहले ही ज्योतिष के तीनों स्कन्धों का प्रचार प्रसार था। किन्तु आर्यभट के द्वारा कहीं भी फलित ज्योतिष आदि का विचार नहीं किया गया। अपनी कृति में आर्यभट लिखते हैं कि वे सत् और असत् ज्ञान से युक्त समुद्र से सत् का ग्रहण कर वर्तमान सिद्धान्त बनायें हैं। इससे प्रतीत होता है कि आर्यभट फलादेश आदि विधाओं का विरोध करते हैं।

1.4.3.2 ब्रह्मपरम्परा

ब्रह्मसिद्धान्त का मूल विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बताया जाता है। प्रवर्तकों के वर्णन के समय में भी आचार्य लोग वर्णन करते है कि सब से पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ तथा ब्रह्मा ने इस विद्या को आगे के लोगों को प्रदान किया। ब्रह्म सिद्धान्त की मुख्य विशेषता है सृष्टि और कल्प के मध्य में अन्तर को नहीं मानना।

अर्थात् ब्रह्मसिद्धान्त में कल्पारम्भ ही सृष्ट्यारम्भ भी है। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है कि

कल्पारम्भ के बाद ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिये कुछ समय लगा। किन्तु इस बात को ब्रह्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता है। ब्रह्म सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का निर्माण किया तथा ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त काल क्रम में सत्यदूर होने के कारण आचार्य भास्कर कुछ संशोधन तथा कुछ नये सिद्धान्तों के साथ सिद्धान्तशिरोमणि का निर्माण किया।

1.4.3.3 सूर्यपरम्परा

सूर्यसिद्धान्त का अनुपालन ग्रह तथा काल साधन आदि में जो करते है उनकी परम्परा सूर्यपरम्परा कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के नाम से भारतीय ज्योतिष में अनेक ग्रन्थ प्रचलन में रहे। आचार्य वराह मिहिर के द्वारा संगृहीत एक सूर्यसिद्धान्त है। भटोत्पल के द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त सूर्यसिद्धान्त के अंश किसी दूसरे सूर्यसिद्धान्त के हैं। वर्तमान में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त उपरोक्त दोनों से भी भिन्न है। तथा अन्य आचार्यों की व्याख्याओं में भी सूर्यसिद्धान्त का प्रसंग है जो यहां पर प्रस्तुत तीनों सूर्यसिद्धान्तों से भिन्न माने जाते हैं। अतः सूर्यसिद्धान्त के नाम से प्रचलित होने वाले सिद्धान्त तीन से अधिक माने जाते हैं।

सूर्यांश पुरुष के द्वारा मयासुर को प्रबोधित सिद्धान्त ही सूर्यसिद्धान्त के नाम से वर्तमान में प्रसिद्ध है तथा वर्तमान में निर्मित अधिकांश पंचांग सूर्य सिद्धान्त का ही अनुसरण करते हैं।

1.4.4 बोध प्रश्न

1. क्षेत्र किसे कहते है?
2. सौर वर्ष किसे कहते है?
3. सिद्धान्त ज्योतिष में प्रमुखतः कितनी परम्परायें हैं?
4. काल को अनादि और अनन्त कौन मानते है?
5. आर्यभट ने किन तीन विषयों का उल्लेख आर्यभटीय में की हैं?

1.5 सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व

गणित कालक्रिया और गोल का सामंजस्य स्थापित करना ही सिद्धान्त ज्योतिष की मुख्य प्रवृत्ति है। ये तीनों विषय आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को रखते है। अर्थात् ये तीनों की युगपत् (एक साथ) स्थिति हो सकती है तथा अलग अलग इनका अस्तित्व नहीं है। काल गणित तथा गोल पर आश्रित है।

ग्रहों की स्थिति गति आदि विषय केवल काल साधन में ही नहीं बल्कि ज्योतिष के सिद्धान्त के अतिरिक्त स्कन्धों के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। फलादेश हेतु स्पष्टग्रहों की आवश्यकता होती है तथा ग्रहों के चार (गति) के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं आदि का ज्ञान किया जाता है।

1.5.1 सिद्धान्त ज्योतिष की विशेषता

सिद्धान्त के निर्वचन से सम्बन्धित जानकारी इस इकाई के प्रारम्भ में प्राप्त किये है। सिद्धान्त का कोई एक वाक्य में अथवा एक दृष्टि में निर्वचन नहीं हो सकता है। अर्थात् काल साधन के तत्त्व को अवगत कराने की प्रक्रिया ही सिद्धान्त कहलाता है। कालतत्त्व को जानने के लिये अनेक अवयव, विषय व विभागों का परिचय प्राप्त करना होता है इसकी जानकारी इकाई के अब तक वर्णित विषय से प्राप्त होती है।

इसी सन्दर्भ में अनेक प्रकार के उदाहरणों तथा उपमानों के साथ गोल के अभाव में गणित की स्थिति का वर्णन किये है आचार्य भास्कर जो सिद्धान्त के वैशिष्ट्य को अभिवर्णित करते है।

जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिश्शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः।।

जातक (होरा) और संहिता स्कन्धों को जानकर भी जो अनेक प्रकार की युक्तियों से युक्त सिद्धान्त को नहीं जानता है वह दीवार पर खींचे गये राजा के चित्र के समान तथा लकडी के बनाये गये सिंह जैसे ज्योतिशास्त्र के विचारों से सम्बन्धित प्रश्नों में अकिंचित्कर अर्थात् कुछ भी नहीं कर पाने वाला होगा।

अर्थात् दीवार पर चित्रित राजा जिस प्रकार से शासन नहीं कर सकता, लकडी का बना सिंह जिस प्रकार से दहाड नहीं सकता उसी तरह जो सिद्धान्त नहीं जानता है वह ज्योतिषशास्त्र के विचारों से युक्त प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है।
ज्योतिषशास्त्रज्ञ बनने के लिये सिद्धान्त ज्ञान अनिवार्य है।

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूर्प्यूर्जिताश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतच्यूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्नभात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः।।

राजा की सेना अश्वों से युक्त होने पर भी गरजने वाले हाथियों के अभाव में जिस प्रकार से

प्रभाव हीन होती है, आम के पेड से रहित उद्यान जैसे प्रभाव हीन होता है, जिस प्रकार राह से रहित नदी की स्थिति होती है, पति से दूर रह रही स्त्री का सौन्दर्य जिस तरह किसी काम का नहीं होता है उसी तरह सिद्धान्त ज्योतिष के ज्ञान से रहित ज्योतिषशास्त्रज्ञ की स्थिति होती है।

1.5.2 गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व

मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह की एकता साधन ही ग्रह स्पष्टीकरण है। मध्यम ग्रह साधन हेतु गणित का ज्ञान अपेक्षित है। गणित दो प्रकार का होता है। ग्रह की दृगुपलब्धि के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। किन्तु गणित के अभाव में गोल का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। अर्थात् गणित और गोल दोनों अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखते है। अर्थात् गणित के बिना गोल तथा गोल के बिना गणित का ज्ञान नहीं हो सकता है।

पूर्व में ही इस विषय की जानकारी हुई है कि ग्रहस्पष्टीकरण के माध्यम से काल साधन करना ही सिद्धान्त कहलाता है। अथवा ग्रहसाधन के आधार पर काल साधन करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य है। इन दोनों का महत्त्व तथा उन दोनों की अविकल्प अध्ययन की आवश्यकता को आचार्य भास्कर इस प्रकार वर्णित किये है -

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र॥

सभी रसों से युक्त भोजन घी (आज्य) के बिना जिस तरह जमता नहीं, राजा से रहित राज्य जिस तरह से अच्छा नहीं लगता है, अच्छे वक्ता से रहित सभा जिस तरह अच्छी नहीं लगती है उसी तरह गोल की जानकारी से रहित गणितज्ञ की स्थिति होती है। अर्थात् गोलज्ञान के बिना कालसाधन में गणित का कोई उपयोग नहीं।

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयं
ते गोलाश्रणियोन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति॥

भास्कराचार्य की इस उक्ति में ज्योतिष शास्त्र के अनेक घटकों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्पष्ट रूप से वर्णित है। इस उक्ति में सिद्धान्त का लक्षण भी देखने को मिलता है साथ ही ज्योतिष के विभिन्न अंगों का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है।

ज्योतिष शास्त्र का मुख्य उद्देश्य आदेश है। वह आदेश काल का भी हो सकता है तथा फल का भी। फल से सम्बन्धित जो फल होता है उसका आधार लग्न ही होता है। लग्न का साधन स्पष्ट

ग्रहों के बिना नहीं हो सकता है। स्पष्ट ग्रह गोल को आश्रित करते है। अर्थात् गोल के ज्ञान के अभाव में ग्रह का साधन नहीं किया जा सकता है। गोल का ज्ञान गणित के अभाव में नहीं हो सकता है। अतः जो गणित नहीं जानता है वह गोल का ज्ञाता नहीं हो सकता है। इसी उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिष के सभी विषय एक दूसरे पर आश्रित है तथा अधिकांश आधार विषय सिद्धान्त ज्योतिष के ही है।

1.5.3 बोध प्रश्न

1. ज्योतिष का फल मूल रूप से किसे आश्रित करता है?
2. गौलाश्रयी कौन हैं?
3. गोलानभिज्ञ गणक किसके समान है?
4. स्फुटक्रिया किसे कहते है?
5. दृक्तुल्य मध्यम ग्रह को किस नाम से जाना जाता है?

1.6 सारांश

इस इकाई की अध्ययन से आप जान चुके है कि स्थान भेद के अनुसार काल का व्यवहार होता है। ज्योतिष के स्कन्धों में जिस स्कन्ध के आधार पर काल का साधन होता है उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते है। संक्षिप्त में आप जान चुके है कि काल साधन के लिये ग्रहों का साधन करना होता है। ग्रहों के साधन करने के लिये गणित और गोल दोनों का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल के आधार पर प्राप्त ग्रह को स्पष्ट ग्रह कहते है।

आप यह भी जान चुके है कि काल के जो अवयव है उन्ही के बराबर में क्षेत्र अर्थात् राशि चक्र का भी विभाजन किया गया है। सिद्धान्त ज्योतिष में अनेक परम्परायें प्रचलन में हैं। आप यह भी जान चुके है कि आर्य सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त तथा ब्रह्म सिद्धान्त के नाम से सिद्धान्त का तीन विधा प्रचलन में है।

इकाई के अध्ययन से आप जान चुके है कि ज्योतिष के सभी भाग एक दूसरे पर निर्भर है। अन्योन्याश्रय के इस सम्बन्ध के कारण ज्योतिष के सभी भागों में समान अधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है। मुख्यतः ज्योतिष के बाकी सभी भागों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक होता है। साथ ही आप भास्कराचार्य जैसे महान् ज्योतिर्विद के शब्दों में सिद्धान्त ज्योतिष के महत्त्व से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

1.7 बोध प्रश्नों का उत्तर

1.3.3

1. स्पष्ट ग्रह।
2. वेधादि से प्राप्त ग्रह को दृगुपलब्ध ग्रह कहते है।
3. आचार्य आर्यभट को।
4. तन्त्र ।
5. दृक् तथा गणित् को एक करने वाला

आचार्य भास्कर स्फुटक्रिया के वर्णन के सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग करते है। स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या - या दृग्गणितैक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। जो प्रक्रिया दृगुपलब्ध और गणित से प्राप्त दोनों को एक करने के लिये किया जाता है।

1.4.4

1. ग्रहों को जहाँ पहचाना जाता है, अथवा राशिचक्र को , अथवा ग्रहों की कोणीय गति को नापने के लिये कल्पित वृत्त
2. सूर्य को क्षेत्र व राशि चक्र का सम्पूर्ण भ्रमण करने के लिये जो कालावधि अपेक्षित है।
3. तीन
4. आचार्य आर्यभट
5. गणित, कालक्रिया और गोल

1.5.3

1. लग्न बल
2. ग्रह
3. आज्य रहित भोजन, राज्य हीन राजा, वक्ता से रहित सभा
4. दृगुपलब्ध तथा गणितागत को एक करने की प्रक्रिया, अथवा मध्यम तथा वेध से प्राप्त ग्रहों को एक बनाने की व तुल्यता सादन करने की प्रक्रिया।
5. स्पष्ट ग्रह

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली।

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मध्यम ग्रह का साधन कैसे किया जाता है?
2. वेध के द्वारा ग्रह कैसे प्राप्त किया जाता है?
3. काल साधन किस लिये किया जाता है?
4. काल की क्या आवश्यकता है?
5. विभिन्न ग्रहों से काल का साधन कैसे किया जाता है?

इकाई - 2 सूर्यादि ग्रहों के भगण

2.1 प्रस्तावना

हम इस इकाई में ग्रहों के भगणों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। इससे पहले की इकाई में सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में तथा उसके महत्त्व के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। सिद्धान्त ज्योतिष काल साधन की विधाओं के बारे में बतलाता है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर किया जाता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से किया जाता है। पहला प्रकार है गणितीय प्रकार अर्थात् गणित के माध्यम से ग्रहों का साधन करना तथा दूसरा प्रकार है वेध प्रक्रिया के द्वारा ग्रहों का साधन करना। ये दोनों दो अलग अलग प्रकरण नहीं है। इन दोनों प्रकारों व विधाओं के माध्यम से प्राप्त ग्रह एक ही होने पर उसे स्पष्ट ग्रह कहते है तथा उसी को काल साधन हेतु प्रयोग करते है।

गणित के आधार पर ग्रहों का साधन करने के लिए त्रैराशिक विधि का प्रयोग किया जाता है। त्रैराशिक विधि से ग्रहों का साधन करने के लिए मुख्य रूप से आवश्यक है ग्रहों की भगण संख्या। इस इकाई में हम ग्रह भगणों के सामान्य परिचय से लेकर विस्तृत साधनादि विधाओं के बारे में अध्ययन करेंगे। इस इकाई में तीन खण्ड प्रस्तुत हैं। पहले खण्ड में हम भगण शब्द का सामान्य अर्थ तथा ग्रह साधन की दृष्टि से भगण की परिभाषा आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे। द्वितीय खण्ड में हम विभिन्न आचार्यों के मतानुसार सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या इत्यादि की जानकारी प्राप्त करेंगे। तीसरे खण्ड में सूर्यादि ग्रहों की प्रदत्त भगण संख्याओं का प्रयोग किस प्रकार से ग्रह साधन में प्रयुक्त होता है इसकी आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भगणों से सम्बन्धित अत्यधिक जानकारियों को प्राप्त कराना है।
- भगण शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिचय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना है।
- इस इकाई का उद्देश्य सूर्यादि ग्रहों की भगण संख्या से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना है।
- ग्रह साधन में ग्रहभगणों की भूमिका से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना इस इकाई का उद्देश्य है।
- विविध ग्रन्थों में प्रदत्त भगणों की संख्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना भी इस इकाई का उद्देश्य है।

2.3 भगण का सामान्य परिचय

ग्रह राशिचक्र में भ्रमण करते हैं। ग्रह अपने अपने विमण्डलों में भ्रमण करते हैं। राशि चक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है किन्तु ग्रहकक्षा अथवा ग्रहविमण्डलों का केन्द्र भूकेन्द्र में नहीं है। ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में न होने के कारण मध्यम ग्रह तथा स्पष्ट ग्रह में फल नामक अन्तर उत्पन्न होता है। उपरि लिखित ये चार वाक्य आपस में एक दूसरे का विरोध करते हैं। तथा इनको प्रथम दृष्टि से पढने पर अनेक प्रकार की शंकाओं का जन्म होता है।

2.3.1 उत्पन्न होने वाली शंकायें

- ग्रह राशि चक्र में भ्रमण कर रहे हैं तो अपने अपने विमण्डलों में भी कैसे भ्रमण कर सकते है?
- राशि चक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में है तो ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र में क्यों (कैसे) नहीं है?
- मध्यम ग्रह किसे कहते है?
- स्पष्ट ग्रह किसको कहते है?
- केन्द्र एक न होने से फल नामक अन्तर कैसे उत्पन्न होता है?

2.3.1.1 ग्रह किसे कहते है?

गृह्णातीति ग्रहः। एक प्रकार से ग्रह की परिभाषा इस वाक्य में दी गई है कि जो ग्रहण करता है उसे ग्रह कहते है। ग्रहण किसका और कौन करते हैं? आकाश में दो प्रकार के खगोलीय पिण्ड देखने को मिलते हैं। उनमें एक वर्ग के पिण्ड तो घडी में लिखे हुए अंकों के जैसे एक ही स्थान में रहते है। दूसरे किस्म के पिण्ड उन स्थिर पिण्डों को एक एक करके पार करते हुए चलते है। अर्थात् वे उन पिण्डों को एक एक करके ग्रहण करते हैं। जैसे घडी में सूइयां करती हैं। इन दो प्रकार के पिण्डों में से जो स्थिर है अर्थात् चलते नहीं हैं उनका नाम है नक्षत्र। इसीलिए नक्षत्र के लिए कहा जाता है कि **न क्षरति चलतीति नक्षत्रम्** यह परिभाषा दी जाती है। अर्थात् जो चलता नहीं है वह नक्षत्र है जिनकी संख्या 27 हैं। और उन नहीं चलने वाले नक्षत्रों का जो ग्रहण करते हैं वे ग्रह हैं।

2.3.1. 2 ग्रह कहा चलते है?

वास्तविक ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में चलते है। अर्थात् ग्रह वास्तव में अपनी अपनी नियमित कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। वे पृथ्वी से समान दूरी में नहीं है। उनमें कुछ पृथ्वी के समीप में है तो कुछ पृथ्वी से दूर में। वे आपस में भी कहीं नहीं मिलते हैं। वे एक दूसरे का ग्रहण वास्तव में नहीं कर सकते है।

2.3.1.3 राशि चक्र में कौन भ्रमण करते है?

राशि चक्र एक अद्भुत वैज्ञानिक कल्पना है। वह कल्पना इसलिए है कि राशि चक्र नामक कोई चक्र नहीं है । यह कल्पना मात्र है। आकाश में वास्तव में स्थित तारासमूहों का भू सापेक्ष्य जो वर्तुलाकार स्थिति है उसी का राशि चक्र के रूप में ग्रहण करने के कारण इसे वैज्ञानिक कल्पना कह सकते हैं । राशियों में स्थित तारें भी पृथ्वी से समान दूरी में नहीं है। वे आपस में भी क्रोशों अन्तराल में है। किन्तु वे सभी पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में नजर आते है। इसका कारण है मनुष्य की दृष्टि सीमित होना। (अर्थात् मनुष्य के नेत्रों के द्वारा देखने की सीमा चारों ओर समान होना)।

तारे ग्रहों से कई गुणा दूरी में स्थित हैं। अतः ग्रह अपने अपने स्थानों में जब चलते है तो वे पृथ्वी से किसी न किसी तारा समूह में ही चिह्नित होते है। अर्थात् जो ग्रह जिस तारा समूह में चिन्हित हुआ वही उसका स्थान है। अर्थात् हम वास्तव में ग्रह जहा घूम रहा है उसको स्वीकार करके ग्रह की तारा समूह में जो स्थिति नजर आ रही है उसका ग्रहण करते है।

इस प्रकार से स्वीकारने का भी वैज्ञानिक कारण है। ग्रह की वास्तविक स्थिति को न तो हम नाप सकते है न हमें उस स्थान की कोई आवश्यकता। पृथ्वी में स्थित मानव अपने स्थान की दृष्टिकोण से आसमान को देखते हुये समय का साधन करना चाहता है। स चाहत के अन्तर्गत उसने आसमान को अपनी घडी मान ली और घडी की सीमा या आकार को ही राशिचक्र के रूप में स्वीकार काया है। उस राशिचक्र में स्थित तारासमूहों से उत्पन्न राशियाँ ही काल के विभिन्न अंग है। उन काल विभागों की कलना (गणना) करने हेतु उपयोग में आने वाले ग्रह नामक सूइयाँ है। इस घडी की विशेषता यह है कि मानव मात्र इसका प्रयोग कर सकता है। इनके नियमों में मानव हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न ही इनको अपने मन मानी ढंग से चलाने के लिए मजबूर कर सकता। अर्थात् प्रकृति के द्वारा प्रदत्त एक अनौखी सहज घडी राशिचक्र और ग्रह हैं।

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र में जिनको ग्रह कहते हैं वास्तव में वे राशिचक्रस्थ ग्रहों के स्थान हैं। इन्ही स्थानों की कोणीय स्थिति को मानव नापता है। इनको नापने के लिए उस चक्र में मानव जिस बिन्दु को चिन्हित किया है वह अश्विनी का प्रारम्भ या रेवती का अन्त बिन्दु है। इस स्थान की वर्तमान इकाई में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

2.3.1.4 ग्रह कक्षा का केन्द्र

चारों ओर पृथ्वी से बराबर की दूरी में मानव नेत्रों की दृष्टि क्षमता के आधार पर राशियाँ दिखाई देती है। मानव की दृष्टि चारों ओर से समान होने के कारण उस राशिचक्र का केन्द्र भूकेन्द्र में

ही है। अर्थात् चारों ओर वर्तुलाकार कक्षा में दिखने वाले राशि चक्र के बीचों बीच में पृथ्वी है। अतः पृथ्वी पर स्थित लोगों को वास्तविक ग्रह न दिखकर इन राशियों में मात्र इनका स्थान दिखता है।

ग्रह भ्रमण करते करते कभी पृथ्वी के समीप आ जाते हैं तथा कभी - कभी पृथ्वी से दूर हो जाते हैं। यदि ग्रहकक्षाओं का केन्द्र भू केन्द्र में होता तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। गणित के नियम के आधार पर केन्द्र उसे कहते है जो वृत्त के या कक्षा के प्रत्येक बिन्दु से समान दूरी में स्थित हो। वृत्त के अन्दर इस प्रकार का एक ही बिन्दु हो सकता है। यदि ग्रह कक्षा का केन्द्र भूकेन्द्र में रहता तो ग्रह प्रत्येक स्थान में पृथ्वी से समान दूरी में भ्रमण करता। किन्तु वास्तविक स्थिति इस प्रकार से भिन्न है।

सिद्धान्त ज्योतिष में कहा जाता है कि ग्रह अपने नीच बिन्दु की ओर जब अग्रसर होता है तो वह तेजी से चलता है। ग्रहकक्षा में भूकेन्द्र से समीपतम स्थान नीच है। इसी प्रकार ग्रह की कक्षा में जो स्थान पृथ्वी से दूरतम रहता है उसे उच्च कहते है।

अर्थात् ग्रह पृथ्वी के चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में भ्रमण नहीं करते हैं। वे अपने अपने कक्षाओं में भ्रमण करते है तथा उन कक्षाओं का केन्द्र भूकेन्द्र से हटकर है।

2.3.1.5 मध्यम ग्रह किसे कहते है?

इस इकाई में हमें अब तक जिन बिन्दुओं को पढने का अवसर मिला है वे वास्तव में अपने लिए नए है। जन साधारण में कुछ मान्यताएँ सदियों से चलती आ रही हैं। उन मान्यताओं के बारे में शास्त्र क्या बताना चाह रहा है या क्या बता रहा है इस बात को आम आदमी ध्यान देने का प्रयास नहीं करता है। अतः समाज में कुछ भ्रान्तियाँ भी देखने को मिलती है। किन्तु वर्तमान अध्ययन के समय में हमारी जिज्ञासा उन भ्रान्तियों के प्रति नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि शास्त्र को शास्त्र की दृष्टि से अथवा विषय को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने व जानने के लिए यह प्रयास किया जा रहा है। इस क्रम में ऊपर दिये गये विवरणों के आधार पर उत्पन्न होने वाला अगला प्रश्न ही मध्यम ग्रह से सम्बन्धित है।

ग्रह स्थान और वास्तविक ग्रह दोनों यदि एक ही होते तो मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह नामक भेद देखने को नहीं मिलता। किन्तु ग्रहों के भ्रमण मार्ग भिन्न भिन्न होने के कारण, पृथिवी से इन कक्षाओं की दूरी समान न होने के कारण, कक्षाओं के दक्षिणोत्तरान्तर में भी अधिक मात्रा में व्यत्यास होने के कारण ग्रहों को ग्रहस्थान के रूप में देखने का अवसर नहीं मिलता है। ग्रहों के आधार पर काल का साधन करना है। इसके लिए नित्य गतिशील ग्रह मात्र सहयोग नहीं कर सकते है। उनके सापेक्ष स्थान का ज्ञान उनकी गणना हेतु अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी गणना की सुलभता के

लिए की गई व्यवस्था ही मध्यम ग्रह है।

मध्यम ग्रह आसमान में देखने से नहीं मिलता है। अर्थात् वह आसमान में रहता ही नहीं है। ग्रहों के भगणों के आधार पर प्रतिदिन की ग्रह की दिन की औसतन गति निकाल कर उस औसतन गति के आधार पर निकले औसतन ग्रह को ही मध्यम ग्रह कहते है। विलक्षण गति युक्त ग्रह की आसन्न स्थिति को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाला प्रयास ही मध्यम ग्रह है। मध्यम ग्रह साधन करने का मूल आधार ही भगण है जो विस्तृत रूप से इस इकाई में वर्णित है।

2.3.1.6 स्पष्ट ग्रह किसे कहते है?

हमने जानकारी प्राप्त की कि गणित के आधार पर प्राप्त ग्रह को मध्यम ग्रह कहते है। जो वास्तविक ग्रह से आगे या पीछे रहता है। कुछ ही सन्दर्भो में वह वास्तविक ग्रह के समान प्राप्त होता है। गणितागत ग्रह से वास्तविक ग्रह अलग होने के कारण गणित से ग्रह जिस स्थान में प्राप्त हुआ उस स्थान में आसमान में देखने पर नहीं मिलता है। अर्थात् आसमान में दिखाई देने वाला ग्रह मध्यम ग्रह से आगे या पीछे रहता है। वास्तविक ग्रह को आसमान में यन्त्रादि की सहायता से देखने पर जहां वह दिखता है उसी स्थान को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है तथा उस स्थान में दिखने वाला ग्रह ही स्पष्ट ग्रह कहलाता है। ध्यातव्य विषय यह है कि पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में वास्तविक ग्रह राशि चक्र के जिस स्थान में देखने को मिल रहा है उसे स्पष्ट ग्रह कहते है।

2.3.1.7 फल किसे कहते है?

गणित से साधन करने पर प्राप्त हुआ मध्यम ग्रह तथा यन्त्रादि की सहायता से आसमान में देखने पर दिखाई देने वाले स्पष्ट ग्रह के बीच का जो अन्तर होता है उसे फल कहते है। अर्थात् जितने अन्तर से स्पष्टग्रह मध्यमग्रह से अन्तरित है उसी अन्तर की फल संज्ञा है।

2.3.2 भगण का ज्योतिषीय अभिप्राय

ज्योतिष शास्त्र में भगण एक चक्कर के बराबर होता है। यह चक्कर ग्रह से सम्बन्धित है। ग्रह अपनी कक्षा में अनवरत भ्रमण करता रहता है। किन्तु भगण के लिए लिया गया ग्रह वास्तविक ग्रह न होकर ग्रह का राशिचक्रीय स्थान है। अर्थात् राशिचक्र में ग्रह जहाँ दिखता है उसे ग्रह स्थान कहते है। उसी ग्रहस्थान को ग्रह के रूप में ज्योतिष में लिया जाता है। उसी ग्रह स्थान की राशिचक्र में जो कोणात्मक व कोणीय गति उत्पन्न होती है उस गति से ग्रह को पूरे राशि चक्र का एक चक्कर व भ्रमण में जो समय लगता है उसे ही भगण काल कहते है। तथा इस प्रकार के चक्कर व भ्रमण को ही एक भगण कहते है।

भम् शब्द से राशि तथा नक्षत्र दोनों का ग्रहण होता है। गण शब्द का अर्थ समूह है। राशियों

के अथवा नक्षत्रों के समूह को भगण कहते हैं। ग्रह जितने समय में राशियों का अथवा नक्षत्रों का भोग करता है वह ग्रह का एक भगण काल है। उस प्रकार से राशि चक्र का एक परिक्रमा ही भगण शब्द से जाना जाता है।

2.3.2.1 भगण कहाँ प्रारम्भ होता है?

वृत्त व चक्र में न आदि होता है न अन्त। उसमें किसी न किसी स्थान को आदि अथवा अन्त मानना पडता है। ज्योतिष में उस आदि और अन्त बिन्दु का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है। सूर्य सिद्धान्त में प्राप्त होता है ** **पौष्णान्ते भगणः स्मृतः**** । पौष्ण संज्ञा से रेवती नक्षत्र को लिया जाता है। अतः रेवती नक्षत्र के अन्त में भगण की समाप्ति होती है। रेवत्यन्त के साथ-साथ ही अश्विनी का भी प्रारम्भ स्थान होता है। अतः ग्रह का भ्रमण अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ से रेवती नक्षत्र के अन्त तक जितने अन्तराल में होता है उसे एक भगण काल कहते है। इसी तरह ग्रह को अश्विन्यादि में भ्रमण को प्रारम्भ करके रेवत्यन्त प्राप्त होने तक एक भगण कहते है।

2.3.2.2 भगणारम्भ स्थान कल्पना या यथार्थ

चक्र में आदि और अन्त न होने के कारण कल्पना करने की या मानने की आवश्यकता पडता है। किन्तु राशि चक्र में ग्रहादि के संचार को जानने के लिए जिस स्थान को प्रारम्भ व अन्त स्थान के रूप में लिया गया है वह कल्पना के अतीत है। इन्हीं बिन्दुओं को प्रारम्भिक तथा अन्त बिन्दु मानने के अनेक वैज्ञानिक आधार हैं। सृष्ट्यादि में सभी ग्रह स्वोच्चादि सहित मेषारम्भस्थानपर थें। वह स्थान अश्विनी नक्षत्र का भी प्रारम्भिक स्थान (बिन्दु) है तथा रेवती नक्षत्र का अन्तिम बिन्दु। अतः भारतीय ज्योतिष में कथित चक्र का यह आरम्भ बिन्दु कल्पना न होकर सृष्टि की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। सम्पूर्ण विश्व व ब्रह्माण्ड प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग से भ्रमण कर रहा है। वर्तमान प्रसरित विज्ञान के अध्येता लोग इसे भूमि के भ्रमण के कारण उत्पन्न सापेक्ष स्थिति भी कह सकते है। अर्थात् चल पृथ्वी के सापेक्ष ग्रहादि का साधन करने के लिए उसको अचलत्व तथा उसकी गति के समान गति को उसके चारों ओर के विश्व में आरोपित करने से ज्योतिष से सम्बन्धित अथवा विज्ञान से सम्बन्धित किसी भी तर्क में विकार उत्पन्न नहीं होता है। तथा भूमि के अभिप्राय से ग्रहादि का साधन अभीष्ट होने के कारण भूमि के स्थिरत्व होने की कल्पना ही युक्ति युक्त है।

2.3.2.3 भगण किनके और कितने प्रकार के?

किसी निश्चित स्थान से भ्रमण करना प्रारम्भ कर पुनः एक निर्धारित स्थान के अन्तर्गत उस स्थान को प्राप्त करने वाले किसी भी पिण्ड का एक भ्रमण ही भगण कहलाता है। ज्योतिष के उद्देश्यों

की पूर्ति के लिए परिकल्पित भगण स्थिति भी अनेक प्रकार की है। सभी ग्रह प्राग्गति के साथ पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करते हैं। ग्रहों की गति और स्थिति से सम्बन्धित जानकारियों को इस इकाई के प्रारम्भ में हम पढ चुके हैं। ज्योतिष में भगण की परिगणना ग्रहों के साथ साथ ग्रह गति को प्रभावित करने वाले स्थानों का भी लिया गया है।

संक्षेप में जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रहगतिप्रभावकारक स्थानों का परिचय इस प्रकार से है। अपनी अपनी कक्षा में प्रवह वायु के कारण प्रेरित ग्रहों की गति को प्रभावित करने वाले स्थान मुख्यतः तीन प्रकार के होते है। वे है शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात। इन स्थानों के बारे में आप यथा स्थान जानकारी प्राप्त करेंगे। उच्च ग्रह कक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम प्रदेश है। ग्रह का मन्दप्रतिवृत्त में दूरतम बिन्दु मन्दोच्च तथा शीघ्रप्रतिवृत्त में दूरतम बिन्दु शीघ्रोच्च कहलाता हैं। ये दोनों ग्रह की पूर्वाभिमुख गति के घटने और बढने के मुख्यकारक होते हैं।

यद्यपि पूरा ब्रह्माण्ड भ्रमणशील है तथा भूमि के अभिप्राय से देखने पर चारों ओर का विश्व निश्चित नियमों का अनुकरण करते हुये भ्रमण करता हुआ स्पष्ट नजर आता है। किन्तु ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य काल साधन है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चारों ओर भ्रमण शील सम्पूर्ण विश्व में से पूर्वाभिप्रायिक गति से युक्त ग्रह संज्ञक पिण्ड ही लिए गये है। अतः सिद्धान्त ज्योतिष में ग्रह तथा ग्रहों की गति के कारक के रूप में जानने वाले उच्च एवं पात संज्ञकों के भी भगण स्वीकार किये गये हैं। इनके अतिरिक्त किसी की भी गति व भगण कार्य साधन में उपयुक्त नहीं होते हैं।

2.3.3 सारांश

इकाई के इस भाग का सारांश विषय की जानकारी तथा अवगमन को और सरल कर सकता है। इकाई के इस भाग में हम ने भगण के बारे में एक रेखात्मक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया हैं। ग्रहों के भगणों के बारे में जानने के लिए भगण शब्द का अर्थ भी जानना आवश्यक होता है। हमने यह जाना है कि राशिचक्र की एक बार आवृत्ति के लिए ग्रह को जो समय लगता है उसे भगण काल कहते है तथा उस एक चक्कर को भगण कहते है। चक्र , क्षेत्र या वृत्त में कोई प्रारम्भिक या कोई अन्तिम बिन्दु नहीं होते हैं। उसकी परिधि में प्रत्येक बिन्दु प्रारम्भिक है तथा प्रत्येक बिन्दु अन्तिम है। अतः जिज्ञासा साधारण रूप से उत्पन्न होती है कि राशिचक्र में भगण को जानने की दृष्टि से किस स्थान को प्रारम्भिक माना एवं किस स्थान को अन्तिम बिन्दु माना है। इसी क्रम में “
पौष्णान्ते भगणः स्मृतः “ इस सूर्यसिद्धान्तकार की उक्ति का भी परिचय हुआ।

ग्रहों के भगणों के बारे में विचार करते समय स्वाभाविक रूप से कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। वे ग्रह के बारे में और ग्रहों के भ्रमण कक्षाओं के बारे में हो सकते है। अतः इसी भाग के अन्तर्गत हमने

संक्षेप में इन जिज्ञासाओं को भी शान्त करने का प्रयास किया हैं। भगण की परिकल्पना भ्रमण करने वाले प्रत्येक पिण्ड की कर सकते हैं। विश्व की प्रत्येक वस्तु भ्रमणशील ही है। आधुनिक विज्ञान से प्राप्त जानकारियों के कारण भी ज्योतिष में नये प्रश्न उत्पन्न होते हैं। उन सबको ध्यान में रखते हुए ग्रह के गतिकारकों को तथा मान्य भगणों के बारे में भी जानकारियाँ इस भाग में प्राप्त की थी।

2.3.4 बोध प्रश्न

1. भगण किसे कहते है?
2. भगण का प्रारम्भ स्थान क्या है?
3. ग्रह किस वृत्त में भ्रमण करते है?
4. गृह्णातीति ग्रहः । यह उक्ति किन के लिए प्रयुक्त है?
5. पौष्णान्ते भगणः स्मृतः। यह कहा की उक्ति है?
6. ग्रहों के अतिरिक्त भगण किनके होते है?
8. ग्रह स्थान कहा होता है?
9. मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर क्या कहलाता है?
10. गणितागत ग्रह को क्या कहते है?
11. वेध से प्राप्त और गणितागत ग्रह एक होने पर क्या कहलाता है?

2.4 विभिन्न आचार्यों के द्वारा उक्त भगण

सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित प्रत्येक ग्रन्थ में भगणों की संख्या उपलब्ध है। उसी प्रकार से जितने आचार्य अपनी विशेषताओं के साथ ग्रह साधन विधि बताएँ हैं उन सभी की भगण संख्या भी उपलब्ध है। भगणविचार के सन्दर्भ में मुख्य रूप से जिन परम्पराओं का प्रचलन सिद्धान्त ज्योतिष में देखा जाता है उनकी जानकारी विषयावगाहन तथा नैपुण्य के लिए पर्याप्त है। इस भाग में सूर्य, आर्य तथा ब्रह्म परम्पराओं में उक्त भगणों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि आप पूर्व इकाई में तीनों परम्पराओं से सम्बन्धित सामान्य जानकारी प्राप्त किये हैं।

2.4.1 सूर्यसिद्धान्त में प्रोक्त विभिन्न भगण

2.4.1.1 एक महायुग में सूर्यादि ग्रहों के भगण

ग्रह का नाम	भगण संख्या
सूर्य, बुध और शुक्र	४३२००००

चन्द्र	५७७५३३३६
मंगल	२२९६८३२
बृहस्पति	३६४२२०
शनि	१४६५६८

महायुग का प्रमाण भी ४३२०००० सौर वर्षों के समान है। अर्थात् सूर्य के भगणों के समान ही महायुगीय वर्षों की संख्या भी है। अवगमन हेतु युगादि व्यवस्था को भगण विचार सन्दर्भ में पुनः एक बार स्मरण कर सकते है।

उपरोक्त सारिणी में सूर्य, बुध तथा शुक्र के लिए समान भगण दिए है। स्वल्पान्तर के कारण सूर्य के ही भगणों के समान बुध और शुक्र के भी भगण लिए जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन ग्रहों के भगणों का विचार नहीं किया जाता है। बुध एवं शुक्र के जो भगण है वे उनके ही शोघ्रोच्च के माने जाते है।

2.4.1.2 एक महायुग में चन्द्रोच्च, शीघ्रोच्च व पात भगण

ग्रह का नाम	**शीघ्रोच्च भगण संख्या**
चन्द्र	४८८२०३ (मन्दोच्च)
कुज	४३२००००
बुध	१७९३७०६०
शुक्र	७०२२३७६
बृहस्पति	४३२००००
शनि	४३२००००

चन्द्रमा का शीघ्रोच्च नहीं है। अतः यहाँ चन्द्रोच्च का महायुगीय भगण प्रदत्त है। उच्च से तात्पर्य मन्दोच्च से है। मंगल, बृहस्पति और शनि के शीघ्रोच्चों के लिए सूर्य का ही महायुगीय भगण दिया गया है। अर्थात् मध्यम सूर्य ही मंगल, बृहस्पति और शनि का शीघ्रोच्च है। ध्यातव्य है कि उच्च और पात ग्रह के गति कारक होते है। इनसे सम्बन्धित अधिक जानकारी हम ग्रह गति विवेचन नामक इकाई में प्राप्त कर सकते है।

2.4.1.3 युगादि भगण से कल्पादि भगण

उपरोक्त महायुगीय भगणों के आधार पर कल्पगत भगणों को जानने की प्रक्रिया

सूर्यसिद्धान्तकार सरल रीति से इस प्रकार बताते हैं -

एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः

जिन ग्रहों के, उच्च के व पात के भगण एक महायुग अर्थात् १२००० दिव्यवर्ष या ४३२०००० सौर वर्ष के कालमान के लिए बताए गए है उनको १००० से गुणित करने पर एक कल्प के भगण प्राप्त हो जाएंगे। एक कल्प में एक हजार महायुग होते है। एक हजार महायुगों से कल्पित ब्रह्मा का एक दिन का समय व कल्प संज्ञक काल का खण्ड महायुगीय भगणों को ही सहस्रगुणित प्रमाण में धारण करते हैं।

2.4.1.4 मन्दोच्च व पात भगण

इस भाग में ग्रहों के मन्दोच्चों के भगण प्रदत्त है। चन्द्रमा का भगण पूर्व में ही प्रदत्त है। यहाँ सूक्ष्मता से ध्यातव्य विषय एक है। सूर्यसिद्धान्त में ग्रहों के तथा शीघ्रोच्चों के भगण महायुग अर्थात् ४३२०००० सौरवर्षों के दिए हैं। किन्तु मन्दोच्च के भगण कल्प काल के लिए दिये गये है केवल चन्द्रमा के मन्दोच्च को छोडकर। मन्दोच्चों की अत्यल्प गति ही कल्पीय भगण देने का एक मात्र कारण है। विभिन्न ग्रहों के मन्दोच्च भगणों को ध्यान से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाता है।

ग्रह का नाम	**मन्दोच्च भगण संख्या**
सूर्य	३८७
भौम	२०४
बुध	३६८
गुरु	९००
शुक्र	५३५
शनि	३९

इसी प्रकार से चन्द्रमा को छोडकर अन्य सभी ग्रहों के पातों के भगण भी कल्प प्रमाण के बताये गये हैं। यहाँ पर भी कारण मन्दोच्चवत् ही जानना है। अर्थात् अत्यन्त अल्प गति से अत्यल्प भगण उत्पन्न होने के कारण पातों का भी भगण कल्प काल के लिए ही पठित है।

ग्रह का नाम	**पात भगण संख्या**
चन्द्र	२३२२३८ (महायुगीय)

भौम	२१४
बुध	४८८
गुरु	१७४
शुक्र	९०३
शनि	६६२

इन भगणों की संख्या को देखने पर यह सरलता से समझ में आ जाता है कि इनका भगण महायुग के लिए क्यों नहीं बताया गया है। उदाहरण के लिए सूर्य मन्दोच्च का भगण एक कल्प में ३८७ बताया गया है। कल्प में एक हजार महायुग होते हैं। अर्थात् लगभग २.५ महायुगों में सूर्य मन्दोच्च का एक भगण पूरा होता है। अर्थात् सूर्य मन्दोच्च को राशि चक्र का एक बार भ्रमण करने के लिए १११६२७९० सौरवर्ष का समय लगता है। अतः इन सभी का भगण महायुग के लिए नहीं कहा गया।

2.4.2 सिद्धान्तशिरोमणि में प्रोक्त विभिन्न भगण

सिद्धान्त शिरोमणि में आचार्य भास्कर के द्वारा कल्पगत व ब्रह्मदिनगत भगणों की संख्या ही बताई गई है। सिद्धान्तशिरोमणि के ग्रहगणित नामक तीसरे भाग में मध्यमाधिकार के भगणाध्याय में आचार्य के द्वारा भगण संख्या प्रदत्त है। ध्यातव्य है कि सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ज्योतिष का ग्रन्थ चार भागों में विभक्त है। काल क्रम में प्रथम भाग, जिस में आचार्य के द्वारा व्यक्त गणित का वर्णन किया गया है, लीलावती नाम से पृथक ग्रन्थ के रूप में प्रचलन में आ गया। इसी प्रकार से द्वितीय भाग बीज गणित के नाम से प्रसिद्ध हो गया जिस में अव्यक्त गणित का वर्णन प्राप्त है। तीसरे और चौथे भागों को मिलाकर वर्तमान में सिद्धान्त शिरोमणि के रूप में प्रचलित है।

ग्रहों के भगण

ग्रह का नाम	भगण संख्या
सूर्य, बुध, शुक्र	४३२००००००
चन्द्र	५७७५३३००००००
भौम	२२९६८२८५२२
गुरु	३६४२२६४५५
शनि	१४६५६७२९८

मन्दोच्च भगण

ग्रह का नाम	मन्दोच्च भगण संख्या
सूर्य	४८०
चन्द्र	४८८१०५८५८
भौम	२९२
बुध	३३२
गुरु	८५५
शुक्र	६५३
शनि	४१

शीघ्रोच्च भगण

ग्रह का नाम	शीघ्रोच्च भगण संख्या
भौम	४३२००००००
बुध	१७९३६९९८६८४
गुरु	४३२००००००
शुक्र	७०२२८९४९२
शनि	४३२००००००

पात भगण

ग्रह का नाम	पात भगण संख्या
चन्द्र	२३२३१११६८
भौम	२६७
बुध	५२१
गुरु	६३
शुक्र	८९३

शनि	५८४

2.4.3 आर्यभटीयम् में प्रोक्त विभिन्न भगण

ग्रह भगण

ग्रह का नाम	**भगण संख्या**
सूर्य, बुध शुक्र	४३२००००
चन्द्र	५७७५३३३६
भूमि	१५८२२३७५००
भौम	२२९६८२४
गुरु	३६४२२४
शनि	१४६५६४

यहाँ पर प्रदत्त मान एक महायुग के है।

ध्यातव्य है कि प्रदत्त भगणों में पृथ्वी का भगण है। यह सर्वविदित है कि भारतीय ज्योतिर्विदों में पृथ्वी की गति के बारे में बताने वाले अकेले आचार्य है आर्यभट। किन्तु इस बात को किसी विचार वैमत्य व सिद्धान्त विरोधी मानने की आवश्यकता नहीं है। भूभ्रमण के सन्दर्भ में आचार्य के वचन तथा यहाँ पर प्रदत्त भूभगण से भी एक बात स्पष्ट हो जाती है। अन्य सभी आचार्य भपंजर की व भगोल की गति स्वीकार करते है। वस्तुतः भपंजर में व भगोल में अनुभूत होने वाली गति पृथ्वी की ही है। वास्तव में गति किस में है यह जिज्ञासावश उत्पन्न होने वाला प्रश्न है। पृथ्वी की सापेक्ष गति भपंजर में अनुभूत होती है तथा काल गणना व ग्रह साधन भू सापेक्ष होता है। अतः पृथ्वी की वास्तविक गति को चारों दिशाओं पर आरोपित करना उद्देश्यपूर्ति के लिए पूर्णतः वैज्ञानिक है। अतः भारतीय ज्योतिष में पृथ्वी में गति है कि नहीं यह कोई विचारणीय प्रश्न ही नहीं रहा।

उच्च भगण

नाम	**भगण संख्या**
चन्द्र	४८८२१९

बुध	५७७५३३३६
भौम	४३२००००
गुरु	४३२००००
शुक्र	७०२२३८८
शनि	४३२००००

पात भगण

पात का नाम	**भगण संख्या**
चन्द्र	२३२२२६

हमने गत इकाई में यह जानकारी प्राप्त की हैं कि आर्यभटीयम् में चार पाद है। वे है गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलपाद। इनमें गीतिकापाद में आचार्य के द्वारा आवश्यक सभी मान प्रदान किए गये है। बाकी दोनों आचार्यों से आर्यभट भिन्नता का प्रदर्शन अवश्य करते है। आचार्य के द्वारा ग्रहों के शीघ्रोच्च भगण बताये गये है तथा चन्द्रपात का ही भगण बताया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आचार्य मन्दोच्च और अन्य ग्रहों के पातों का विचार नहीं करते है। भगणों के प्रस्ताव के उपरान्त आचार्य विभिन्न ग्रहों के मन्दोच्च स्थान तथा पात स्थानों का विवरण दिये है तथा उनको भी वे गतिशील मानते हैं। किन्तु अपनी कृति में आचार्य इनके भगणों का प्रस्ताव नहीं किये हैं।

2.4.4 बोध प्रश्न

1. सूर्य सिद्धान्त में प्रदत्त सूर्यादि ग्रहों के भगण किस काल खण्ड के अन्तर्गत आते है?
2. महायुगीय भगण को कल्पीय भगण कैसे बनाया जाता है?
3. सिद्धान्त शिरोमणि में प्रदत्त भगण महायुगीय अथवा कल्पीय?
4. आर्यभट के द्वारा प्रदत्त विशेष भगण किनके है?

2.5 भगण का प्रयोग

काल अनादि और अनन्त है। मानव परिप्रेक्ष्य में देखने पर विश्व भी अनन्त है अर्थात् उसका आदि और अन्त मानव मस्तिष्क से परे है। उस अनादि और अनन्त काल की गणना करने का

माध्यम ग्रह और नक्षत्रचक्र है। उस नक्षत्रचक्र में ग्रहों की निश्चित अवधि में निश्चित मात्रा में परिक्रमाएँ होती हैं। अर्थात् राशिचक्र भ्रमण में ग्रहों की कोई अनिश्चितता नहीं है।

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न साधारणतः उत्पन्न होता है कि यदि ग्रहों की निश्चित चाल या गति है तो उनके साधन के लिए इतना आयास क्यों? ग्रह निश्चित कालावधि में काल साधन व काल गणना में मुख्य रूप से उपयुक्त होने वाले राशिचक्र की निश्चित परिक्रमाएँ अवश्य करते हैं किन्तु उन परिक्रमाओं के अन्तराल में किसी अभीष्ट समय पर काल साधन करने की चेष्टा करने पर समस्या उत्पन्न होती है। ग्रहों के दीर्घकालिक भ्रमण के अन्तर्गत समाहित चलन प्रत्येक समय में एक जैसा नहीं होता है। अत एव कहा जाता है कि ग्रहों की विलक्षण गति होती है। अर्थात् ग्रह कभी अधिक गति से तथा कभी अल्पगति से चलता है। इसी प्रकार से ग्रह स्थान विशेष पर अधिक अथवा अल्प गति को धारण कर लेते हैं।

अतः सृष्ट्यारम्भ व कल्पारम्भ व युगारम्भ में ग्रहों की गति व परिक्रमा प्रारम्भ होने के समय में जो निश्चित स्थिति है वह निश्चितता पुनः परिक्रमा की समाप्ति पर ही होती है। इसके मध्य में किसी भी अभीष्ट समय पर ग्रह को जानने के लिए आनुपातिक अथवा औसतन ग्रह की अपेक्षा होती है। उस औसतन मान का साधन करने पर ही वास्तविक ग्रह का साधन सम्भव होता है।

मुख्यतः भगणों का प्रयोग औसतन मान प्राप्त करने के लिए किया जाता है। ग्रह की वास्तविक स्थिति औसतन मान से अधिक , अल्प या कुछ सन्दर्भों में समान हुआ करती है। यदि औसतन तथा वास्तविक मान समान है तब अधिक प्रयास करने की अपेक्षा नहीं होती है। किन्तु अधिक या कम होने पर वास्तविक तथा औसतन का अन्तर जानना पडता है। ग्रह स्पष्टीकरण में उसी अन्तर को फल कहा जाता है।

पूर्व इकाई में मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह के बारे में जानकारी प्राप्त की हैं। उस सन्दर्भ में प्रस्तावित मध्यम ग्रह को ही औसतन ग्रह कहते है। औसतन मान का साधन सिद्धान्त ज्योतिष में अनुपात अथवा त्रैराशिक से किया जाता है। आनुपातिक स्थिति जानने का वैकल्पिक मार्ग ही त्रैराशिक विधि है।

यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत्॥

ग्रह के भगण को दिनराशि से गुणा करके सावन दिनों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह प्राप्त होता है।

मध्मग्रह = (महायुगीय ग्रह**भगण** * गतदिन) / महायुगीय सावनदिन

2.5.1 बोध प्रश्न

1. भगण संख्या का प्रयोजन कहां पर है?

2. त्रैराशिक किसे कहते है?

3. मध्यम ग्रह साधन हेतु प्रयुक्त त्रैराशिक विधि में तीन राशियों की संज्ञा क्या है?

4. मध्यम ग्रह साधन हेतु प्रयुक्त त्रैराशिक विधि से प्राप्त होने वाला चतुर्थ राशि का नाम क्या है।

2.6 सारांश

ग्रह साधन में उपयुक्त भगण का विचार इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। राशि चक्र को एक बार भ्रमण करने के लिए ग्रह को जो समय लगता है उसे भगण कहते है। एक निश्चित कालावधि में ग्रह जितने बार राशि चक्र की परिक्रमा करता है उतनी भगण संख्या कहलाती है। अनुपात से अथवा त्रैराशिक विधि से मध्यम ग्रह को प्राप्त करने के लिए इस भगण संख्या की आवश्यकता है।

विभिन्न आचार्यों के द्वारा उक्त भगणों की संख्या भी इस इकाई में प्रस्तुत किया गया। इन विचारों के साथ साथ भगण को तथा भगण के आधार पर ग्रह को प्राप्त करने के लिये अपेक्षित सभी अंशों को संक्षेम में जानने का प्रयास इस इकाई में किया गया है। काल साधन हेतु स्पष्ट ग्रह की अपेक्षा है। स्पष्ट ग्रह साधन के लिए मध्यम ग्रह अपेक्षित है तथा मध्यम ग्रह का ज्ञान भगण संख्या से ही हो सकता है। अतः ग्रहों के भगणों के विषय में सर्वादौ ज्ञान प्राप्त करना विषय प्रवेश के लिए अपेक्षित है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.3.4

1. राशि चक्र भ्रमण को भगण कहते है।
2. भगण का प्रारम्भ स्थान पौष्णान्त है।
3. ग्रह विमण्डल में भ्रमण करते है।
4. गृह्णातीति ग्रहः । यह उक्ति ग्रह के लिए प्रयुक्त है।
5. पौष्णान्ते भगणः स्मृतः। यह सूर्यसिद्धान्त की उक्ति है।
6. ग्रहों के अतिरिक्त भगण ग्रहों के गति कारकों के होते हैं।
8. ग्रह स्थान राशि चक्र में होता है।
9. मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर फल कहलाता है।

10. गणितागत ग्रह को मध्यम ग्रह कहते है।

11. वेध से प्राप्त और गणितागत ग्रह एक होने पर स्पष्ट ग्रह कहलाता है।

2.4.4

1. सूर्य सिद्धान्त में प्रदत्त सूर्यादि ग्रहों के भगण महायुग के अन्तर्गत आते है।
2. महायुगीय भगण को 1000 से गुणा करने पर कल्पीय भगण प्राप्त होता है।
3. सिद्धान्त शिरोमणि में प्रदत्त भगण कल्पीय भगण है।
4. आर्यभट के द्वारा प्रदत्त विशेष भगण पृथ्वी के है।

2.5.1

1. भगण संख्या का प्रयोजन मध्यम ग्रह साधन में है।
2. तीन राशियों के आधार पर चतुर्थ राशि का साधन त्रैराशिक कहलाता है।
3. ग्रह भगण, अहर्गण तथा भगण कालिक सावनदिन।
4. मध्यम ग्रह

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. कल्पित उदाहरण के आधार पर भगण संख्याओं के सहारे मध्यम ग्रह का साधन करें।
2. उच्च तथा पात के प्रदत्त भगण संख्या के आधार पर अभीष्ट कालिक उच्चादि का साधन करें।

इकाई - 3 ग्रहगति विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

हमने इस ब्लाक की गत दो इकाइयों में सिद्धान्त ज्योतिष तथा ग्रह भगणों से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य कार्य काल साधन करने के लिए ग्रहों का साधन करना है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है राशि चक्र में अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति जानना। ग्रह गतिमान होने के कारण सदा उनका स्थान एक नहीं रहता है। इसी प्रकार से दूसरी इकाई में भगण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त की हैं। ग्रह अपनी अपनी गति से राशिचक्र का एक भ्रमण जितने समय के अन्तराल में पूरा करता है उतने समय को भगण काल कहते है तथा उस भ्रमण को भगण कहते हैं। अर्थात् ग्रहों की गति के कारण उत्पन्न परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहों की गति सिद्धान्त ज्योतिष में मुख्य स्थान को प्राप्त करती है।

इस इकाई में ग्रहों की गति से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की जानकारियाँ प्राप्त करेंगे। ग्रहों की गति के बारे में विचार करने से पहले ग्रह किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इन बातों की स्पष्ट जानकारियाँ प्राप्त करना होता है। उसके पश्चात् ग्रह गति के प्रकारों से सम्बन्धित विवरण प्राप्त करना है। ग्रह भ्रमण से तथा ग्रह से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की गतियों से अवगत होने के पश्चात् ग्रह गति की साधन विधि विषय की स्पष्टता की दृष्टि से आवश्यक है। इस इकाई में इन तीनों विषयों को ध्यान में रखते हुए प्रथम भाग में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ, द्वितीय भाग में ग्रहों की गति के विभिन्न प्रकारों पर विवरण तथा तीसरे भाग में ग्रह गति की साधन विधियाँ प्रस्तुत कीये गई हैं।

स्थान - स्थान पर विषय के अवबोध की दृष्टि से बोध प्रश्न, इकाई के अन्त में बोध प्रश्नों के उत्तर के साथ - साथ अभ्यास हेतु प्रश्न एवं सम्बन्धित ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों की विभिन्न प्रकार की गतियों के बारे में जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रहों के साधन से सम्बन्धित विविध विधियों को जानना है।
- इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ग्रह गति के विभिन्न कारणों से अवगत होना है।
- हम चारों ओर के पूरे आकाश को भ्रमण करते हुए देखते हैं। किन्तु उस आकाश के कुछ ही पिंडों का भ्रमण ज्योतिष में बताया गया है। उसका कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

- विगत इकाई में जानकारी प्राप्त की है कि निश्चित समय के अन्तराल में ग्रहों के भगण निश्चित होते हैं। अर्थात् ग्रह गति निश्चित होने पर ही यह सम्भव होता है। किन्तु अभीष्ट समय का ग्रह साधन करते समय निर्देश मिलता है कि ग्रहों की गति विलक्षण होती है। इस विलक्षणता का कारण जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।
- कुल मिलाकर ग्रह कैसे भ्रमण करते हैं और उनकी कितनी प्रकार की गतियाँ होती हैं तथा उन गतियों के साधन करने का मुख्य आधार व सूत्र क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर जानना ही इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है।

3.3 ग्रह भ्रमण

ग्रहों का नाम प्रायः सभी सुनते हैं। प्राचीन काल में जिनको ग्रह कहते थे उनमें कुछ आधुनिक समय में ग्रहों के नाम से नहीं जाने जाते हैं तथा आधुनिक समय में कुछ और ग्रह प्राचीन सूची में जोडे गए हैं। इन दुविधाओं के बीच कुछ प्राचीन विधाओं को विज्ञान सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो कुछ आधुनिकता के आधार पर प्राचीन विचारधारा को पाखंड कहने का प्रयास करते हैं। वास्तव में दोनों विचारधाराओं की धरा एक नहीं है तथा दोनों की तुलना नहीं की जा सकती है। दोनों विषयों का उद्देश्य तथा प्राप्तव्य एक नहीं होना ही तुलना के अभाव का मुख्य कारण है। इतने कोलाहल के बीच में ग्रहों के भ्रमण से सम्बन्धित जानकारियाँ प्राप्त करते समय कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। अतः यहाँ पर हम विभिन्न विषयों की जानकारी प्रश्नों के माध्यम से बिन्दुवार (प्राप्त) जानने का प्रयास करेंगे।

3.3.1 ग्रह किसे कहते है?

आकाश में अनेक पिण्ड दिखाई देते हैं। सभी एक जैसे होते हैं। उनमें नग्न चक्षुओं से अन्तर पाना सम्भव नहीं होता है। किन्तु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि कुछ टिमटिमा रहे हैं और कुछ में कोई अन्तर देखने को नहीं मिलता है। जो टिमटिमा रहे हैं उनको हम तारें कहते हैं। तारें जलते आग के गोले हैं। आग की लपटों के कारण वे टिमटिमाते नजर आते हैं। आग की ज्वाला को दूर से देखने पर उसके रंग बदलते हुये नजर आते हैं। तारें तो हजारों करोंडों मील दूर में स्थित होने के कारण केवल टिमटिमाते नजर आते हैं। जिनमें आग की लपटे नहीं है वे भी हम को प्रकाश के साथ ही नजर आते हैं। ये सभी सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित होकर हमें नजर आते हैं अर्थात् आकाश में दो प्रकार के प्रकाशपिण्ड हैं जिनमें कुछ स्वयं आग की लपटें बिछा रहे हैं तो कुछ सूर्य के प्रकाश के

कारण प्रकाशित नजर आते हैं। एक आम आदमी की भाषा में कहना है तो स्वयं प्रकाश से प्रकाशित पिण्ड तारा है तथा जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित है वह ग्रह हैं। किन्तु यह साधारण परिभाषा ज्योतिष में ग्रहण करने वाले ग्रह शब्द के लिए पर्याप्त नहीं है क्यों कि ज्योतिष उस प्रकाशात्मा सूर्य को भी ग्रह ही मानता है।

अब हम सरल रीति से ग्रह को जानने का प्रयास करते हैं। **गृह्णातीति ग्रहः**। संस्कृत में ग्रहण करने के अर्थ में जो क्रिया वाचक शब्द प्रयुक्त होता है वह है **ग्रह उपादाने**। उपरोक्त उक्ति में कहा है कि **गृह्णाति इति ग्रहः**। अर्थात् जो ग्रहण करता है वह ग्रह होता है। इससे स्पष्ट होता है कि आकाश में कुछ पिण्ड कुछ पिण्डों का ग्रहण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु , शुक्र , शनि ये सात आकाशीय पिण्ड दूसरे पिण्डों का ग्रहण करते हुये दिखाई देता हैं।

दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रह किसे ग्रहण करते है? आकाश में एक से अधिक तारों से कुछ आकृतियाँ नजर आती हैं। इन आकृतियों का प्राचीनों ने नामकरण किया हैं। अब इस बात को सिद्ध करना कठिन है कि उन तारा समूहों का नामकरण किसने किया है। किन्तु इस नामकरण की प्रथा प्राच्य में भी तथा पाश्चात्य में भी प्रचलन में रही है। इन्ही स्थिर तारा समूहों को नक्षत्र कहते हैं। तारों से निर्मित ये नक्षत्र वैदिक साहित्य में भी महोन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित हुए हैं तथा परम्परा में इनका महत्त्व वर्णनातीत है।

ग्रहों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि वे सदा तारों के समूह से निर्मित एक ही आकार में अर्थात् नक्षत्र में दृश्य नहीं होते हैं। वे क्रमशः पूर्व दिशा की ओर एक एक नक्षत्र को पार करते हुए आगे को चलते रहते हैं। इसकी अनुभूति निरन्तर **वेध** से प्राप्त होती है। अर्थात् सूर्यादि उपरोक्त सात आकाशीय पिण्ड एक एक नक्षत्र का ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं। अतः **गृह्णातीति ग्रहः** इस उक्ति से नक्षत्रों को ग्रहण करने में सक्षम आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा से व्यवहार करने का उपदेश मिलता है ।

राहु को भी ज्योतिष में एक ग्रह के रूप में स्वीकारते है। यह ग्रह आकाश में दृश्य नहीं होता है। क्योंकि इसका कोई आकार ही नहीं है। यह एक स्थान विशेष है। सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमन मार्ग के मिलन बिन्दु को ही राहु कहते है। अतः राहु को मिलाकर ज्योतिष में ग्रह आठ एवं केतु सहित नौ हैं। केतु राहु का ही अगला हिस्सा है। फलित ज्योतिष में कर्मफल को जानने की प्रक्रिया में राहु के ही इस हिस्से को केतु के नाम से व्यवहार करते है।

सन्दर्भवश यहाँ राहु और केतु को प्रदत्त ग्रहसंज्ञा के सन्दर्भ में संक्षेप में विचार करते है। राहु और केतु सूर्य चन्द्र के भ्रमण मार्गों के सम्पात बिन्दु है जिनका पात नाम से सिद्धान्त ज्योतिष में

व्यवहार होता है। सिद्धान्त ज्योतिष में राहु शब्द का व्यवहार देखने को नहीं मिलता है। राहु नाम से प्रसिद्ध यह सम्पात बिन्दु यद्यपि नहीं दिखता है किन्तु इसकी पहचान सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों से होती है।

सूर्य और चन्द्र के भ्रमण मार्गों को एक करने वाले ये बिन्दु व पात भी स्थिर नहीं होते अपितु ये विलोम गति से भ्रमण करते हैं। अर्थात् वे भगोल की पश्चिमाभिमुखी गति के साथ साथ ही चलते है। इनकी पहचान चन्द्रमा के शराभाव से की जाती है। अतः हम इनको चन्द्रमा का शराभाव स्थान भी कह सकते हैं। चन्द्रमा का शराभाव भी आकाश में एक निश्चित स्थान में नहीं होता है। राशिचक्र के जिस स्थान में यह शराभाव स्थान या सम्पात बिन्दु या पात वहीं राहु का स्थान है।

राहु का आकार न होने के कारण, दिखाई नहीं देने के कारण तथा ग्रहण में अन्धकार का कार्य करने के कारण राहु और केतु को तमोग्रह कहते हैं। प्रसंगवश इनका विचार ग्रहण विचार के सन्दर्भ में विस्तार पूर्वक किया जाएगा।

3.3.2 ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?

हमने इस ब्लाक की द्वितीय इकाई में ग्रहों के भगणों के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। उस सन्दर्भ में ग्रहों की स्थिति के बारे में भी जानकारियाँ प्राप्त की थी। उनको एक बार और स्मरण करने की आवश्यकता है। पृथ्वी के चारों ओर मानव समान दृष्टि से देख सकता है। अतः मानव को चारों ओर सभी आकाशीय पिण्ड समान दूरी में विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। इस स्थिति को भू - सापेक्ष स्थिति कहते हैं।

भूसापेक्ष सभी ग्रह पृथ्वी के चारों ओर पूर्व की गति से चलते हैं। अर्थात् ग्रह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर एक पथ में चलते हुए दिखाई देते हैं। उसी पथ को हम राशिचक्र कहते हैं। उसी पथ में दर्शन देने वाले अनेक तारों से उत्पन्न विभिन्न आकारों को हम ने नक्षत्र संज्ञा दी है। उन नक्षत्रों से उत्पन्न विभिन्न समुदायों को राशि संज्ञा दी गई है। ग्रह, उन राशियों को पार करते हुए अथवा ग्रहण करते हुये आगे बढते हैं।

संक्षिप्त में बताया जाए तो पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्ताकार कक्षा में राशियाँ स्थित हैं अथवा पृथ्वी से दृश्य है उसी राशिचक्र संज्ञक सूर्यभ्रमण मार्ग में ग्रह चलते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात् ग्रह गति भूमि की दृष्टि से राशिचक्र में नापी जाती है।

3.3.3 ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?

इस विशाल विश्व में कोई भी पिण्ड स्थिर नहीं है। उस अनन्त विश्व में कब क्या हो रहा है अथवा किसके साथ क्या होगा इत्यादि प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्त ज्योतिष में नहीं मिलते हैं। उसका

एक मात्र कारण है सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य काल का साधन करना है। भूमि के अभिप्राय से काल गणना करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल ग्रहों की स्थिति से ही सम्भव है। अतः भूमि के अभिप्राय से ग्रहों में जो हाव भाव उत्पन्न होते हैं उनका ही वर्णन सिद्धान्त ज्योतिष का कार्य है।

इस प्रस्तुति का अर्थ यह भी नहीं है कि आचार्यों को विश्व की जानकारी नहीं थी। यदि नहीं होती तो वे वैश्विक पदार्थों एवं पिण्डों का वर्णन भूसापेक्ष नहीं कर पाते। यहाँ विचारणीय विषय विश्व नहीं है अपितु ग्रहसाधन है। ग्रह भी वैदिक कर्माचरण के लिए भूसापेक्ष ही अपेक्षित हैं।

सम्पूर्ण विश्व पश्चिम की ओर चल रहा है। विश्व के साथ विश्व के अंग भगोल, भचक्र, राशिचक्र, उसमें स्थित ग्रह आदि सभी अत्यन्त वेग से पश्चिम की ओर भ्रमण कर रहे हैं। उनके भ्रमण का मुख्य कारण शास्त्र में प्रवह नामक वायु बताया गया है। उस प्रवह नामक वायु के अत्यन्त वेग से प्रेरित सभी आकाशीय पिण्ड पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर अनवरत चल रहे हैं तथा वे सभी पृथ्वी की परिक्रमा लगभग 60 घटी के समय में कर लेते हैं। यह साठ घटी आज के चौबीस घण्टे के बराबर है।

नक्षत्रों के साथ साथ पश्चिम दिशा की ओर चलने वाले ग्रह अल्पगति से पूर्व की ओर भी खिसकते हैं। इस बात को सूर्यसिद्धान्त में इस प्रकार से प्रस्तुत करते है -

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः।।

इस श्लोक का पदच्छेद इस प्रकार से किया जा सकता है । पश्चात् व्रजन्तः अतिजवात् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः जीयमानाः तु लम्बन्ते तुल्यं एव स्वमार्गगाः।

इन पदों का अन्वय इस प्रकार से किया जा सकता है। स्वमार्गगाः ग्रहाः नक्षत्रैः सततम् अतिजवात् पश्चात् व्रजन्तः जीयमानाः इव तुल्यम् एव लम्बन्ते।

स्वमार्गगाः (अपने अपने मार्गों में चलने वाले) ग्रहाः (ग्रह) नक्षत्रैः (नक्षत्रों के साथ) सततं(सदा, अनवरत) अतिजवात् (अति वेग से) पश्चात् (पश्चिम की ओर) व्रजन्तः (चलते हुए) जीयमानाः (जीता हुआ) इव (जैसे) तुल्यं एव (समान ही) लम्बन्ते (लम्बित होते है या खिसकते है)

आचार्य गण इस आकाशीय दृश्य को समझाने के लिए प्रायः कुलाल चक्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कुलाल चक्र के साथ साथ दो पहियाँ वाहन का पहिया भी उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। दोनों उदाहरणों को संक्षेप में अनुभूत करते है। कुलाल चक्र उस चक्र को कहते है जिस पर कुम्हार घडा बनाता है। चक्र में एक स्थान में छोटा से खुदरा स्थान होता है जहाँ पर कुम्हार

लकडी के सहारे चक्र को घुमाता है और चक्र के बीच में रखी मिट्टी को अपने कलाकारी हाथों से घडे इत्यादि का रूप देता है।

कुलाल चक्र में जहाँ पर लकडी को फसाने के लिए स्थान है उसे आप तारा या राशि या राशि चक्र का कोई भाग समझ सकते हैं। कुम्हार अत्यन्त वेग से जब चक्र को चलाता है तो उस चक्र में स्थित वह स्थान भी घूम जाता है। किन्तु चक्र के ऊपर उस प्रत्येक स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अब मान लीजिये जब कुम्हार चक्र चलाने वाला था उसी समय एक चींटी उस चक्र पर थी। चक्र जब जोर से चला तो चींटी ने कसकर चक्र को पकड लिया। अब जिस ओर चक्र चल रहा है उस दिशा में चक्र के साथ लकडी फसाने वाला स्थान जैसे घूम रहा है उसी तरह चींटी भी घूम रही है किन्तु साथ में वह उसकी विपरीत दिशा में धीरे धीरे खिसकने का प्रयास भी कर रही है। चक्र जब रुका तो चीटी चक्र की घूमने की विपरीत दिशा में कुछ दूर खिसक चुकी थी। अर्थात् चींटी चक्र के साथ साथ चक्र जितने चक्कर मारे उतने तो मारे ही और उसने विपरीत दिशा में चलकर अपना स्थान भी बदल दिया। यहाँ पर चक्र के साथ चींटी की घूमने में कोई विशेषता नहीं है। (क्यों कि चक्र के घूमने के कारण चक्र के ऊपर का प्रत्येक स्थान भी घूम ही रहा था।) किन्तु किसी भी स्थान की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जैसा कि चींटी के विषय में हुआ।

इसी प्रकार से दो पहियाँ वाहन या साईकल के पहिये का भी उदाहरण ले सकते हैं। जब साईकल का पहिया चलता है तो उसमें लगी सारी तिल्लियां पहिये के साथ घूमती हैं। किन्तु किसी भी तिल्ली के स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

ये दोनों उदाहरण ऊपर प्रदत्त सूर्यसिद्धान्त के वचनों को स्पष्ट करने में पर्याप्त है। प्रवह नामक वायु के कारण अत्यन्त वेग या गति से घूमने वाले ब्रह्माण्ड के साथ साथ राशि चक्र और उस में स्थिति तारों राशियाँ आदि सभी घूम लेते है। किन्तु इस प्रकार के घूमने व भ्रमण में उनके स्थानों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात् वे जहाँ है वहीं पर रहते है। किन्तु उनके साथ साथ चलने वाले ग्रह उस दिशा की विरुद्ध दिशा में भी खिसक कर राशिचक्र में अपने
अपने स्थान में परिवर्तन कर देते है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है।

अत्यन्त वेग से 60 घटी में उत्पन्न गति पर कोई ध्यान नहीं दे सकता है ब्रह्माण्ड के प्रत्येक स्थान का उतना बराबर का भ्रमण होने के कारण। किन्तु उसमें पूर्व की ओर ग्रह अपने स्थान में जो परिवर्तन कर चुका हैं वह स्पष्ट रूप से नजर आ जाता है। यही ग्रहों की गति है। इसी गति के कारण तथा इस गति के आधार पर राशियों को या नक्षत्रों को क्रमशः ग्रहण करने के कारण उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह संज्ञा दी गई है। अत एव भूमि के अभिप्राय से भूमि के चारों ओर भ्रमण करने वाले

सूर्य तथा चन्द्र भी उसी परिभाषा के तहत भारतीय ज्योतिष में ग्रह के रूप में स्वीकारे गए हैं। इनका आज के समय में ग्रहों के नाम से व्यवहृत ग्रहों से कोई लेना देना नहीं हैं। आज का जो ग्रहों का व्यवहार है उनके उद्देश्य में तथा भारतीय ज्योतिष में जिनको ग्रह संज्ञा दी गई है उनके उद्देश्यों में परिपूर्ण रूप से अन्तर है। अतः स्वतन्त्र अस्तित्व होने के कारण दोनों विधाओं की कोई तुलना भी नहीं हो सकती है।

3.3.4 ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गतिहेतवः।।

यह श्लोक भी सूर्यसिद्धान्त से ही है। भगण राशिचक्र को कहा जाता है। उस राशि चक्र में शीघ्रोच्च मन्दोच्च और पात नामक तीन स्थान हैं। वे सभी ग्रहों के लिए अलग अलग है। उन स्थानों का कोई स्वरूप नहीं है इसलिए उनको अदृश्य रूप कहते हैं। ये तीनों ग्रहों के गति के हेतु अर्थात् कारक है।

श्लोक में प्रत्येक पद का अर्थ जानने का प्रयास करते है। अदृश्यरूपाः - जिनका दृश्य रूप नहीं हैं, कालस्य मूर्तयः - काल की मूर्तियाँ है, भगणाश्रिताः - भगण को आश्रित किए हुए हैं, शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः - शीघ्रोच्च मन्दोच्च पात आख्य (संज्ञक) है, ग्रहाणां - ग्रहों के , गतिहेतवः - गतिकारक हैं।

क्रम रहित इन पदों के अर्थ भी श्लोक के तात्पर्य को स्पष्ट करने में समर्थ है।

- **उच्च** -

जिस बिन्दु को प्राप्त कर ग्रह भूकेन्द्र से अत्यन्त दूर होता है उस बिन्दु का नाम उच्च है। अर्थात् ग्रह भ्रमण मार्ग में या ग्रह कक्षा में भूकेन्द्र से दूरतम स्थान को उच्च कहते हैं। यह उच्च भी दो प्रकार का होता है।

1. मन्दोच्च
2. शीघ्रोच्च

- **मन्दोच्च -**

यह बात तो सर्व विदित है कि ग्रह पृथ्वी की मात्र परिक्रमा नहीं करते हैं। पृथ्वी के सापेक्ष ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते नजर आते हैं। भले वे कभी दूर और कभी नजदीक आते हैं किन्तु इसका आभास पृथ्वी से नहीं हो पाता है। ग्रह हमेशा एक ही दूरी में राशि चक्र में भूवासियों को नजर

आते हैं। किन्तु जब उन ग्रहों को हम औसतन गति के आधार पर स्पष्ट करना चाहते हैं तो हमें इन जानकारियों की आवश्यकता पड जाती है।

प्रथम इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की थी कि काल साधन के लिए ग्रहों को स्पष्ट करना अपेक्षित है। उसी सन्दर्भ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत ग्रह और दृगुपलब्ध ग्रह की एकता को ही स्पष्ट कहते हैं। साथ में यह भी जानकारी प्राप्त की थी कि गणितागत और स्पष्ट को एक करने के लिए किया जाने वाला प्रयास ही ग्रह स्पष्टीकरण है और सिद्धान्त ज्योतिष का यही परम उद्देश्य है।

उसी स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में ग्रह की गति में अन्तर उत्पन्न करने वाला जो प्रथम कारक पाया गया था वह ग्रह में मन्द मन्द या थोडा थोडा अन्तर उत्पन्न करता है। उस मन्द अन्तर को उत्पन्न करने वाला प्रधान कारक व स्थान होने के कारण इस उच्च को मन्दोच्च कहते हैं।

- **शीघ्रोच्च -**

मन्दोच्च से ग्रह में उत्पन्न होने वाले प्रभाव को पहचानने के बाद पता चला कि अभी भी गणितागत और दृश्य ग्रह एक स्थान में नहीं प्राप्त हो रहे हैं। तब पता चला कि मन्दोच्च से भी एक और दूरतर बिन्दु ग्रह के मार्ग में उपस्थित है। यह बिन्दु ग्रह की गति में मन्दोच्च की अपेक्षा अधिक अन्तर को उत्पन्न करता है। अन्तर भी त्वरित गति से उत्पन्न होता है। इसी लक्षण के कारण इसे शीघ्रोच्च संज्ञा दी गई है।

ध्यातव्य है कि सूर्य और चन्द्रमा का शीघ्रोच्च नहीं है। उससे पहले भी ध्यान में यह बात रखनी चाहिए कि उपरोक्त परिभाषा के अन्तर्गत भारतीय ज्योतिष में सूर्य और चन्द्रमा ग्रह कहलाते है। सूर्य और चन्द्रमा की सापेक्ष गति पृथ्वी के चारों ओर होने के कारण तथा उन पर अतिरिक्त प्रभाव अन्य किसी स्थान से न पडने के कारण इनके लिए एक ही उच्च प्रकल्पित है तथा वह मन्दोच्च ही है।

- पात

ग्रहों के विमण्डल और क्रान्ति वृत्त का जहाँ मिलन होता है उसे पात कहते हैं। इस मिलन बिन्दु को प्राप्त करने के बाद ग्रह क्रान्ति वृत्त से या तो दक्षिण की ओर चले जाते हैं या उत्तर की ओर। उत्तर तथा दक्षिण की ओर चलने से ग्रहों में जो दक्षिणोत्तरान्तर उत्पन्न होता है उसे विक्षेप कहते हैं। विक्षेप का मूल कारक पात ही है।

- गति के कारक

उच्च और पात को ग्रहों की गति का कारक माना गया है। उनमें उच्च ग्रह की पूर्वाभिप्रायिक गति को प्रभावित करते हैं तथा पात दक्षिणोत्तर गति को। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकर्षित करता है। अर्थात् उच्च की ओर ग्रह तेजी से चलता है। उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह की गति धीमी हो जाती है। इसका कारण उच्च की आकर्षणशक्ति है। उच्च की ओर जाते हुए ग्रह में उच्च के प्रति आकर्षण के कारण गति बढती है और उच्च को प्राप्त करने के बाद ग्रह जब आगे बढने का प्रयास करता है तो उच्च के आकर्षण के कारण तेजी से नहीं चल पाता है।

पात को प्राप्त करने के बाद ग्रह या तो उत्तर या दक्षिण की ओर चलना प्रारम्भ करता है। यह दक्षिणोत्तर गति ग्रह को आसमान में पहचानने के लिए तथा उदयास्त आदि विभिन्न प्रक्रियाओं में आवश्यक होती है। ग्रहण के सन्दर्भ में भी ग्रहों की यह दक्षिणोत्तर गति महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

3.3.5 बोध प्रश्न

1. ग्रह किसे कहते है?
2. ग्रहों की गति कहाँ देखी जाती है?
3. ग्रहों का भ्रमण कैसे होता है?
4. ग्रह गति को कौन प्रभावित करते है?
5. उच्च किसे कहते है?

3.4 ग्रह गति के प्रकार

ग्रह पृथ्वी के चारों और वृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते हैं। उस वृत्ताकार भ्रमण मार्ग का नाम ही राशिचक्र है। इस इकाई में अब तक जो भी जानकारियाँ प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार ग्रह कहाँ और किस प्रकार से भ्रमण करते हैं इस विषय को पूर्णतः समझने में सफल हुए है। ग्रह चाहे कहीं भी चलते हो या कैसे भी चलते हो किन्तु भूमि के अभिप्राय से देखने पर वे सभी राशि चक्र में पूर्व दिशा की ओर धीरे धीरे बढते हुए या खिसकते हुए नजर आते हैं और वहीं राशिचक्र स्थित ग्रहों की गति हमें काल के विभिन्न अवयवों की गणना करने में मदद करते हैं।

ग्रहों के गति के कारक उच्च और पात होते हैं। भौमादि पांच ग्रहों के दो दो उच्च हैं। उच्च ग्रह को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस आकर्षण के कारण ग्रहों में सदा एक जैसे गति नहीं होती

है। अर्थात् ग्रह की गति हमेशा बदलती रहती है व विलक्षण रहती है।

3.4.1 आठ प्रकार की ग्रह गति

ग्रहों के ऊपर उत्पन्न विभिन्न प्रकार के आकर्षण तथा विकर्षणों के कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।

ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ होती हैं। वे हैं वक्रा, अतिवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, समा, शीघ्रा, शीघ्रतरा। इस श्लोक में कोई क्रम नहीं बताया है। सुविधा के अनुसार
श्लोक में प्रदत्त क्रम में ही इनका संक्षिप्त विवरण जानने का प्रयास करते है।

1. वक्रा

ग्रह की स्वाभाविक गति पूर्व दिशा की ओर होती है। ग्रह गति से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण में इस जानकारी को प्राप्त किये है। उस स्वाभाविक गति के विपरीत अर्थात् पश्चिमाभिमुख गति को वक्र गति कहते हैं। इस सन्दर्भ में अनेक प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। सभी प्रश्नों का उत्तर ग्रह गति प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करने से हो जाता है।

आकाश में कोई पिण्ड अचानक विपरीत दिशा में चलें यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक दोनों रीतियों से भी इसको स्वीकारा नहीं जा सकता है। पुनः आचार्य लोग किस प्रकार से वक्रगति की बात बतायें हैं? जो गति होती ही नहीं है उसके आधार पर कालगणना करते है? यह प्रश्न दो प्रकार के निष्कर्षों पर ले जा सकता हैं। पहला निष्कर्ष है कि आचार्य लोग अवैज्ञानिक थे तथा ज्योतिष अवैज्ञानिक है। दूसरा सम्भावित निष्कर्ष है कि आचार्य गण अपने चिन्तन से भी ज्यादा वैज्ञानिक हैं।

ग्रह की गति भूसापेक्ष होती है। अर्थात् ग्रह में उत्पन्न गति अथवा भूमि पर स्थित होकर हम ग्रह की जिस गति को प्राप्त करते हैं वह गति वास्तविक ग्रह में नहीं बल्कि भूम्यभिप्रायक ग्रह की गति होती है। अर्थात् ग्रह की जो राश्यादि स्थिति भूमि से प्राप्त होती है वह किसी अन्य स्थान से प्राप्त नहीं हो सकती है।

ग्रह अपने मार्ग में निरन्तर भ्रमण करते हैं। यह गति रैखिक गति कहलाती है। उस गति के कारण आगे बढने वाला ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करता है वह कोणीय गति है। इसी कोणीय गति का साधन भारतीय ज्योतिष में किया जाता है। अतः ग्रह में दृश्य वह गति पूर्ण रूप से भूमि पर उद्देश्य पूर्ति के लिए है।

भूमि के अभिप्राय से ग्रह अपने मार्ग में विपरीत चलता हुआ जो नजर आता है उसे वक्रगति कहते है।

2. अतिवक्रा

वक्र गति का अतिशय अतिवक्र कहलाता है। अर्थात् ग्रह की वक्र गति निश्चित व सामान्य से अधिक गति में हो तो उसे अतिवक्र कहते हैं।

3. विकला

विकला के स्थान में कुटिला आदि अन्य शब्दों को लेने की इच्छा कुछ आचार्य गण प्रकट करते हैं। विकला का सामान्य अर्थ कला विहीना गतिः (विगताः कलाः यस्याः) इस प्रकार से लिया जा सकता है। ग्रह जब मार्गी गति से वक्री गति में तथा वक्री गति से मार्गी गति में परिवर्तित होता है उस समय कुछ दिन के लिए उसकी गति स्तब्ध हो जाती है। उसी स्थिति को विकला गति कहते है।

अपने मार्ग में स्वाभाविक दिशा में भ्रमण करना मार्गी गति कहलाती है। स्तब्ध होने से तात्पर्य है ग्रह गति में कलादि अवयव स्थानों में भी कोई परिवर्तन नही होना अथवा अत्यन्त कम होना।

4. मन्दा

ग्रह की राशिचक्र में सीमित समय में सीमित परिक्रमाएं होती हैं।इसकी जानकारी हमने सूर्यादि ग्रहों के भगण नामक इकाई में प्राप्त की थी। उन परिक्रमाओं का नाम ही भगण है। ये परिक्रमाएं ग्रह की औसतन गति से मानी जाती है। अर्थात् ग्रह के भगण को भगणकालिक दिनों से भाग देने पर जो लब्धि आयेगी वह ग्रह की औसतन गति होगी। इसी गति को ग्रह की मध्यम गति कहते है। इस मध्यम गति से ग्रह की गति यदि कम हो जाती है तो उसको मन्दगति कहते है।

गति के कारक को उच्च कहा गया है। मन्द गति का कारक मन्दोच्च है। जब मन्दोच्च ग्रह को अपनी और आकृष्ट करता है उस समय ग्रह पृथ्वी से दूरतम स्थान में जाने के कारण भूकेन्द्र में उत्पन्न होने वाली कोणीय गति सामान्य से कम हो जाती है।

5. मन्दतरा

मन्दोच्च के आकर्षण के कारण ग्रह की गति जब अतिशय रूप में मन्द हो जाती है तो उसे मन्दतरा गति कहते हैं।

6. समा

मध्यम गति ही समा गति कहलाती है। जब ग्रह के ऊपर उच्चादि गतिकारकों का प्रभाव नहीं रहता है तब ग्रह अपनी सामान्य गति से भ्रमण करता है।

7. शीघ्रा

समा गति से अधिक गति को शीघ्र गति कहते हैं जो शीघ्रोच्च के अपकर्षण के कारण उत्पन्न होती है। ध्यातव्य विषय यह है कि जब भी उच्च के आकर्षण के प्रभाव में ग्रह आ जाता है तो स्वभावतः उसकी गति मन्द हो जाती है। राशिचक्रस्थ कोणीय मान को भोग करने के लिए पृथ्वी से दूर जाने वाले ग्रहों के लिए अधिक समय लगना ही इसका कारण है।

ग्रह के उच्च का अपकर्षण तब होता है जब ग्रह उच्च से दूर हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि ग्रह नीचासन्न होने पर उस पर उच्च का प्रभाव न होने के कारण उसकी गति अधिक हो जाती है। वास्तव में उच्च से दूर होने के कारण या नीच के आसन्न होने के कारण उस पर उत्पन्न होने वाला आकर्षण या विकर्षण ग्रह गति में परिवर्तन का कारक नहीं होता है। यहाँ पर आचार्यों ने सरल रीति से विषय को समझाने की दृष्टि से भूम्यभिप्रायक कोणीय गति का वर्णन इस प्रकार से किया है।

नीचासन्न ग्रह पृथ्वी के निकटतम स्थान में प्राप्त होने के कारण राशि चक्र के कोणीय विभागों के भोग करने में उसको लगने वाले समय में पर्याप्त मात्रा में कमी आना ही ग्रह की गति बढने का कारण है।

8. शीघ्रतरा

शीघ्र गति का अतिशय वृद्धि ही शीघ्रतरा गति कहलाती है। अर्थात् सामान्य गति से अधिक गति शीघ्र गति तथा शीघ्र से भी शीघ्र शूघ्रतरा गति होती है।

3.4.2 पाँच प्रकार की ग्रह की गति

अब तक ग्रह की आठ प्रकार की गति का वर्णन किया गया। वास्तव में प्रदत्त गतियों में तीन गति अन्य तीन गतियों की अतिशय मात्रा को ही दर्शाते है। अतः गति और अतिशय गति दोनों को एक ही मानने पर ग्रह की कुल पांच प्रकार की गति उत्पन्न होती है।

तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा

ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सातिवक्रगा।।

अतिशीघ्रा और शीघ्रा को शीघ्र गति की श्रेणी में , मन्दा और मन्दतरा को मन्द गति की श्रेणी में तथा वक्रा और अतिवक्रा को वक्र गति की श्रेणी में लेने पर ग्रहों की वास्तविक पांच प्रकार की गति सिद्ध होती है।

* शीघ्रा * मन्दा * समा * ऋज्वी * वक्रा

समा गति से तात्पर्य है बराबर की गति। अर्थात् ग्रह की दैनन्दिन गति में अन्तर न होना। यह स्थिति दो प्राकार की उत्पन्न हो सकती है। ग्रह की गति न ज्यादा न कम होने पर समा गति कह

सकते हैं। यह तो मध्यम गति ही है। दूसरी प्रकार की समा गति है विकला गति। अर्थात् एक से अधिक दिन ग्रह की एक ही गति होना। अत एव पांच प्रकार की ग्रह गति में आचार्य रंगनाथ समा गति को एक मानते है तो सुधाकर द्विवेदी सहित कुछ अन्य आचार्य समा गति के स्थान में विकला गति का ग्रहण करते हैं। किन्तु दोनों में किसी भी मत का ग्रहण करने से स्थिति में कोई अन्तर उत्पन्न नही होता है। अतः ग्रह की पांच प्रकार की गति के अन्तर्गत समा तथा विकला में से किसी एक का ग्रहण स्वीकारा जा सकता है।

3.4.3 बोध प्रश्न

1. ग्रह की कौनसी गति होती है?
2. ग्रह की गति कितनी प्रकार की होती है?
3. ग्रहों की स्वाभाविक गति किस दिशा में होती है?
4. ऋज्वी गति किसे कहते हैं?
5. ग्रह भ्रमण मार्ग का केन्द्र भू केन्द्र है। हाँ या नहीं

3.5 ग्रह गति का साधन

ग्रह गति का साधन ग्रह स्पष्टीकरण के समान ही होता है। औसतन गति को वास्तविक व तत्कालिक गति बनाने की प्रक्रिया उसी प्रसंग में वर्णित है जो ग्रह साधन में भी बताया गया है। ग्रह स्पष्टीकरण में सर्वप्रथम मध्यम ग्रह का साधन किया जाता है। मध्यम ग्रह का साधन ग्रह भगणों के आधार पर किया जाता है। स्पष्टता के लिए सूर्य का एक उदाहरण लेते हैं। सूर्य एक महायुग में 4,32,0000 भगण पूरा करता है। एक महायुग में सावन दिनों की संख्या 157,79,17,828 है। सूर्य के भगणों को सावन दिनों से भाग देने पर एक दिन की सूर्य की गति $59^{I}07^{II}$ विकला प्राप्त होता है। यह सूर्य की औसतन (मध्यम) गति है। महायुग के प्रारम्भ से अभीष्ट दिन तक जितने सावन दिन बीत चुके हैं उनको गत दिन कहते हैं। इन्ही गत दिनों का नाम अहर्गण है। यहाँ पर मध्यम ग्रह का साधन दो प्रकार से किया जाता है।

यथा स्वभगणाभ्यस्तः दिनराशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत्।।

ग्रह के भगण मान को दिनराशि (अभीष्ट दिनपर्यन्त दिन संख्या जिसको अहर्गण कहते है) से गुणाकर महायुगीय सावन दिवसों से भाग देने पर भगणादि मध्यम ग्रह प्राप्त होता है। अर्थात् लब्धि में प्रथमांक भगण , उसके उपरान्त राशि तथा तत्पश्चात् अंश एवं कला प्राप्त होंगे।

00^भगण^/00^राशि^/00^अंश^/00^कला^

गतदिनों को मध्यम गति से गुणा करने पर भी यही फल उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् मध्यम ग्रह में मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर का संस्कार करने पर स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है। स्पष्ट ग्रह साधन से सम्बन्धित इकाई में ग्रह साधन के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे। उसी प्रकार से मध्यम गति और स्पष्ट गति का साधन कर संस्कार करने पर ग्रह की स्पष्ट गति उपलब्ध होती है।

3.5.1 बोध प्रश्न

1. औसतन गति का अन्य नाम क्या है?
2. औसतन गति का साधन किस विधि से किया जाता है?
3. औसतन गति किसे कहते है?
4. औसतन गति का क्या प्रयोजन है?
5. औसतन गति वास्तविक गति से भिन्न क्यों होती है?

3.6 सारांश

ग्रह अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। यह एक सामान्य विषय है तथा खगोल का एक साधारण दृश्य घटक है। भूमि के अभिप्राय से ग्रह भूमि की चारों ओर वृत्ताकार कक्षाओं में कोणीय गति से भ्रमण करते हैं तथा उस कोणीय गति के कारण अभीष्समय में ग्रह की राशिचक्र में जो स्थिति होगी उसे ग्रह का स्थान या स्पष्ट ग्रह कहते है। इन्हीं राशिचक्र में स्थित स्पष्टग्रहों की सहायता से काल का साधन करते है यह एक विशेष बात है। ग्रहों के आधार पर काल साधन करने की विशेष बात पर आधारित एक वैदिकवाङ्मय सम्बद्ध विषय है जो ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष को भाग्य जानने की दृष्टि से आम जनता देखती है। इस ज्योतिष का वास्तविक मुख्य उद्देश्य काल साधन है तथा इस काल साधन कार्य हेतु प्रकल्पित ज्योतिष की शाखा को सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। विगत कुछ इकाईयों में सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित सामान्य जानकारियों के साथ साथ ग्रहों के भगणों से सम्बन्धित जानकारियाँ भी प्राप्त की हैं।

वर्तमान इकाई में ग्रहगति से सम्बन्धित विवेचन किया गया है। ग्रह की वह गति जो भूमि देखी जाती है इसे ही भूकेन्द्राभिप्रायिक व भूम्यभिप्रायिक ग्रहगति कहते हैं। इसको सापेक्ष भी कह सकते हैं। ग्रहों की भूसापेक्ष स्थिति तथा गति के बारे में इस इकाई में हमने जानकारी प्राप्त की हैं।

पृथ्वी के चारों ओर वृत्ताकार कक्षा में ग्रहों के भ्रमण का जो तथ्य दर्शाया गया है वह भूमि के अभिप्राय से निश्चित रूप से तथ्य है। किन्तु यह तथ्य भूसापेक्ष है। भूसापेक्ष होने के कारण तथा वास्तव में ग्रहों की कक्षा के केन्द्र में भूमि न होने के कारण ही उच्च की कल्पना की गई थी। उच्च

कोई कल्पना नहीं, भूमि से ग्रहकक्षा का दूरतम बिन्दु है। केन्द्र में स्थित पृथ्वी से चारों ओर स्थित कक्षा में यदि दूरतम तथा निकटतम बिन्दुओं की बात आती है तो यह विदित हो जाता है कि ग्रह भूमि के चारों ओर भूमि को केन्द्र बनाकर नहीं भ्रमण कर रहे हैं।

सारांशतः आसमान में चलते चलते ग्रह भूकेन्द्र में जो कोण उत्पन्न करते हैं अथवा भूम्यभिप्राय से राशिचक्र में ग्रहों की जो कोणीय गति उत्पन्न होती है उसे ग्रह गति कहते हैं। यह गति ग्रहकक्षा के पृथ्वी के चारों ओर समान दूरी में न रहने के कारण विलक्षण होती है। इस विलक्षणता के अन्तर्गत ग्रह की आठ प्रकार की गति उत्पन्न होती है। उन आठ प्रकार की गतियों के सादृश्यता के आधार पर विभाजन व वर्गीकरण करने पर पांच प्रकार की ग्रह की गति सिद्ध होती है। इस गति का साधन स्पष्ट ग्रह के साधन के समान ही किया जाता है।

3.7 बोध प्रश्नो का उत्तर

3.3.5

1. क. ग्रह वे आकाशीय पिण्ड है जो सूर्य के प्रकाश के कारण प्रकाशित दिखते है।
   ख. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो राशि व नक्षत्रों का ग्रहण करते है।
   ग. उन आकाशीय पिण्डों को ग्रह कहते है जो भचक्र के पश्चिमाभिमुख परम वेग युत गति के साथ पूर्वाभिमुख गति का धारण करते हैं।
2. राशि चक्र में
3. भचक्र के साथ पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह पूर्वदिशा की ओर लम्बित होते है। इसी पूर्वाभिमुख लम्बन को ग्रह की गति कहते है।
4. शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात
5. ग्रहभ्रमण मार्ग में जो बिन्दु भू केन्द्र से दूरतम बिन्दु व स्थान

3.4.3

1. पूर्वाभिमुखी
2. आठ
3. पूर्व दिशा
4. ग्रह की स्वाभाविक व पूर्वाभिमुख गति
5. नहीं

3.5.1

1. मध्यम गति

2. त्रैराशिक व आनुपातिक

3. एक निश्चित कालखण्ड के लिये प्रदत्त भगणों के आधार पर एक दिन के लिये साधित ग्रह गति को औसतन गति कहते है।

4. वास्तविक व स्पष्ट गति का साधन करने के लिये मुख्य उपकरण के रूप में औसतन गति का प्रयोग किया जाता है।

5. उच्च की आकर्षण तथा विकर्षणों के कारम ग्रह की गति विलक्षण होती है। अतः औसतन और वास्तविक गतियों में अन्तर उत्पन्न होता है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त., कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. आर्यभटीयम्, सूर्यदेव यज्व, INSA, दिल्ली
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. कल्पित उदाहरण से गति का साधन करें।
2. मध्यम गति और स्पष्ट गति का अन्तर प्राप्त करने की विधि स्पष्ट करें।
3. उच्च ग्रह गति में विलक्षणता को किस प्रकार से उत्पन्न करता है¿

3.10 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **ग्रह**

जो ग्रहण करता है उसे ग्रह कहते हैं। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति है ** गृह्णातीति ग्रहः**। **ग्रह उपादाने** इस धातु से ग्रह शब्द उत्पन्न हुआ है।

- **वेध**

सिद्धान्त ज्योतिष में अधिक रूप में प्रयुक्त होने वाला शब्द है वेध। सामान्यतः वेथ शब्द का अर्थ छेदन से लिया जाता है। जैसे कर्णवेध। कान में बाली पहनाने के लिये छेद करने की प्रक्रिया को कर्णवेध कहते है।

किन्तु ज्योतिष में आकाशीय ग्रह तथा उससे सम्बन्धित अन्य स्थान व विशेषताओं का प्रत्यक्ष दर्शन करने की विधि को वेध कहते है।

संस्कृत में '**विध छेदने**' नामक धातु से यह शब्द उत्पन्न हुआ है। इस धातु का प्रयोग सम्बन्धार्थ में होता है। ग्रह वेध नामक कार्य में आंखों का सम्बन्ध व सम्पर्क आकाशीय पिण्ड या उससे सम्बन्धित पदार्थों से होता है। अतः यहाँ पर वेध प्रक्रिया का अर्थ आंखों से सम्पर्क करने की अर्थ में लिया जा सकता है।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहभ्रमण से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रहगति के प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
3. ग्रहगति का साधन कीजिये।
4. मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च को स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 4 भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भूव्यास परिचय

4.4 स्पष्टभूरिधि विवेचन

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY -102 के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक 'भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि विवेचन' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहों के भगण तथा उनकी गतियों के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि से सम्बन्धित इकाईयों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यत: भूव्यास का अर्थ है – पृथ्वी का व्यास तथा पृथ्वी की परिधि को 'भूपरिधि' के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्त ज्योतिष में इनका ज्ञान आवश्यक है।

अत: आइए अब पृथ्वी के व्यास तथा परिधि से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तत्वों का विवेचन इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूव्यास का अर्थ समझ लेंगे।
- भूव्यास का सैद्धान्तिक पक्ष को जान लेंगे।
- भूपरिधि का विवेचन करने में सक्षम हो सकेगें।
- भूपरिधि का साधन कर सकेगें।
- सिद्धान्त ज्योतिष में भूव्यास एवं स्पष्ट भूपरिधि को समझा सकेगें।
- भूव्यास से भूपरिधि का ज्ञान कैसे किया जाता है, जान जायेगें।

4.3 भूव्यास विवेचन

'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि –

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्॥

अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है।

यदि पृथ्वी का व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि = $\sqrt{व^2 \times १०}$

व × $\sqrt{१०}$ = व × ३.१६२३, जिससे यह सिद्ध होता है कि परिधि व्यास का ३.१६३१ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३.१४१६ दशमलव के चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३.१६२३ से बहुत भिन्न है, परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकार को व्यास और परिधि का ठीक-ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में अर्द्धव्यास और परिधि का अनुपात ३४३८:२१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यास का ३.१४१३६ गुना होता है। इसीलिए इस श्लोक में परिधि को व्यास का $\sqrt{१०}$ सुविधा के लिए माना गया है, जैसे सम्प्रति जब स्थूल रीति से काम लेना होता है तब कोई इसको २२/७ और कोई ३.१४ मानते है और जहाँ बहुत सूक्ष्म गणना करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ दशमलव के पाँच-पाँच सात सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में परिधि और व्यास सम्बन्ध का मान निम्नलिखित है –

	व्यास: परिधि	अर्थात् व्यास:परिधि
सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, द्वितीय आर्यभट्ट	१: $\sqrt{१०}$	१:३.१६२३
प्रथम आर्यभट्ट	२००००:६२८३२	१:३.१४१६
द्वितीय आर्यभट्ट, भास्कराचार्य	२२:७	१:३.१४२८
भास्कराचार्य	१२५०:३९२७	१:३.१४१३६
३४३८ कला को त्रिज्या मानने से, जो ब्राह्मस्फुट के अतिरिक्त सभी सिद्धान्तों में पाया जाता है।	६८७६:२१६००	१:३.१४१३६
आजकल के सूक्ष्म गणित से		१:३.१४१५९२७

पृथ्वी का सम्पूर्ण मान भूपरिधि कहलाता है और वह अक्षांश भेद से अलग-अलग होता है। परन्तु सामान्यतया सभी विद्वान लंकादेश के भूमध्य में स्थित होने के कारण उसी देश की

कुवृत्तीयपरिणाह को मध्यम भूपरिधि के रूप में स्वीकार करते हैं। यद्यपि गोल में भूपृष्ठ स्थान कहीं भी हो सकता है, - यथा

भूमौ तिष्ठति यो यत्र पृष्ठस्थानं तदुच्यते।
स्वदेशोऽपि स एवाऽस्य कथ्यते गणितागमे।।

किन्तु व्यवहार में किसी एक प्रदेश को कल्पित मानकर ही भूपृष्ठ का स्थान निर्धारण करने, और गणितादि प्रतिपादित करने की बात दैवज्ञों ने की है। वस्तुत: भूमध्य में लंका तथा उससे $90-90^0$ अंश पर यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरू, वडवानल आदि भूपृष्ठस्थ प्रमुख छ: स्थल हैं। इन सभी स्थलों पर लंका को ही भूमध्य में कल्पित मानकर स्थान निर्धारण कर्त्तव्य किया गया है। यथा –

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्या: प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्तत: सिद्धपुरं सुमेरू: सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च।।
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरका: सदैत्या:।।

आप इस स्थिति को और सरल तरह से समझिये – पृथ्वी के मध्य में लंका, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमक पतन नामक स्थान है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरू उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सभी स्थान भूमध्यस्थ लंका के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छ: गोल वाले कहे जाते है। मेरू पर देवता सिद्ध पुरूषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर नरक तथा दैत्य गण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरो को अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं) । पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे खड़े होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अध: भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट्ट ने दो प्रकार से व्यास और परिधि का सम्बन्ध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपोगी। आगे व्यास और परिधि के सम्बन्ध को π (पाई) चिह्न से सूचित किया जाता है। आजकल प्रथा है कि यदि व्यास १ है तो परिधि π है, जब

कि π का मान व्यवहार के अनुसार २२/७, ३.१४, ३.१४२,३.१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

उपर्युक्त श्लोक में 'योजन' का बड़ा महत्व है। आजकल लोग योजन को सामान्यतया चार कोस के बराबर मानते हैं, परन्तु कोस का मान स्वयं स्थिर नहीं है। किसी-किसी प्रान्त में कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्त में बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजन का भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में भूपरिधि या भूव्यास के मान भिन्न- भिन्न अंकों में दिये हुए हैं। नीचे दिए गए अवतरणों से प्रकट होता है कि सिद्धान्तों में भूव्यास के मान क्या-क्या दिये हुए है –

पंचसिद्धान्तिका में भूव्यास मान –	१०१८ पूर्णांक ६/१० योजन
आर्यभट्ट और लल्ल के मत भूव्यास मान –	१०५० योजन
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त -	१६०० योजन
सिद्धान्तशिरोमणि –	१५८१ पूर्णांक १/२४ योजन
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त) –	२१०९ योजन
आधुनिक यूरोपीय मत से विषुवद्वृत्तीय –	७९२७ मील
ध्रुवीय -	७९०० मील

इन अंकों से स्पष्ट है कि वराहमिहिर, आर्यभट्ट तथा लल्ल के योजन प्राय: समान हैं और सूर्यसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के भी योजन प्राय: समान हैं; परन्तु पहले के तीन आचार्यों का योजन इन दोनों के योजन का प्राय: डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकार के योजनों की तुलना वर्तमान मील से की जायेगी। हमारे सिद्धान्तों में पृथ्वी को बिल्कुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलना के लिए धुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्यों ने इसी की नाप से भूपरिधि का परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभट्टीय मत से	**सिद्धान्तशिरोमणि के मत से**
१०५० योजन = ७९०० मील	१५८१ योजन = ७९०० मील
इसलिए १ योजन = ७९००/ १०५० मील	इसलिए १ योजन = ७९००/१५८१ मील
= ७.५२ मील	= ५ मील
यदि १ योजन में ४ कोस हो तो	

१ कोस = ७.५२/ ४ मील = १.८८ मील इसलिए १ कोस = १/ ४ योजन=१ पूर्णांक१/४ मील

आजकल १ कोस २ मील के समान समझा जाता है इसलिए आजकल का योजन आर्यभट्ट के योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकल के (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी-किसी प्रान्त में अब तक प्रचलित है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. कल्पित उदाहरण से मध्यम भूपरिधि का साधन करें।
2. सूर्यसिद्धान्तीय स्फुटपरिधि का वर्णन कीजिये।
3. विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार योजनात्मक मान को दर्शाइयें।

यहाँ प्रश्न उठता है कि भूपरिधि नापी कैसे गयी? सूर्यसिद्धान्त में इसके लिए कुछ उल्लिखित नहीं है, किन्तु भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में कहते हैं कि उत्तर दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों की दूरी योजनों में नाप कर उन दो स्थानों के अक्षांशों का भी अन्तर निकालना चाहिए। पुन: त्रैराशिक द्वारा यह जानना चाहिये कि जब इतने अक्षांशों में अन्तर होने से दो स्थानों की दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी? इसकी उपपत्ति नीचे दिए गये क्षेत्र से समझ सकते है -

नीचे दिए गए क्षेत्र में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अन्तर स सा नापना चाहिये। फिर दोनों के अक्षांशान्तर स भ सा कोण को जानना चाहिये।

उ = उत्तरी ध्रुव या सुमेरू। स, सा एक ही उत्तर दक्षिण रेखा के दो स्थान।

स का अक्षांश = < व भ स।

सा का अक्षांश =< व भ सा।

दोनों के अक्षांशों का अन्तर = < स भ सा।
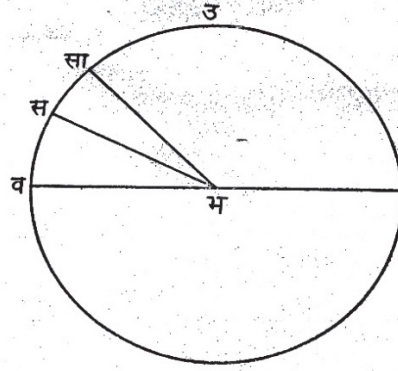
चित्र ७
भ=पृथ्वी का केन्द्र ।
वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या ।

फिर यह अनुपात करना चाहिए –

< स भ सा: ३६०° : : स सा : भूपरिधि

इसलिए भूपरिधि = $\frac{३६०° \times स\ सा}{< स\ भ\ सा}$

भूपरिधि इसी रीति से आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्मयंत्रों के कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है।

4.4 स्पष्ट भूपरिधि

स्पष्ट भूपरिधि के लिए सूर्यसिद्धान्तकार कहते है –

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तस्फुटो भूपरिधि: स्वक:।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।।
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्य: परिशोधयेत्।
रेखाप्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत् स्वदेशजस्।।

अर्थात् भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते

हैं।

बीजगणित के अनुसार इन श्लोकों को इस प्रकार प्रकट कर सकते है –

स्फुट परिधि = $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ .... (१)

देशान्तर फल } = $\frac{\text{देशान्तर योजन ग्रह की दैनिक गति कला में}}{\text{स्फुट परिधि}}$ ....(२)

अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह

= लंका की अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह ± देशान्तर फल .... (३)

यदि स्थान लंका से पूर्व हो तो ऋणात्मक चिह्न और पश्चिम हो तो धनात्मक चिह्न ग्रहण करना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझने से पूर्व श्लोक में कहे गये लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि को भी जान लेना चाहिये कि ये क्या है?

ज्या – यदि किसी समकोण त्रिभुज के किसी भुज की लम्बाई को उसके कर्ण की लम्बाई से भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुज के सामने के कोण की ज्या कहलाती है। नीचे चित्र संख्या ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोण की ज्या = स भा / स भ और भ स भा कोण की ज्या भ भा / सभ। समकोण त्रिभुज के कर्ण की लम्बाई किसी भुज की लम्बाई से अधिक होती है; इसलिए किसी भुज के सामने के कोण की ज्या एक से कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्न में लिखी जाती है। प्राचीन काल में जब कि दशमलव भिन्न का प्रचार नहीं था कोण की ज्या पूर्णांकों में लिखी जाती थी।

चित्र ८
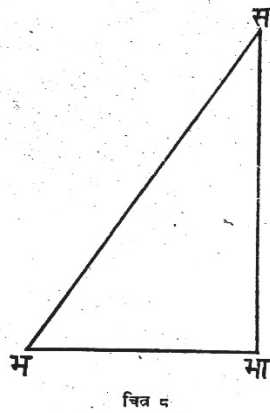
किसी कोण की ज्या जानने के लिए हमारे सिद्धान्तों में ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाईयॉं और परिधि २१६०० इकाईयाँ होती हैं, जिससे एक-एक इकाई एक-एक कला के समान होती है, क्योंकि परिधि एक चक्र के समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६० × ६० = २१६०० कलाएँ होती है। फिर केन्द्र से परिधि तक दो त्रिज्यायें ऐसी खींचते हैं जिनके बीच का कोण उस कोण के समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधि के मिलान बिन्दु से दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्ब की लम्बाई जितनी इकाइयाँ (कलाएं) होती हैं उसी को उस कोण की ज्या कहते हैं। नीचे दिए गए क्षेत्र में अ केन्द्र है; अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्यायें हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से उ इ या ऊ ई लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्या की नाप ३४३८ इकाईयों में मानकर उ इ या ऊ ई को जो नाप इन्हीं इकाईयों में होगी वह उ अ इ कोण ऊ अ ई कोण की ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आजकल की प्रथा से परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझने का प्रयास करना चाहिए।

चित्र ६
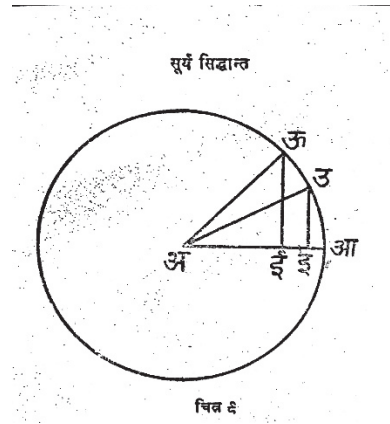
त्रिज्या का मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओं में विभाजित की जाती है तब त्रिज्या का मान ३४३७पूर्णांक३/ ४ कला आजकल की सूक्ष्म गणना से आता है, जिसका निकटतम पूर्णांक ३४३८ है। आजकल के एक रेडियन में जितनी कलाऍं होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओं के समान त्रिज्या का परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि - भूतल का वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से समान अन्तर पर दोनों के बीचों बीच होता हुआ भू पृष्ठ को दो समान भागों में बॉटता है, वह विषुवत् रेखा कहलाता है; विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को उत्तर गोल और दक्षिण वाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव क्षितिज पर दिखायी देते हैं। यहाँ पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है।

इसलिए विषुवत् रेखा को निरक्षवृत्त भी कहते हैं। नीचे दिए गए क्षेत्र १० में व वा वि विषुवत् रेखा है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्त के समानान्तर स सा सि वृत्त भूतल पर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की 'स्फुट परिधि' कहते हैं।
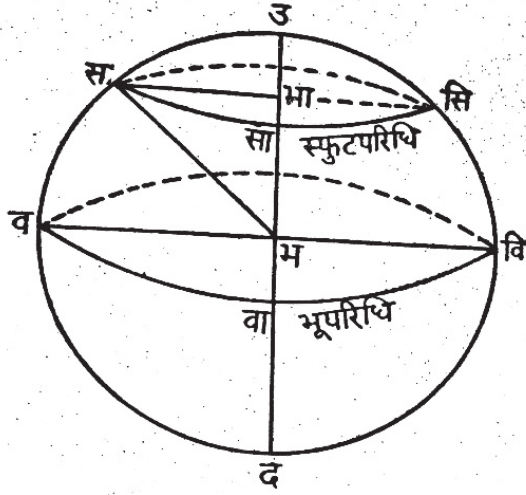
चित्र १०

भ=पृथ्वी का केन्द्र।
उ=पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (सुमेरु)।
द=पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु)।
व=विषुवत् रेखा का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है।
स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थान की उत्तर-दक्षिण रेखा।
∠व भ स=स का अक्षांश।
∠स भ उ=स का लम्बांश।
उ द=पृथ्वी का अक्ष।
स भ=स से पृथ्वी के अक्ष की दूरी
= स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धति से

विषुवत् रेखा से जैसे – जैसे उत्तर या दक्षिण जाइयेगा वैसे-वैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहाँ तक कि ध्रुवों पर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है। इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवों पर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है। क्षेत्र से भी स्पष्ट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की त्रिज्या 'स भा' है जो स की लम्बज्या भी कहलाती है, क्योंकि स का लम्बांश < स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासों में होता है, इसलिए

व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

इसलिए स सा सि = व वा वि × स भा / व भ = भूपरिधि × लम्बज्या/ त्रिज्या, जब त्रिज्या ३४३८ हो ओर लम्बजया का मान सिद्धान्तीय पद्धति के अनुसार कलाओं में हो तो यदि आजकल की प्रथा

के अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि = भूपरिधि × लम्बज्या जबकि लम्बांश की ज्या दशमलव में दी हुई हो क्योंकि इस रीति से लम्बज्या = स भा/ सभ =
सभा / वभ।

आचार्य भास्कराचार्य स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में भूपरिधि के बारे में बतलाते हुए कहते है कि –

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधि: सप्तांगनन्दाब्धय ४९६७
स्तद्व्यास: कुभुजंगसायकभुवो १५८१ ऽथ प्रोच्यते योजनम्।।
याम्योदक्पुरयो: पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश हृत्।
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्।।

अर्थात् आचार्य ने भूपरिधि ४९६७ योजन तथा उसका व्यास १५८१ योजन बताया है। याम्योदकपुर (रेखापुर) और स्वपुर (स्वस्थान) के अक्षांश के अन्तर को परिधि से गुणा करके ३६० अंश से विभक्त करने पर दोनों स्थानों के अन्तर योजन होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास कितना योजन है?
   क. १२०० योजन ख. १४०० योजन ग. १६०० योजन घ.१०००
2. लंका कहाँ स्थित है?
   क. भूमध्य में ख. रेखादेश में ग. भूपृष्ठ पर घ. निरक्ष देश में
3. लंका के ९०° पूर्व में कौन सा पुर स्थित है?
   क. रोमकपत्तन ख. सिद्धपुर ग. यमकोटि घ. सुमेरू
4. आधुनिक मत में π का मान कितना है?
   क. २२/७ ख. २२/६ ग. २२/५ घ. २२/८
5. $\frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} = ?$
   क. भूपरिधि ख. मध्यम भूपरिधि ग. स्पष्टभूपिरिधि घ. कोई नहीं

6. विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को क्या कहते है ?

   क. दक्षिण गोल ख. उत्तर गोल ग. पश्चिम गोल घ. पूर्व गोल

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि 'भू' का अर्थ होता है – पृथ्वी एवं तत्सम्बन्धित व्यास को 'भूव्यास' कहा जाता है। पृथ्वी के व्यास एवं मध्यम भूपरिधि के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत्।।

अर्थात् पृथ्वी का व्यास ८०० के दुगने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है, वह 'पृथ्वी की परिधि' होती है।

भूपरिधि को (स्वस्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो फल कला में आयेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पश्चिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं।

4.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. ग
2. क
3. ग
4. क
5. ग
6. ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद।
2. सिद्धान्तशिरोमणि, टिकाकार - सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, श्री शिवनाथ झारखण्डी, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

5. सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनयकुमारपाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

4.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **भूव्यास**

भू का अर्थ पृथ्वी होता है। तथा उसके केन्द्र से दोनों प्रान्त तक की ओर जाने वाली (दक्षिणोत्तर) रेखा व्यास कहलाती है। आधुनिक मतानुसार पृथ्वी का व्यास को हम २२/७ के रूप में जानते हैं। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है।

- **भूपरिधि**

पृथ्वी के चारों और का सम्पूर्ण मान को हम भूपरिधि के नाम से जानते हैं। भास्कराचार्य के अनुसार भूपरिधि का मान ४९६७ होता है।

- **त्रिज्या**

व्यास का आधा त्रिज्या होता है।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूव्यास से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. भूपरिधि का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. स्पष्ट भूपरिधि का साधन कीजिये।
4. भूव्यास और परिधि में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 5 भूगोल स्वरूप विवेचन

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY -102 के प्रथम खण्ड की अन्तिम और पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक 'भूगोल स्वरूप विवेचन' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ग्रहों के भगण, गति, भूव्यास एवं भूपरिधि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप भूगोल स्वरूप से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यत: भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोल होने से है। सैद्धान्तिक एवं भौगोलिक स्थिति के अनुसार हम भूगोल स्वरूप को इस इकाई में समझेंगे।

अत: आइए अब पृथ्वी के गोलत्व से सम्बन्धित सैद्धान्तिक तत्वों का विवेचन इस इकाई में अध्ययन करते हैं।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूगोल को परिभाषित कर सकेंगे।
- भूगोल स्वरूप को जान लेंगे।
- भूगोल की स्थिति को समझ सकेगें।
- भूगोल की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में समर्थ हो जायेंगे।
- भूगोल के गोलीय स्वरूप को समझ जायेंगे।

5.3 भूगोल परिचय

सामान्यतया भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोलत्व से है। ज्योतिषशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में भू (पृथ्वी) का स्वरूप बतलाते हुए कहते है कि –

भूमे: पिण्ड: शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैवृत्तो वृत: सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधार: स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्।।
सर्वत: पर्वतरामग्रामचैत्यचयैश्चित:।
कदम्बकुसुमग्रन्थि: केसरप्रसरैरिव।।

अर्थात् मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरू, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर देवता, मानव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्ध्व) केसर लगी रहती है।

गोल परिभाषा में भी –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थित:।
पृथुत्वात् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् तथा।।
आवृत्तोयं क्रमाच्चन्द्र- बुध-शुक्राऽर्क-भूभुवाम्।
गोलैजीवार्किभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

अर्थात् गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भू-पिण्ड को ‘भूगोल’ कहते हैं। यह भूगोल (भूमि गोल) स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल वृहद् होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि-भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा ऊर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि जानना चाहिए।

पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। ‘वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते’ के आधार पर अर्थात् पृथुत्वात् समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपर- ऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

पुराणों के आधार पर पृथ्वी की आधार परम्परा और उसका निराकरण –

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्ति: किमाद्ये किं नो भूमे: साष्टमूर्तेश्च मूर्ति:।

अर्थात् यदि हम मानते हैं कि मूर्त रूप पृथ्वी को कोई धारण करने वाला धर्ता है तो उस धर्ता को भी धारण करने वाला अन्य दूसरा धर्ता होगा, इसी प्रकार उसको भी धारण करने वाला कोई और अन्यधर्ता होगा। इस प्रकार धारक और धार्य की स्थिति की कल्पना में अन्त में यही मानना पड़ेगा कि कोई अवस्था की स्थिति है जहाँ अन्तिम धारक स्वशक्ति से ही स्थित है तथा उसको धारण करने वाला कोई नहीं है। अत: धारण करने वाली कल्पना सही नहीं है। भूमि का   कोई अन्य आधार नहीं है। ऐसा मानने से उसका निराधार स्थिति रहना ही भाव है। शेष नाग आदि नामक ईश्वर अंश की अन्तरिक्ष में अवस्थित होने के लिए युक्ति कल्पित की है। भूमि भी उसी भाव से युक्त होने से भगवान

अष्टमूर्ति शिव की भाँति शक्ति कल्पित की गई है जो स्वयं शक्ति का केन्द्र है। अत: यह भूमि, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य और चन्द्र के साथ यजमानात्मक महेश्वर की मूर्ति के समान शरीर धारण करके ईश्वर मूर्ति की भाँति अन्तरिक्ष में अवस्थित है। इस प्रकार शक्ति कल्पना की युक्ति का भाव है।

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुति: के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तय:।।
आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्तया।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

जिस प्रकार अग्नि और सूर्य में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता है, जल में तरलता है, पाषाण में कठोरता है, वायु में गति है, ये सब स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उसी प्रकार पृथ्वी में अचलता अर्थात् स्थिरता का गुण स्वाभाविक (प्राकृतिक) है। इस विचित्र गुण के कारण यह स्थिर रह सकती है।
पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति के कारण, आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी की और स्वशक्ति से आकर्षित होकर उस पर गिरते हुए दिखायी देते हैं। लेकिन यह पृथ्वी चारों ओर से आकाश से घिरी हुई होने के कारण कहाँ पर गिरेगी? अर्थात् यह अपने ही स्थान पर स्थित है, अपने विचित्र स्वाभाविक गुण के कारण। अत: पृथ्वी की इस आकर्षण शक्ति से भूमि का अध:पतन और आकाश के नीचे स्थिति से नीचे गिरने की शंका निराधार है।

भूगोल समता निराकरण –

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणि: क्षिते:।
उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते।।
यदि निशाजनक: कनकाचल: किमु तदन्तरग: स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके।।

पुराणों में पृथ्वी को दर्पण के समान समतल कहा गया है। उसके मध्य में मेरु पर्वत कहा है तथा उसके चारों ओर जम्बूद्वीप एक लाख योजन व्यास का कहा गया है तथा उसके बाहर चारों ओर एक लाख योजन प्रमाण का क्षार सागर कहा है और उसके चारों ओर दो लाख योजन का अन्यदीप कहा गया है। उसके बाहर समुद्र फिर अन्य द्वीप, फिर उस द्वीप से द्विगुणित द्वीप, फिर समुद्र से दुगना समुद्र। इस प्रकार सातवें पुस्कर द्वीप के मध्य में वलयाकार मानस उत्तर पर्वत है, उसके शिखर के ऊपर रवि के रथ का चक्र एक लाख योजन दूरी पर विषुवद्दिन में उत्तर गोल में उत्तर की ओर तथा दक्षिण गोल में दक्षिण की ओर भ्रमण करता है।

उपरोक्त पुराणोक्त कथन का आचार्य युक्ति –युक्त खण्डन करते हुए कहते हैं कि यदि दर्पण के समान भूमि समतल होती और उसके ऊपर से बहुत दूर से सूर्य भ्रमण करता तो सूर्य सदा उदित अवस्था में ही प्राणियों को दर्श होता जैसे देवताओं को मेरु से सूर्य सदा उदित दिखता है। यदि मेरु पर्वत से अन्तर्हित (आच्छादक) रवि होता तो मेरु क्यों नहीं दिखाई देता अर्थात् वह दिखाई देना चाहिए। यदि मेरु के तट से रवि उदित होता है तो पूर्व दिशा से उत्तर की ओर ही सूर्योदय होगा तो फिर मेरु के दक्षिण के भाग में वह उदित होता हुआ दिखाई कैसे देगा। अत: भूमि के समतल होने की बात इस प्रकार उपपन्न नहीं होती है।

भू समतलत्व –

समो यत: स्यात् परिधे: शतांश: पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यत: सा।।

ज्योतिष के आचार्यों का कथन है कि किसी वृत्त का सौवाँ भाग समतल वत दृष्टिगोचर होता है। अत: पृथ्वी परिधि का भी सौवाँ भाग इसी प्रकार समतलवत दिखाई देता है। इसी प्रकार मनुष्य उसके पृष्ठ पर स्थित होकर सामने देखते हैं तो उन्हें पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग दूर तक समतल ही दिखता है। अत: उन्हें पृथ्वी के समतल होने का आभास होता है लेकिन वह समतल नहीं होती।

भूपरिधि प्रमाण –

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरूक्तं परिधे: प्रमाणम्।

अर्थात् निरक्ष देश (जहाँ का अक्षांश शून्य हो) स्वदेश स्थान पृथ्वी पर जैसे-जैसे दक्षिण की ओर होता है वैसे-वैसे खस्वस्तिक विषुवद् वृत्त से नत होता जाता है। उन दोनों अर्थात् निरक्षदेश तथा स्वस्थान का अन्तर 'अक्षांश' होता है। यह निरक्षदेश से पृथ्वी पर फैली हुई योजन दूरी, अनुपात से प्राप्त होता है। किसी स्थान के अक्षांश ज्ञात करके उससे उत्तर की ओर अन्य एक स्थान ज्ञात करना चाहिए। फिर उनके अन्तरांशों के पुरान्तर योजन का अनुपात इस प्रकार करना चाहिए कि यदि इतने अन्तरांश में इतने पुरान्तर योजन प्राप्त होते हैं तो चक्रांश (३६०°) में कितने होंगे? प्राप्त लब्धि फल भूपरिधि योजन होगा।

भूगोल में स्थानों का निवेश -

लंका कुमध्ये यमकोटिरस्या: प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्तत: सिद्धपुरं सुमेरू: सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च।।

कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसंघा और्वे च सर्वे नरका: सदैत्या:।।
यो तत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽत: कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति।।
अध: शिरस्का: कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगध: स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र।।

आप इस स्थिति को और सरल तरह से समझिये – पृथ्वी के मध्य में लंका, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमक पतन नामक स्थान है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरू उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सभी स्थान भूमध्यस्थ लंका के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छ: गोल वाले कहे जाते है। मेरू पर देवता सिद्ध पुरूषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर नरक तथा दैत्य गण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरो को अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं) । पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे खड़े होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अध: भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

1. यह भूमिगोल .... से निराधार आकाश में स्थित है।
2. ग्रहकक्षा क्रम में बुध के बाद .... की कक्षा है।
3. जम्बूद्वीप का व्यास .... योजन है।
4. पुराणों में पृथ्वी को .... समतल कहा गया है।
5. लंका .... स्थित है।
6. किसी वृत्त का .... भाग समतल वत दिखाई पड़ता है।

द्वीपों एवं समुद्रों का स्थान –

भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्या:।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेश:।।
लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मादमृतममृतरश्मि: श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्म: पद्मजनमादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र।।
दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्य:।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोका: पृथिवीपुटानि।।
चंचत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणा: फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहै: सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासै:।।
शाकं तत: शल्मलमत्र कौशं क्रोचं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति।।

भूमि के उत्तरार्ध भाग में क्षार समुद्र के उत्तर दिशा में जम्बूद्वीप की स्थिति आचार्यों द्वारा बतलायी गयी हैं। इसके दूसरे अर्धभाग में अर्थात् जहाँ क्षीर सागर तथा जम्बूद्वीप के दक्षिण की ओर छ: द्वीप स्थित हैं, लवण (नमकीन) समुद्र से आगे दुग्ध समुद्र है जिसमें से अमृत (सदा स्थित) और अमृत रश्मि चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। यहीं पर क्षीर सागर पर पद्म चरण पूज्य भगवान पद्म जन्मा ब्रह्मा तथा अन्य देवता और सर्वव्यापी भगवान परब्रह्म विष्णु भी विराजमान रहते हैं।

दधि,घृत,इक्षु रस, मद्य और मधुर जल के अन्य पाँच सागर हैं तथा छठा दुग्ध सागर व सातवाँ क्षीर सागर मिलाकर सात सागर आचार्य नहे कहे हैं। स्वादु जल सागर के अन्दर बडवानल स्थित रहता है। पाताल लोक पृथ्वी के अन्दर स्थित हैं। फणों को हिलाने वाले मणिधारी नाग अपने फणों में प्रकाश से युक्त मणियों से पाताल में प्रकाश रहता है। शाक, शाल्मल, कौश, क्रौंच तथा गोमेदक और पुष्कर द्वीप दो-दो समुद्रों के बीच में स्थित है। इस प्रकार पृथ्वी पर सात द्वीप स्थित है। मेरू पृष्ठ पर स्थित देवता, मेरू पर रात्रि के अभाव के समय जब उनकी काम इच्छा होती है तब स्वर्णक्रान्ति युक्त रमणीय देह वाली बालायें तथा वे सिद्धगण तथा देवता परस्पर क्रीड़ा में रत होते हैं। ये बालायें निज काम भाव की शान्ति के लिए स्वर्ग से आकर क्रीडा करती हैं।

भूगोलार्ध के उत्तर की ओर जम्बूद्वीप है इससे क्षीरसागर की संधि निरक्षदेश है। वहाँ पर रोमक, सिद्धपुर, यमकोटि आदि चार नगर भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर अर्थात् चारों दिशाओं में कहे गये हैं। इन सभी चारों नगरों के उत्तर दिशा की ओर मेरू है। लंका के उत्तर में हिमवान नामक पर्वत पूर्व से पश्चिम तक समुद्र में फैला हुआ है। इसके उत्तर में निषध नामक पर्वत है।

इन पर्वतों के मध्य में द्रोणि देश, वर्ष संज्ञक है जिसके आरम्भ में भारतवर्ष है जिसके उत्तर में किन्नवर्ष संज्ञक तथा इसके उत्तर में हरिवर्ष संज्ञक प्रदेश है। इसी प्रकार सिद्धपुर के उत्तर की ओर श्रृंगवान नाम का पर्वत है, उससे उत्तर में श्वेत गिरि पर्वत, उससे उत्तर में नीलगिरि पर्वत है। इन सभी का विस्तार समुद्र पर्यन्त है। इन पर्वतों के मध्य सर्वप्रथम कुरूवर्ष है इसके उत्तर में हिरण्मय है, इसके उत्तर में रम्यक वर्ष है।

उस यमकोटि पुर के उत्तर की ओर माल्यवान नाम का पर्वत है। यह निषध और नील पर्वत तक फैला हुआ है। इसके और समुद्र के मध्य में भद्राश्व वर्ष है। इसी प्रकार रोमक पर्वत के उत्तर में गन्धमादन है, इसके तथा समुद्र के बीच में केतुमाल नगर है।

आर्यभट्ट के मतानुसार पृथ्वी का गोलत्व -

अनुलोमगतिनौंस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।।

इस श्लोक में आर्यभट ने यह स्पष्ट किया है कि नक्षत्र मण्डल स्थिर है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है।

जिस प्रकार से नाव में बैठकर कोई मनुष्य पूर्व की ओर जाने पर व्यक्ति को अचल वस्तुऐं विपरीत दिशा में जाती हुई दिखती है, उसी प्रकार अचल नक्षत्रमण्डल को लङ्का से पश्चिम की ओर जाते देखते है

शशिराशयष्ठ चक्रं तेंऽशकला योजनानि यवस्त्रिगुणाः।
प्राणेनैति कलां भं ख, युगांशे ग्रहजवो भवांशेऽर्कः।।

इस श्लोक में आचार्य आर्यभट ने प्राणेनैति कलां भं ख से यह स्पष्ट कर दिया है कि पृथ्वी प्राणेन अर्थात् एक प्राण कालान्तर में एक चक्रकला घूमती है।

वैदिक मत से पृथ्वी का परिभ्रमण -

पश्चिम में 15वीं शताब्दी में गैलिलियो के समय तक धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य उसका चक्कर लगाता है, परन्तु आज से लगभग 1500 वर्ष पूर्व हुए आर्यभट ने प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है। वेदों में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और उसी सूर्य के आकर्षण के कारण अपने मार्ग से भटक नहीं सकती। 27 सूर्य अर्थात् नक्षत्रों की परिक्रमा पृथ्वी कितने दिनों में करती है, इसका उत्तर ऋग्वेद इस प्रकार से देता है –

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत। तस्मिन् त्साकं त्रिशता न

शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाशः॥[1]

भावार्थ – (चक्रम्) यहां वर्ष ही चक्र है, क्योकिं यह रथ के पहिया के समान क्रमणः अर्थात् पुनः पुनः घूमता रहता है। उस चक्र में (द्वादश + प्रधयः) जैसे चक्र में छोटी –छोटी अरे प्राधि = कीलें हैं, वैसे ही वर्ष में बारह मास हैं। (त्रीणि + नभ्यानी) उसके (पृथ्वी के) परिक्रमण के दौरान कोई भाग सूर्य के नजदीक आने - दूर जाने से तीन ऋतुऐं होती हैं। (क उ तत् चिकेत) उस तत्त्व को कौन जानता है? (तस्मिन् साकं शङ्कवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशता + षष्टिः) 300 और 60 दिन (अर्पिता) स्थापित है। (न + चलाचलाशः) वे 360 दिन दिन रूप कीलें कभी विचलित होने वाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक वर्ष में 360 दिन होते हैं।

जिस पृथ्वी पिण्ड पर हम सभी स्थित हैं, वह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाती है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने का जो मार्ग है उसे क्रान्ति वृत्त कहते है। पृथिवी के मध्य का जो सबसे बडा पूर्वापर वृत्त है, उसे नाडीवृत्त, विषुवद्वृत्त, भूमध्यरेखा या आङ्ग्लभाषा में 'इक्वेटर' कहा जाता है। उत्तरीध्रुव से 90 अंश दक्षिण और दक्षिणी ध्रुव से 90 अंश उत्तर की ओर जो कल्पित पूर्वापर वृत्त है, उसी का नाम विषुवदवृत्त है। यदि पृथ्वी सदा इस विषुवदवृत्त पर ही घूमती तो दिन-रात सदा वराबर रहते। 12 घण्टे की रात व 12 घण्टे का दिन होता, परन्तु ऐसा है नहीं। पृथ्वी सूर्य से दक्षिण भाग में नीचे की ओर लगभग 24 अंश तक चली जाती है, इसी तरह सूर्य से उपर उत्तर की ओर लगभग 24 तक चली जाती है। इससे 24 अंश उंचा और 24 अंश नीचा 48 अंश का एक अण्डाकार वृत्त बन जाता है, उसपर पृथ्वी घूमती है, इसी का नाम क्रान्तिवृत्त है। यही कारण है कि दिन रात बराबर नहीं होते हैं। पृथ्वी घूमते घूमते जब सौर विषुव पर आती है तो इस दिन रात-दिन बराबर होते है। ऐसी स्थिति वर्ष में दो बार ही आती है। अतः कोशकार कहते है –

"समरात्रिन्दिवे काले विषुवद् विषुवं च तत्" इति।

सूर्य के विषुवत् से जो दक्षिण भाग है वह दक्षिण गोल कहलाता है, और उत्तरभाग उत्तर गोल कहलाता है। पृथिवी दक्षिण-गोल से जिस दिन उत्तर गोल में प्रविष्ट होती है। उस दिन दिन-रात बराबर होते हैं। एवं जिस दिन उत्तर से दक्षिण गोल में प्रविष्ट होते हैं, उस दिन भी रात दिन बराबर होते हैं। 6 महिने पृथ्वी उत्तर गोल में रहती है, 6 महीने दक्षिण गोल में रहती है। क्रान्तिवृत्त और विषुवत वृत्त के सम्पात की जो गति है उसी को अयन बिन्दु का चलन कहते है। यह सम्पात भी दो स्थानों पर होता है, उन सम्पात बिन्दुओं को राहु-केतु कहा जाता है। ये दोनों सम्पात १. शारद सम्पात और २. वासन्त सम्पात नाम से प्रसिद्ध है। जिस दिन (२१ मार्च को चैत्र महिने में) वासन्त सम्पात होता है

1 ऋग्वेद 1-164-48

और २३ सितम्बर को शारद सम्पात होता है उस दिन दिन-रात बराबर होते है। इसी प्रकार २२ जून को दिन सवसे बडा होता है एवं २२ दिसम्बर को दिन सबसे छोटा होता है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरूदक्स्थं .... ?
   क. जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्या: ख. रोमकं ग. बड़वानलम् घ. क्षारसिन्धु
2. पृथ्वी पर प्रधानतया द्वीपों की संख्या कितनी है?
   क. 2 ख. 5 ग. 7 घ. 9
3. लंका के उत्तर में कौन सा पर्वत स्थित है?
   क. गन्धमादन ख. हिमवान ग. माल्यवान घ. नील
4. 'भानि' शब्दस्य कोऽर्थः ?
   क. नक्षत्रम् ख. राशि ग. भूमि घ. भूगोलम्
5. पृथ्वी जब उत्तर से दक्षिण या दक्षिण से उत्तर गोल में प्रविष्ट करती है, तो उस दिन होता है–
   क. दिन बड़ा रात्रि छोटी ख. दिन-रात बराबर ग. रात्रि बड़ी और दिवा छोटी
   घ. कोई नहीं
6. सर्वाधिक बड़ा दिन कब होता है ?
   क. २२ जुलाई ख. २२ जून ग. २२ दिसम्बर घ. २२ मई

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया भूगोल का अर्थ पृथ्वी के गोलत्व से है। ज्योतिषशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के गोलाध्याय में भू (पृथ्वी) का स्वरूप बतलाते हुए कहते है कि अर्थात् मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरू, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर देवता, मानव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्ध्व) केसर लगी रहती है। गेन्द के समान गोल होने के कारण इस भू-पिण्ड को

'भूगोल' कहते हैं। यह भूगोल (भूमि गोल) स्वशक्ति (अपनी शक्ति) से निराधार आकाश में स्थित है। विशाल वृहद् होने के कारण देखने में समतल एवं चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। यह भूगोल क्रमश: चन्द्र-बुध-शुक्र-रवि-भौम-गुरु-शनि एवं नक्षत्र गोल के द्वारा ऊर्ध्वोर्ध्वस्थ आवृत्त है अर्थात् पृथ्वी के ऊपर चन्द्र, पुन: ऊपर बुध आदि जानना चाहिए।

पृथ्वी में स्वल्प गति होने के कारण उसे अचल कहा गया है। 'वृत्तस्य नवतिर्भाग दण्डवत् परिदृश्यते' के आधार पर अर्थात् पृथुत्वात् समतल दिखायी पड़ती है। भूगोल के चारों तरफ ऊपर- ऊपर क्रमश: भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि और नक्षत्रों के मण्डल हैं।

5.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. स्वशक्ति से
2. शुक्र
3. एक लाख
4. दर्पण के समान
5. भूमध्य में
6. 100 वाँ भाग

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. क
2. ग
3. ख
4. क
5. ख
6. ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त., महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ0 रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान, इलाहाबाद।
2. सिद्धान्तशिरोमणि, टिकाकार - सत्यदेव शर्मा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी

3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

4. ऋग्वेद 1-164-48

5.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

- **भूगोल**

भू का अर्थ पृथ्वी होता है। गेन्द के समान गोल होने के कारण भू-पिण्ड को 'भूगोल' कहते हैं।

- **निरक्ष प्रदेश**

निरक्ष का अर्थ होता है – अक्षांश रहित अर्थात् जिस स्थान का अक्षांश शून्य हो, उसे निरक्ष प्रदेश कहते है। यथा – लंका।

- **त्रिज्या**

व्यास का आधा त्रिज्या होता है।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूगोल से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिये।
2. भूगोल का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. विभिन्न मतानुसार भू गोलत्व का प्रतिपादन कीजिये।

एम.ए. ज्योतिष

प्रथम वर्ष

द्वितीय प्रश्न पत्र

खण्ड - 2

काल विवेचन

इकाई - 1 काल स्वरूप

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – काल स्वरूप। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने सिद्धान्त ज्योतिष, ग्रहभगण, भूव्यास- भूपरिधि तथा भूगोल का अध्ययन कर लिया हैं। अब आप काल स्वरूप का अध्ययन करने जा रहे है।

काल सृष्टि-संचालन का मूल है। काल सापेक्ष ही चराचर प्राणी भूसापेक्ष जीवनयापन करते है, यह सर्वविदित है। कलयति लोकान इति काल:। काल नियामक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। ज्योतिषशास्त्रोक्त काल का उल्लेख इस पाठ में किया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप काल से परिचित हो सकेंगे तथा उसके मूलभूत तथ्यों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि काल किसे कहते है।
- समझा सकेंगे कि काल क्या हैं।
- काल के विभिन्न स्वरूप को समझ लेंगे।
- ज्योतिषशास्त्रोक्त काल के बारे में जान लेंगे।
- काल की महिमा का अवबोधन हो जायेगा।

1.3 काल: परिचय, परिभाषा एवं प्रकार

काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है –

> लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:।
> स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा

दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे स्थूल अथवा मूर्त्त कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे सूक्ष्म और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' ब्रह्मा को सृष्टि की रचना में ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त में कथित है –

ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा (४७४) दिव्याब्दा: शतघ्ना वेधसो गता:।।

अत: सृष्टयन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। गणना हेतु ज्योतिषशास्त्र में काल के नवभेद बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।

अर्थात् 1. ब्राह्म, 2. दिव्य, 3. पैत्रय, 4. प्राजापत्य, 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर, 7. सावन, 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं। यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं। किन्तु ये सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिए। जैसे किसी दीवार को मापने के लिए हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक

उपकरण भिन्न- भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि अनन्त है। उसे मापने के लिए हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र, कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मान: प्रभेद: कमात्। त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक काल गणना तथा उनको मानों अर्थात् मापकों के भेदों का विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालचक्रज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुए लिखा है –

''चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति:।''

आजकल भी एक प्रसिद्ध उक्ति है इतिहास सदैव अपने आप को दुहराता है। ये मात्र सूक्तियाँ नहीं है। इनके मूल में कुछ महत्वपूर्ण अनुभव भी होते हैं।

आचार्य पराशर ने भी दशाओं के वर्णन में एक कालचक्र दशा का उल्लेख किया है। यदि हम ब्रह्माण्ड के स्वरूप पर ध्यान दें तो समस्त ब्रह्माण्ड ही चक्रभ्रमण करता हुआ प्रतीत होगा। यदि ब्रह्माण्ड के शब्दार्थ को लिया जाय तो अनेक गुत्थियाँ स्वत: ही सुलझ जाती है। ब्रह्म + अण्ड, अर्थात् ब्रह्म द्वारा निर्मित अण्ड जिसमें समस्त सौर मण्डल एवं नक्षत्रादि है, तथा उसकी परिधि अण्डाकार (दीर्घ वृत्तानुकारी) है। इसी अण्डाकार परिधि के अन्दर ग्रहादिकों की दीर्घवृत्ताकार कक्षायें है तथा इसी अण्डाकार परिधि में कालचक्र भी भ्रमण करता है। ऐसी स्थिति में काल की गति एक सीधी रेखा में मानना युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता। आकाश मण्डल में स्थित इकाईयों के चक्रभ्रमण को भगवान व्यास ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है।

उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि।
स हि भ्रमन् भ्रामयते नित्यं चन्द्रादित्यौ ग्रहै: सह।।

अर्थात् ध्रुव शिंशुमार चक्र में अवस्थित रहते हुए सूर्य-चन्द्र सहित समस्त नक्षत्र चक्र को घुमाता हुआ स्वयं भी घूमता है। आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है कि आकाशस्थ सभी पिण्ड भ्रमण कर रहे हैं। जहाँ तक सीधी रेखा में गतिशील होने का प्रश्न है वह किसी नियत काल या नियत दूरी तक तो सम्भव है अनन्तकाल और अनन्त दूरी तक सम्भव नहीं है। पृथ्वी को भी हम सीधी रेखा में देखते हैं। जब कि हम जानते हैं पृथ्वी गोल है। परन्तु हम पृथ्वी के गोलत्व को नहीं देख पाते। हम कही भी जायेंगे पृथ्वी हमे समान सीधी, समतल सरल रेखा में ही दिखलाई पड़ेगी। इस रहस्य को गणित का यह सिद्धान्त सुलझाता है – ''परिधे: षण्णवत्यंशो दण्डवत् परिदृश्यते।'' अर्थात् परिधि का

96 वाँ भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है। हमारी दृष्टि 96 वें भाग से भी बहुत न्यून भाग को देख पाती है। इसीलिए पृथ्वी हमें सीधी सरल रेखा में दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार काल का भी कुछ दूरी तक एक सीधी रेखा में जाते हुए प्रतीत होना स्वाभाविक है।

मनुष्य की भी एक सीमा है उससे अधिक वह तो न जा सकता है न देख सकता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से बाहर जाने पर पृथ्वी का स्वरूप दिव्य नेत्रों से अथवा सक्षम उपकरणों से देखा जा सकता है, किन्तु अपने चर्म चक्षुओं से वायुमण्डल की सीमा पर भी जाकर हम कुछ नहीं देख सकते। क्योंकि जाते ही घोर अन्ध तमस ही दिखाई देगा। जैसा कि सीता के अन्वेषण के समय अपनी गति से सीमान्त तक जाकर जामवन्त जी ने देखा और सुग्रीव को बताया –

एतावद् वानरै: शक्यं गन्तुं वानरपुंगवा।
अभास्करममर्यादं न जानीमस्तत: परम्।।

इस प्रकार शास्त्रीय प्रमाण एवं गणितीय आधार पर हम कह सकते हैं कि काल का भी चक्रभ्रमण होता है, किन्तु इसकी अवधि निर्धारित करना दुष्कर है।

1.3.1 व्युत्पत्ति व विभिन्न अवयव

कल संख्यायने धातु से घञ् प्रत्यय करने पर (कलन अर्थ में) काल शब्द का निर्माण होता है। कलयते लोकान इति काल:। कालविधायक होने के कारण ज्योतिषशास्त्र को 'कालशास्त्र' भी कहा जाता है। विश्व के समस्त चराचर प्राणी कालाभिभूत है। अत: इस शास्त्र की महत्ता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक को उनके अपने-अपने निर्धारित काल में होने वाली घटनाओं की जिज्ञासा होती है।

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से जुड़े हैं। वे हैं सौर- चन्द्र-सावन और नाक्षत्र। जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एकमास तक एक राशि में रहता है। 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात् एक वर्ष लगता है। मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। अमान्त से अमान्त तक अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमा तक एक चान्द्रमास होता है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं। दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी बाद यह परिभ्रमण कर पुन: उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसीलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना

की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है –

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्।
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।।
यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासाराद्यम्।
तत् सावनाच्च घटिकादिमार्क्षमानात्।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्रमान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान ६० घटी या २४ घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र (घड़ी) द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण।इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव

अमूर्त्त काल सूक्ष्म	मूर्त्त काल (स्थूल)
पद्मपत्र भेदनकाल = १ त्रुटि	६ विपल = १ प्राण
६० त्रुटि = १ रेणु	६० विपल = १ पल
६० रेणु = १लव	६० पल = १ घटी
६० लव = १ लीक्षक	६० घटी = १ अहोरात्र
	३० अहोरात्र = १ मास
६० लीक्षक = १ प्राण	१२ मास = १ वर्ष

२४ सेकेण्ड = ६० विपल = १ पल
२४ मिनट = ६० पल = १ घटी
२४ घण्टा = ६० घटी = १ अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई

कृतयुग = १७२८००० सौरवर्ष
त्रेतायुग = १२९६००० सौरवर्ष
द्वापरयुग = ८६४००० सौरवर्ष
कलियुग = ४३२००० सौरवर्ष

महायुग = ४३२०००० सौरवर्ष

मनु = ३०६७२०००० सौरवर्ष

कल्प = ४३२ ००००००० सौरवर्ष ब्राह्म दिन

ब्राह्म अहोरात्र = ८६४००००००० सौरवर्ष

काल की बड़ी इकाईयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालताम्।।

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ-साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों अयनों एवं विषुवदिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्यकालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. काल अनन्त और अनादि होने के कारण .... है।
2. लोकानामन्तकृत कालः कालोऽन्यः .... ।
3. ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना में .... दिव्यवर्ष का समय लगता है।
4. कल संख्यायने धातु से .... प्रत्यय करने पर काल शब्द की व्युत्पत्ति होती है।
5. ब्रह्मा जी का एक अहोरात्र .... कल्प के बराबर होता है।
6. कालः सृजति .... ।
7. ६० त्रुटि .... ?
8. २४ मिनट = ?
9. परिधि का .... भाग दण्डवत (दण्ड के समान) सीधी रेखा में दिखाई पड़ता है।
10. कालविधायक होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को .... भी कहा जाता है।

मकर राशि में सूर्य के प्रवेश करने पर उत्तर अयन तथा कर्क राशि में प्रवेश करने (कर्क संक्रान्ति से) से दक्षिण अयन की प्रवृत्ति होती है। मेष और तुला में सू जिस दिन प्रवेश करता है उसे विषुव दिन कहते है। वस्तुतः सायन मेष और सायन तुला में सूर्य के रहने पर विषुव दिन होता है। विषुव दिनों में दिन रात्रि का मान बराबर होता है। षडशीति का अभिप्राय है- तुला संक्रान्ति से आरम्भ कर ८६ दिनों की

अवधि षडशीति मुखमान। तुलाराशि से आरम्भ कर 86 अंशों के अन्तराल पर चार षडशीति मान होते हैं। ३४४ दिनों में चारों षडशीति मान पूर्ण होते हैं। वर्षमान ३६० दिन में ३४४ दिन षडशीति के अतिरिक्त शेष १६ दिन कन्याराशि के अवशिष्ट रह जाते हैं। ये १६ दिन श्राद्ध के लिए उपयुक्त होते हैं। इस अवधि में की गई पितृ क्रिया अक्षय पुण्य देने वाली होती है। सूर्यसिद्धान्त में इन १६ दिनों को यज्ञतुल्य काल कहा गया है –

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्।।

ये सभी व्यावहारिक काल हैं। इनका उपयोग निरन्तर होता रहता है। इनके अतिरिक्त गौरव मान (गुरू से सम्बन्धित) भी प्रयोग में आता है। इसका अधिक विवेचन नहीं मिलता है केवल इतना ही कहा गया है कि वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को एक संवत्सर कहते हैं। संवत्सर साठ होते हैं जिनकी गणना प्राचीन काल में विजयादि क्रम से होती थी जैसा कि सूर्यसिद्धान्त कहता है-

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकै:।
राशिभि: सहिता: शुद्धा: षष्ट्या स्युर्विजयादय:।।

किन्तु आज व्यवहार में प्रभवादि ६० संवत्सर हैं। उनके तीन विभाग किये गये हैं –

१. ब्रह्मविंशतिका २. विष्णुविंशतिका ३. रूद्रविंशतिका

इन संवत्सरों की अवधि ११ मास से १३ मास की तक की होती है। भारतीय परम्परा में काल अनन्त है उसकी परिभाषायें तथा इकाईयाँ भी अनन्त हैं। यहाँ केवल दैनिक जीवन में व्यवहृत कालमानों का वर्णन किया गया हैं। साठ संवत्सरों के नाम निम्नलिखित हैं –

	ब्रह्मविंशतिका		**विष्णुविंशतिका**		**रूद्रविंशतिका**
१	प्रभव	२१	सर्वजित्	४१	प्लवंग
२	विभव	२२	सर्वधारी	४२	कीलक
३	शुक्ल	२३	विरोधी	४३	सौम्य
४	प्रमोद	२४	विकृति	४४	साधारण
५	प्रजापति	२५	खर	४५	विरोधकृत्
६	अंगिरा	२६	नन्दन	४६	परिधावी
७	श्रीमुख	२७	विजय	४७	प्रमादी
८	भाव	२८	जय	४८	आनन्द
९	युवा	२९	मन्मथ	४९	राक्षस

१०	धाता	३०	दुर्मुख	५०	नल
११	ईश्वर	३१	हेमलम्बी	५१	पिंगल
१२	बहुधान्य	३२	विलम्बी	५२	कालयुक्त
१३	प्रभावी	३३	विकारी	५३	सिद्धार्थी
१४	विक्रम	३४	शर्वरी	५४	रौद्र
१५	वृष	३५	प्लव	५५	दुर्मति
१६	चित्रभानु	३६	शुभकृत्	५६	दुन्दुभि
१७	सुभानु	३७	शोभकृत्	५७	रूधिरोद्गारी
१८	तारण	३८	क्रोधी	५८	रक्ताक्षी
१९	पार्थिव	३९	विश्वावसु	५९	क्रोधन
२०	व्यय	४०	पराभव	६०	क्षय

विभिन्न कालमानों का सुव्यवस्थित और प्रमाणिक विवेचन भारतीय वैदिक वांगमय में उपलब्ध है। इतना विस्तृत विवरण अन्यत्र दुर्लभ है।

1.4 विभिन्न मतानुसार काल स्वरूप

व्यावहारिक दृष्ट्या एवं शास्त्रीयदृष्ट्या काल के महत्व को जानते हुए ज्योतिषशास्त्र के आदि पुरूष महात्मा लगध ने वेदांगज्योतिष में सर्वप्रथम काल को अभिवादन करते हुए कहा है कि –

पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्वयनमासांगं प्रणम्य शिरसा शुचि:।।
प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मना।।

अब आइए हम विभिन्न मतानुसार काल के स्वरूपों को जानने का प्रयास करते हैं।

1.4.1 भास्कर मतेन कालप्रवृत्ति

ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तकालीन आचार्य भास्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणी में कालप्रवृत्ति के बारे में इस प्रकार कहा गया है –

लंकानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधो: सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्ति:।।

अर्थात् लंकापुरी नगरी में जब सूर्य का प्रथम बार उदय हुआ तब चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष, युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई। यहाँ प्रवृत्ति शब्द का अर्थ सृष्टि के आदि से है। जिस समय सूर्य का प्रथम बार लंका में उदय हुआ। उस समय से सृष्टि का आरम्भ कहा गया है तथा उस समय चैत्र शुक्ल पक्ष रविवार था तथा उसी घड़ी से कल्प, युग,वर्ष, मास तथा दिन की गणना प्रारम्भ हुई। जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में काल गणना के इन अवयवों की प्रवृत्ति हुई उसी प्रकार प्रलयकाल में इन का अन्त हो जाता है तथा सभी जीवों एवं सूर्यादि ग्रहों का भी अन्त हो जाता है। ऐसे काल को अव्यक्त काल कहते हैं तथा इसका अभिप्राय अव्यक्त अवस्था से है। इस युक्ति से काल अनादि तथा अनन्त कहा गया है। उस अव्यक्त काल से सृष्टि का आरम्भ होता है तथा व्यक्त जीव एवं भचक्र ग्रहादि का प्रादुर्भव होता है। उसी समय से व्यक्त नाम दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पादि की प्रवृत्ति होती है। जैसे – मधुमासादि, शुक्ल पक्षादि, दिनादि, सौर दिनादि तथा मास वर्ष, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति होती है।

1.4.2 पुराणों में काल महिमा

पुराणों (विष्णु पुराण, कूर्म पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण) में काल महिमा का वर्णन –

कलनाद्, सर्वभूतानां स काल: परिकीर्तित:।
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजर: पर:।।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वर:।
ब्रह्मणो बहवो रूद्रा अन्ये नारायणादय:।।
एकोऽहि भगवानीश: काल: कविरिति स्मृत:।
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतोलय:।।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भव:।
परं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकर:।।
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुन:।
तस्मात् कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वर:।।
अनादि निधन: कालो रूद्र: संकर्षणस्मृत:।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु संकर्षण: स्मृत:।।
सर्वभूतसमित्वाच्च स रूद्र: परिकीर्तित:।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वर:।।

यहाँ उपर्युक्त श्लोक में भी काल को बतलाते हुए कहते है कि- काल: कलयताम्यहम्। स्वं भगवान

एव काल:।। सर्वभूतानां अर्थात् सभी प्राणियों का अन्त करने वाला संहार रूपी काल को 'अन्तकृत काल' अथवा 'महाकाल' कहते हैं। इसी प्रकार एक कलनात्मक काल होता है, जो मानव जीवन में व्यावहारिक काल के रूप में जाना जाता है। काल को हम अनादि, अनन्त, अजर तथा अमर आदि के नाम से भी जानते है। ब्रह्मा, विष्णु (नारायण) एवं रूद्र को विभिन्न काल रूपों में यहाँ वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त में भगवान तथा भृगु संवाद में भगवान द्वारा कथित वाक्य है –

लंकायामर्कोदये चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ किंस्तुघ्नादौ रौद्रादौ कालप्रवृत्ति:। यहाँ अश्विन नक्षत्र तथा किंस्तुघ्न करण का नाम विशेष रूप से दिया गया है, शेष आचार्य भास्कर के अनुसार ही है, जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है।

काल: पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।।

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर । प्रचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहॉं किया गया है।

अब हम लोग प्रकृत पर पुनः आते हैं। जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है।

1.4.3 श्रीमद्भगवद्गीता में काल वर्णन –

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त:।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिता: प्रत्यनीकेषु योधा:।।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है कि हे अर्जुन! मैं सम्पूर्ण लोक का विनाश करने वाला इन उग्ररूपों से सम्पन्न बढ़ा हुआ काल हूँ। मैं इन असुर लोगों का संहार करने के लिए ही प्रवृत्त हुआ हूँ। जो इस समय तुम्हारी प्रतिपक्ष सेनाओं में योद्धा स्थित हैं, ये सभी तुम्हारे बिना भी अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं रहेंगे।

और भी –

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्व: सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षय: कालो धाताहं विश्वतोमुख:।।

यहाँ भी भगवान अपने को अक्षय काल अर्थात् कभी न खत्म होने वाला काल के रूप में बतला रहे हैं।

1.4.4 पाश्चात्य मत में काल गणना

पाश्चात्य कालगणना पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात हो जायेगा कि १७ वीं शताब्दी तक कालगणना की कोई स्पष्ट रूपेरखा नहीं बन पाई थी। ६७३ ई. पूर्व तक रोमन पंचांगों में वर्षमान ३०४ दिन ही माने जाते थे। १० मासों का वर्ष होता था। वर्षारम्भ मार्च से तथा वर्षान्त २५ दिसम्बर को होता था। शीतकाल के २ मासों की गणना नहीं होती थी। ईसा पूर्व ६७३ में नूमा पोम्पिलियस ने ५१ दिनों (२ मासों) को जोड़कर वर्षमान ३५५ दिन का बनाया तथा जैनस देवता के नाम पर जनवरी तथा फरवरी जोड़कर वर्षारम्भ जनवरी से आरम्भ किया। आवश्यकतानुसार वर्षमान में कुछ वर्षों के अन्तराल पर २२-२३ दिनों को जोड़कर शुद्ध किया जाता था। ईसा पूर्व ४४ ई. में जूलियस सीजर ने मिस्री ज्योतिषी सोसिजेन्स के सुझाव पर वर्षमान को ३६५.२५ दिनों का घोषित किया। ४४ ईसा पूर्व जूलियस सीजर के सम्मान में मार्च से पाँचवें मास क्विन्टिलिस को जुलाई कर दिया गया। पुन: ८ ईसापूर्व में जुलियस सीजर के उत्तराधिकारी आगस्टस सीजर के नाम पर सेक्स्टिलिस मास का नाम अगस्त कर दिया गया। दोनों राजाओं के सम्मान में जुलाई और अगस्त मासों की दिन संख्या ३१-३१ दिन कर दी गई तथा दिन का सन्तुलन बनाये रखने के लिए फरवरी से २ दिन घटा दिये गये।

इसी प्रकार ग्रीगोरियन पंचांग में परिष्कार किये गये। सन् १५८२ ई0 में पोप ग्रिगोरी त्रयोदश ने आदेश पारित किया कि ५ अक्टूबर शुक्रवार को १५ अक्टूबर शुक्रवार माना जाय। लगभग २०० वर्ष बाद पुन: ११ दिनों की त्रुटि पाई गई। अत: उसे दूर करने के लिए सन् १७५२ ई0 में ३ सितम्बर को १४ सितम्बर घोषित किया गया। भविष्य में भी संशोधन सम्भव है। अत: भारतीय कालगणना पद्धति ही पूर्णशुद्ध एवं वैज्ञानिक है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. वृहस्पति के मध्यम मान से राशि के भोगकाल को कहते हैं -
   क. एक संवत्सर ख. एक नाक्षत्र मान ग. एक लुप्त वत्सर घ. गौरव मान
2. सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने से होता है –
   क. उत्तरायण का आरम्भ
   ख. दक्षिणायन का आरम्भ
   ग. ऋतु परिवर्तन
   घ. सौम्य गोलारम्भ
3. निम्न में वेदांग ज्योतिष के प्रणेता है –
   क. भास्कर ख. लगध ग. कमलाकर घ. गणेश
4. श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में अपने को समासों में किस समास की संज्ञा दी है।
   क. बहुव्रीहि ख. द्वन्द्व ग. कर्मधारय घ. केवल
5. एक कल्प में कितने महायुग होते है –
   क. १००० महायुग ख.२००० महायुग ग. ३००० महायुग घ. कोई नहीं

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल अनन्त और अनादि होने के कारण अनिर्वचनीय है। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध कर देना अत्यन्त सरल नहीं है। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है। ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।'' कहीं-कहीं काल को अन्तकृत या संहर्त्ता ही कहा गया है यथा – कालो जगद्भक्षक:। कुछ सूक्तियाँ भी इसी को व्यक्त करती हैं- ''कालो न यातो वयमेव याता।'' भगवान भास्कर ने भी सूर्यसिद्धान्त में काल का निरूपण करते हुए कहा है –लोकानामन्तकृत काल: कालोऽनय: कलनात्मक:। स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान् मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।यहाँ भी काल के दो भेद बताये गये हैं तथा एक भेद को अन्तकृत लोक का नाश करने वाला तथा दूसरे भेद को कलनात्मक कहा गया है। कलनात्मक काल भी मूर्त्त और अमूर्त्त भेद से दो प्रकार का है। जो व्यवहार योग्य काल है उसे 'स्थूल' अथवा 'मूर्त्त' कहते हैं तथा जो व्यवहार योग्य नहीं हैं उसे 'सूक्ष्म' और अमूर्त्त कहते हैं। यदि इन दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही कलनात्मक

काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। इस शाश्वत सिद्धान्त के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे अन्तकृत् काल कहा जाता है। इसी प्रकार जो इकाई सृष्टयारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये हैं। गणितीय दृष्टि से सृष्टि एक प्रक्रिया हैं सृष्टयन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम कल्प कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि को समेट कर विश्राम करते हैं। कल्प ब्रह्म का एक दिन होता है तथा एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि होती है। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ-साथ सृष्टयारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत ही रहता है। जैसा कि श्रुति कहती है- ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत।'' सृष्टि की रचना में ब्रह्मा को ४७४०० दिव्यवर्ष का समय लगता है।

1.6 बोध प्रश्नो का उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. अनिर्वचनीय
2. कलनात्मक
3. ४७४००
4. घञ्
5. दो कल्प
6. भूतानि
7. १ रेणु
8. १ घटी
9. ९६ वाँ भाग
10. कालशास्त्र

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. क
2. क
3. ख

4. ख
5. क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त – आचार्य कपिलेश्वर शास्त्री।
2. सिद्धान्तशिरोमणि- चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
3. सिद्धान्त शिरोमणि, वासनावार्तिक, नृसिंहदैवज्ञ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. प्राच्यविद्यानुशीलनम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।
5. श्रीमद्भगवद्गीता – श्रीरामभद्राचार्य विरचितम्।
6. विष्णु पुराण

1.8 पारिभाषिक शब्द

इस इकाई में ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ शब्दों का मुख्य रूप से प्रयोग किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार से है।

काल – कलनात्मक एवं अव्यक्त, अनादि, अनन्त, अनिवर्चनीय, अगोचर।

कलनात्मक काल – जिसकी गणना की जा सके।

अन्तकृत काल – सृष्टि का अन्त करने वाला।

नवविधकाल – ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध रूप से नवविधकाल मान का उल्लेख है। वे है- ब्राह्म, दिव्य, पितृ, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. काल किसे कहते है? स्पष्ट कीजिये।
2. अन्तकृत काल से क्या तात्पर्य है? लिखिये।
3. काल के महत्व का प्रतिपादन स्वशब्दों में कीजिये।
4. काल के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिये।
5. पुराणों में काल की महिमा पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 2 अमूर्त्त काल विवेचन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई – 102 के द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - अमूर्त्त काल विवेचन। इससे पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिषशास्त्रोक्त काल एवं उसके विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन कर लिया है। अब इस इकाई में आप अमूर्त्त काल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अमूर्त्त काल का अर्थ है – वह काल जिसका सामान्यतया व्यवहार में प्रयोग नहीं होता अर्थात् वह सूक्ष्म काल का खण्ड होता है।

आइए अब इस इकाई में हम अमूर्त्त काल (सूक्ष्म काल) के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- जान लेंगे कि अमूर्त्त काल किसे कहते है।
- अमूर्त्त काल के स्वरूप को समझ लेंगे।
- अमूर्त्त काल के अवयवों की जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- अमूर्त्त काल को व्यक्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

2.3 अमूर्त्त काल परिचय

जैसा कि आप जानते हैं इस सृष्टि के समस्त चराचर प्राणि कालाभिभूत है। काल से पृथक् होकर इस सृष्टि की कल्पना असम्भव है। इसलिए यह सृष्टि काल से अभिन्न है। काल सम्पूर्ण सृष्टि का मूल है। काल के बिना इस संसार का अस्तित्व ही नहीं है । इस संसार में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो काल की सीमा से परे हो। अब प्रश्न उठता है कि काल शब्द का क्या अर्थ है? व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से यदि देखे तो 'कल संख्यायने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर काल शब्द की व्युत्पत्ति निष्पन्न होती है। अन्य रूप में '**कलयति लोकान इति कालः**' इस व्युत्पत्ति से जो कलन (भक्षण) करता है अथवा जिसकी लोक में गणना होती है, अथवा की जा सकती है, वह 'काल' है। इन दो अर्थों के कारण काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. लोक का संहार करने वाला , 2. गणनात्मक (कलनात्मक) अर्थात् गणना करने वाला।

संहारक काल लोक अर्थात् जगत् का विनाश करने वाला होता है, जिसे हम 'महाकाल' या 'अन्तकृत काल' के रूप में भी जानते हैं। सृष्टि के अन्त में इसी काल के प्रभाव से सम्पूर्ण सृष्टि का

नाश हो जाता है और वह जलप्लव में परिणत हो जाती है। दूसरा काल कलनात्मक या गणनात्मक है। अर्थात् वह काल जिसकी कलना या गणना की जा सके। यह गणनीय काल भी मुख्यतया 'सूक्ष्म' तथा 'स्थूल' इन दो भेदों में विभक्त है।

ज्योतिषशास्त्र को जानने वाले यह जानते है कि इस शास्त्र में मुख्यतया 'नवकालमान' की प्रसिद्धि है, जिनका नाम – ब्राह्म, दिव्य, पैत्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, नाक्षत्र एवं चान्द्र मान हैं, किन्तु प्रस्तुत इकाई 'अमूर्त्त काल' से सम्बन्धित है, अत: हम यहाँ प्रमुख रूप से अमूर्त्त काल की चर्चा करेंगे।

भगवान की उपदेशात्मक उक्ति है -

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना,
कान्ते सपक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्।

श्लोकान्वय-

कालः सर्वाणि एव भूतानि आत्मना सह पचति। कान्ते सपक्वः तनैव सह लयं व्रजेत्।

शब्दार्थ-

कालः सर्वाणि एव भूतानि = सभी प्रणियों को, आत्मना सह = अपने साथ, पचति = पकाता है। कान्ते = ब्रह्मा का अन्त होने पर (प्रलय होने पर), सपक्वः तेनैव सह = स्वयं पका हुआ, उन पके हुए प्राणियों के साथ , अव्यक्ते = परब्रह्म में, लयं व्रजेत् = लीन हो जाए विलीन हो जाता है।

हिन्दी व्याख्या-

काल सभी भूतों अर्थात् प्राणियों को (एवं उनके साथ-साथ सभी वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों को भी) अपने साथ पकाता है। पकाना अर्थात् परिपक्व बनाना, अन्तिम अवस्था तक ले जाना। काल न केवल सभी जड़-चेतन पदार्थों को पकाता है अपितु स्वयं भी पकता है। अर्थात् काल की भी अन्तिम अवस्था आती है।

यहाँ पुनः आप के मन में प्रश्न उठता है कि काल की अन्तिम अवस्था कब आती है? इसका उत्तर है- 'कान्ते' अर्थात् कस्य अन्ते। कः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मणः अन्ते अवसानकाले अर्थात् ब्रह्मा का अन्तिम समय आने पर। प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा हैं किन्तु ब्रह्मा का भी अन्त होता है। तत्पश्चात् दूसरे ब्रह्मा के द्वारा पुनः सृष्टि होती है। ब्रह्मा की परमायु आयु 100 वर्ष मानी गई है एवं ब्रह्मा का 1 दिन 2 कल्प के तुल्य होता है । 1 कल्प में 1000 महायुग होते हैं। इन महायुग-कल्प-ब्राह्म दिन की चर्चा तत्तत्स्थलों पर की जाएगी। प्रसंगवशात् केवल इन विषयों का नामोल्लेख यहाँ किया गया है।

अब जैसा कि आप ने ऊपर पढ़ा कि ब्रह्मा का भी अन्त काल होता है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलय के समय काल पकी हुई सारी सृष्टि के साथ स्वयं भी पचता हुआ उस अव्यक्त अर्थात् परब्रह्म परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है। महाभारत के आदिपर्व में काल की सम्पूर्ण व्याख्या बड़े ही सुन्दर ढंग से की गई है -

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः।।
कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजाः विसृजते पुनः।।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।।

अन्वय-

कालः भूतानि सृजति कालः प्रजाः संहरते। पुनः प्रजाः संहरन्तं कालं कालः शमयते। सर्वलोके कालो हि शुभाशुभान् भावान् कुरुते। कालः पुनः सर्वाः प्रजाः विसृजते (ततः) संक्षिपते। सुप्तेषु कालः जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।

सरलार्थ-

कालः भूतानि = सभी पदार्थों को, सृजति = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही, प्रजाः संहरते = सभी प्राणियों (समस्त पदार्थों का) संहार करता है अर्थात् विनाश करता है। प्रजाः संहरन्तं कालं = प्राणियों का संहार करने वाले काल को पुनः कालः शमयते = फिर काल ही शान्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सर्वलोके = सम्पूर्ण जगत् में, कालो हि = निश्चयपूर्वक काल ही, शुभाशुभान् भावान = शुभाशुभ भावों को अर्थात् लाभ-हानि से उत्पन्न सुख-दुःख रूपी भावों को, कुरुते = उत्पन्न करता है। कालः = काल ही पुनः = फिर से (नष्ट करने के बाद पुनः), सर्वाः प्रजाः = सारी सृष्टि को, विसृजते संक्षिपते = उत्पन्न करता है तत्पश्चात् पुनः संक्षिप्त करता है अर्थात् समाप्त करता है। सुप्तेषु = शयनावस्था में जब सभी प्राणी सो रहे होते हैं अर्थात् विरामावस्था में स्थिर रहते हैं, तब भी कालः = यह समय जागर्ति = जागता रहता है अर्थात् चलायमान रहता है। कालो हि दुरतिक्रमः = काल का अतिक्रम दुष्कर है अर्थात् काल अजेय है।

सूर्य सिद्धान्त भी काल के इस विभाजन का समर्थन करता है। जैसा कि सूर्य के अंशावतार का कथन है -

''लोकानाम् अन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्न मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते।।

शब्दार्थ: - लोकानाम्= लोक का अर्थात् जगत् का, अन्तकृत् = अन्त करने वाला संहारक, कालः = काल है, कालोऽन्यः = दूसरा काल अर्थात् काल का दूसरा स्वरूप, कलनात्मकः= कलात्मक गणना करने योग्य है। अर्थात् मुख्यतया काल के दो स्वरूपों से हम परिचित हैं जिनमें पहला संहारक तथा दूसरा गणनात्मक है।

विशेष ध्यातव्य – पहले प्रकार के काल की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि न तो यह ज्ञात है कि वह कब से आरम्भ हुआ और न यही ज्ञात है कि उसका अन्त कब होगा। यह अखण्ड और व्यापक है, परन्तु इसके बीच में ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोक का अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते है, सृष्टि रचते है, तथा लय करते हैं, परन्तु काल की सत्ता बनी रहती है। इसलिए इसको लोकों का अन्त कर देने वाला, नाश कर देनेवाला कहते हैं। इसीलिए मृत्यु को भी **काल** कहते हैं। काल का जो थोड़ा सा मध्य भाग ज्ञात किया जा सकता है, उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है, वहीं अमूर्त्त कहलाता है। नापने में जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त काल की परिभाषा भी नई होती जायेगी।

उपर्युक्त महाभारत के आदिपर्व तथा सूर्यसिद्धान्त के इन श्लोकों में काल के सम्पूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। इन श्लोकों में भी काल के उन्हीं दो स्वरूपों की ही चर्चा की गयी है जिन्हें शास्त्रों में अखण्ड व सखण्ड इन दो रूपों में उद्धृत किया गया है। काल का अखण्ड स्वरूप वह है जो भूत, भविष्य, वर्तमान काल खण्ड से भिन्न है। नित्य विद्यमान है एवं सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश एवं उत्पत्ति का परम हेतु है। वही परब्रह्म है। वही महाकाल है। सखण्ड काल वह है जो दो व्यापारों क्रियाओं के बीच विद्यमान है, एवं त्रुट्यादि रूप में गणनीय है। यह सखण्ड काल अनित्य है एवं सृष्टि के विलीन होने के साथ-साथ इस (सखण्ड) काल का भी नित्य, लोकोत्तर अखण्ड काल में विलय हो जाता है। इसीलिए महाभारत में कहा है **'संहरतं कालं शमयते कालः'** अर्थात् संहार (समाप्ति) करने वाले इस सखण्ड काल का शमन (विराम अथवा विलय) अखण्ड काल में होता है।

अन्त में काल को दुरतिक्रम अर्थात् अजेय बताया गया है। वस्तुतः कोई भी प्राणी, वनस्पति या जड़ पदार्थ ऐसा नहीं है जो निश्चित अवधि के बाद नष्ट न हो जाए। काल की सीमा अतिक्रम करना असम्भव है। रावण जैसे असुर पर भी काल ने अन्ततः विजय प्राप्त की। भगवान् ने गीता में स्वयं कहा है- **जातस्य ध्रुवोर्मृत्युः** इति। अर्थात् उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणि या पदार्थ अवश्य ही मृत्यु अथवा विनाश को प्राप्त होते हैं। यह शाश्वत सत्य है।

सखण्ड काल जो कलनात्मक है उसके शुभ अशुभ प्रकृति का भी उल्लेख उपर्युक्त श्लोको में किया गया है। वस्तुतः काल का शुभ अशुभ होना व्यक्ति सापेक्ष है। एक ही कालखण्ड किसी

व्यक्ति के लिए शुभ तथा दूसरे व्यक्ति के अशुभ हो सकता है। उदाहरण के लिए - नौकरी के लिए चुने गए अभ्यर्थी का काल शुभ है एवं जिस अभ्यर्थी का चयन नहीं है उसका समय प्रतिकूल होने के कारण उस व्यक्ति के लिए वही काल अशुभ है। इस प्रकार समझा जा सकता है।

2.4 अमूर्त्त काल विवेचन -

न मूर्त: अमूर्त्त:। यहाँ 'नञ् समास' है। जिसका कोई मूर्त्त रूप न हो, उसे 'अमूर्त्त' कहते है। सूक्ष्म काल वह खण्ड है जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण 'अमूर्त' कहलाता है। इसका प्रयोग सामान्य व्यवहार में नहीं होता है। ''कलयति गणयति अनेन इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिस काल की गणना की जा सके अथवा जिसके द्वारा गणना की जा सके उसे कलनात्मक काल कहते हैं। प्रयोग करने के उद्देश्य से यह काल छोटे-बड़े कई विभागों या खण्डों में विभक्त होने के कारण सखण्ड कहलाता है। इस गणनात्मक काल के भी मुख्यतया दो विभाग हैं-1. सूक्ष्म, 2. स्थूल। प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने इस सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई 'त्रुटि' को माना था। आधुनिक वैज्ञानिक योक्टोसेकेण्ड, जेप्टोसेकेण्ड, एट्टोसेकेण्ड, नैनोसेकेण्ड इत्यादि को सूक्ष्म काल की इकाइयाँ मानते हैं। स्थूल काल वह खण्ड है जो स्थूल होने के कारण 'मूर्त' कहलाता है। दैनिक जीवन में इसका प्रयोग होने के कारण इसे व्यावहारिक काल भी कहते है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने स्थूल काल की पहली इकाई 'प्राण' को स्वीकार किया है । वर्तमान समय में माइक्रोसेकेण्ड, सेकेण्ड को स्थूल काल की पहली इकाई माना जाता है।

''प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्यादो अमूर्त्त संज्ञकः।।'' इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है। तथा त्रुटि आदि काल को अमूर्त्त संज्ञक कहा गया है।

सूक्ष्म काल 'अमूर्त्त' कहलाता है। सूक्ष्मता के कारण इसकी सीमा का बोध सामान्य जन को नहीं होता है अतः इसे अमूर्त्त कहते हैं। इस काल का व्यवहार में प्रयोग भी सम्भव नहीं है अतः इसे अव्यवहारिक भी कहते हैं। यथा- 'त्रुटि' 'माइक्रोसेकेण्ड' इत्यादि। ऑख की पलकों को गिरने में जितना समय लगता है उसे **'निमेष'** कहते है। इस निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा (निमेष/3000) **'त्रुटि'** कहलाता है। स्पष्ट है कि इतने सूक्ष्म काल की मर्यादा का बोध सामान्यतया असम्भव है अतः इसे अमूर्तकाल कहते है। सूर्यसिद्धान्त में भी 'त्रुटि' को सूक्ष्म काल की प्रथम इकाई बताया गया है।

सिद्धान्तशिरोमणि में आचार्य भास्कराचार्य जी सिद्धान्त ज्योतिष की परिभाषा बतलाते हुए 'त्रुटि' काल की बात करते हैं –

त्रुट्यादि प्रलयान्तकालकलना मान प्रभेदा: क्रमात् ....0।

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में भी –

अदृश्यरूपा: कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिता:।

अर्थात् कालस्य अदृश्यरूपा: जायन्ते, ते मूर्त्तयो: (मूर्त्तामूर्त्त) भगणाश्रिता:। काल अदृश्य रूप में सृष्टि का संचालन करती है, जो मूर्त्तामूर्त्त अर्थात् मूर्त्त और अमूर्त्त रूप में भगणाश्रित हैं। इसी अदृश्य रूप को 'अमूर्त्त काल' के नाम से भी समझ सकते हैं।

बोध प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

1. सृष्टि के समस्त चराचर प्राणी .... है?
2. काल शब्द में .... प्रत्यय है?
3. 1 कल्प में .... महायुग होते हैं?
4. मृत्यु को भी .... कहते है?
5. काल: सृजति .... काल: संहरते प्रजा:?
6. जातस्य .... ?
7. जिस कालखण्ड का मूर्त्त रूप न हो, उसे .... काल कहते है ?
8. त्रुटि काल .... संज्ञक है?
9. आँखों की पलकों को गिरने में जितना समय लगता है, उसे .... कहते है।

2.4.1 प्रसिद्ध नवविधकालमान का सूक्ष्म परिचय -

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षमानानि वै नव ।।

ब्राह्म मानम् – ब्रह्म सम्बन्धिमानं ब्रह्म मानं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कल्पद्वयं ब्रह्मा जी की एक अहोरात्र का मान होता है। इसी अहोरात्र के मान से ब्रह्मा की परमायु 100 वर्ष की है। एक कल्प में 1000 महायुग होता है।

दिव्य मानम् - देवताओं से सम्बन्धित दिव्य मान होता है। मानवों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर होता है।

पैत्र मानम् – पितरों से सम्बन्धित मान को पितृ मान कहते है। मानवों के एक पक्ष के बराबर इनका एक दिन होता है पितरों का निवास स्थान चन्द्रमा के उर्ध्व भाग में है। ऐसा कल्पना प्राचीन ज्योतिर्विदों के द्वारा किया गया है।

प्रजापति मान - प्रजापति सम्बन्धित मान प्रजापति मान होता है।

गुरू मान – वृहस्पति के मध्यम मान से यह मान निकाला जाता है।

सौर मान – सूर्य सम्बन्धित मान को **सौरमान** कहते है।

सावन मान – इनोद्वय द्वयान्तरं तदर्क सावनं दिनम्। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के अन्तर मान को सावन मान के नाम से जाना जाता है।

चान्द्र मान – चन्द्रमा सम्बन्धित मान को चान्द्रमान कहते है। चन्द्रमा के अनुसार इस मान की गणना की जाती है।

नाक्षत्र मान – एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक के उदय मान को नाक्षत्र मान कहते है।

2.5 सूक्ष्मकाल-

जैसा कि आपने पूर्व में पढ़ा कलनात्मक काल दो प्रकार का होता है। -

1. **सूक्ष्मकाल, 2. स्थूलकाल**। सूक्ष्मकाल वह कालखण्ड जो सूक्ष्म है, अर्थात् जिसके परिमाण का ज्ञान सामान्य विधि से नहीं किया जा सके, वही सूक्ष्मकाल या अमूर्तकाल है।

भारतीय गणकों ने सूक्ष्मकाल को भी परिभाषित किया था। उन्होंने सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई 'त्रुटि' को माना। पलकों के निमीलन या संयोग में जितना समय लगता है उसका हज़ारवा हिस्सा त्रुटि कहलाता है। त्रुटि से बड़ी सूक्ष्मकाल की इकाई 'रेणु' कहलाती है। रेणु का मान त्रुटि से 60 गुना ज्यादा है। रेणु से 60 गुना बड़ा कालखण्ड 'लव' कहलाता है। लव से 60 गुना बड़ा 'लीक्षक' तथा 60 लीक्षकों का 1 प्राण होता है। यह प्राण स्थूल काल की पहली इकाई है। आधुनिक काल में प्रचलित सेकेण्ड का 4 गुना एक प्राण का मान है। इस सेकेण्ड का 3240000 बत्तीस लाख चालिस हज़ारवाँ हिस्सा 1 त्रुटि है। आइए सूक्ष्मकाल की इन इकाई को हम क्रमशः विस्तार से जानें।

2.5.1 त्रुटि-

जैसा कि आप ने पूर्व में पढ़ा त्रुटि सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई है। त्रुटि की 2 परिभाषाएँ मुख्यतया प्रचलित हैं। जिनमें प्रथम मत नारद का तथा द्वितीय मत भास्कर का है। यहाँ दोनों मत एकैकशः प्रस्तुत किए जा रहे है।

नारद मत में त्रुटि -

प्रथम परिभाषा नारद के द्वारा दी गई है-

''सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिः इत्यभिधीयते।''।

अन्वय-

सूच्या पद्मपत्रे भिन्ने त्रुटिः इति अभिधीयते।

शब्दार्थ - सूच्या = सूई के द्वारा, पद्मपत्रे भिन्ने = कमल के पत्र का भेदन करने पर, त्रुटिः इति अभिधीयते = 'त्रुटि ऐसा कहा जाता है।

व्याख्या- सूई के द्वारा कमल पुष्प के पत्र को छेदने में जितना समय लगता है उस समय की त्रुटि संज्ञा है। कहीं-कहीं पर शतपत्र भेदन काल को 'त्रुटि' कहा गया है। अर्थात् अव्यवहित (व्यवधान रहित) सौ कमल दल को भेदने में जितना समय लगा उसे त्रुटि कहते है।

परन्तु गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) के आकर ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के टीकाकार श्री कपिलेश्वर शास्त्री ने अपने 'तत्वामृत' - नामक टीका में नारद के मत को ही त्रुटि की परिभाषा के रूप में उद्धृत किया है। अतः नारद मत को ही यहाँ आधार मानते हुए सूई के द्वारा 1 कमल दल के भेदन काल को त्रुटि के रूप में स्वीकार किया गया है।

भास्कराचार्य मत में त्रुटि-

भास्कर द्वितीय का जन्म 11 शताब्दी के अन्त में हुआ। भास्कर द्वितीय महान् गणितज्ञ व ज्योतिषी थे। भारतीय ज्योतिष के इतिहास में इन्हें 'भास्कराचार्य' के नाम से जाना जाता है। भास्कराचार्य ने युवावस्था में ही 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। गणित ज्योतिष (सिद्धान्त ज्योतिष) का पथप्रदर्शक ग्रन्थ होने के कारण इस ग्रन्थ की आज भी प्रतिष्ठा एवं उपयोगिता है।

सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के 4 भाग क्रमशः- 1. **लीलावती, 2. बीजगणित, 3. गणिताध्याय, 4. गोलाध्याय** हैं।

गणिताध्याय में उन्होंने काल की गणना से लेकर स्पष्टग्रह के साधन, ग्रहण, नक्षत्रादि से युति, अस्त इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है।

लीलावती अंकगणित एवं बीजगणित अव्यक्त गणित का ग्रन्थ है। गोलाध्याय खगोल एवं ग्रहों की स्थिति का प्रतिपादन करता है।

गणिताध्याय में काल के निरूपण के प्रसंग में भास्कराचार्य ने 'त्रुटि' की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी है-

''योऽक्ष्णोः निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता त्रुटिः''।

(सिद्धान्तशिरोमणि,गणिता.मध्यमाधिकार)

अन्वय-

अक्ष्णोः यः निमेषस्य खरामभागः स तत्परः तत् शतभागः त्रुटिः उक्ता।

सरलार्थ-

अक्ष्णोः दोनों पलकों का (जो संयोग काल वह) 'निमेष' कहलाता है। निमेषस्य = उस निमेष का खरामभागः = खराम अर्थात् 30 भाग अर्थात् तीसवाँ हिस्सा, सः = जो (जितना) है वह तत्परः = तत्पर कहलाता है। तच्छतभागः = उसका सौवाँ हिस्सा, त्रुटिः = त्रुटि कहलाता है। इस प्रकार

निमेष = पलकों का संयोग काल

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर/100 = त्रुटि

इसलिए त्रुटि = तत्पर/100 = निमेष/3000

त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीस लाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है।

त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड

इसे आधुनिक गणितीय भाषा में प्रकट करें तो इसे 3.24×10^{-7} सेकेण्ड लिखेंगे जो कि वर्तमान में प्रचलित माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} से.) से छोटा तथा नैनोसेकेण्ड (10^{-9}से.) से 100 गुना बड़ा है।

अतः त्रुटि = 1/3240000 सेकेण्ड = 3.24 ग 10^{-7} सेकेण्ड।

2.5.2 रेणु-

रेणु त्रुटि से परिमाण में 60 गुना बड़ा कालखण्ड है। इसकी परिभाषा नारद के अनुसार इस प्रकार है-

.... त्रुटिरित्यभिधीयते।

तत्षष्ट्या रेणुरित्युक्तो..........इति॥

अन्वय -

तत्षष्ट्या रेणुः इति उक्तः।

सरलार्थ -

तत्षष्ट्या- उसका अर्थात् त्रुटि का 60 गुना रेणुः इति उक्तः- रेणु कहा गया है।

त्रुटि × 60

वर्तमान में प्रचलित कालखण्ड के अनुसार रेणु का मान कितना होगा? आपके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

जैसा कि पूर्व में आपने पढ़ा त्रुटि = 1/3240000 त्र 3ग10.7 सेकेण्ड

1 रेणु = 60 त्रुटि

= 60 × 1/3240000 सेकेण्ड

1 रेणु = 1/54000 सेकेण्ड = 5.4×10^{-5} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड का चौवनवाँ हिस्सा रेणु कहलाता है। इसे आधुनिक गणितीय भाषा में 5.4 ×10.5 सेकेण्ड भी कह
सकते हैं। इस प्रकार रेणु माइक्रोसेकेण्ड (10-6) से थोड़ा बड़ा एवं मिलीसेकेण्ड (10-3) से लगभग हजार गुना
छोटा है।

2.5.3 तत्पर-

तत्पर का उल्लेख 1.5.1 में किया गया है, जिसे यहाँ आप विस्तार पूर्वक पढ़ेगें।

तत्पर की परिभाषा भास्कराचार्य ने इस प्रकार से दी है-

''**निमेषस्य खरामभागः स तत्परः**'' इति।।

निमेष का खराम भाग तत्पर कहलाता है। खराम इस शब्द में दो पद 'ख' एवं 'राम' है। 'ख' का अर्थ आकाश या शून्य (0) है। 'राम' का अर्थ 3 है क्योंकि इतिहास में तीन रामों - राम, बलराम और परशुराम का ही उल्लेख मिलता है। यहाँ ख अर्थात् 0 इकाई एवं राम अर्थात् 3 दहाई के स्थान पर रखने से 30 संख्या आती है। अतः खराम से 30 संख्या का बोध होता है। अतः निमेष का खराम भाग अर्थात् तीसवॉं हिस्सा तत्पर कहलाता है।

निमेष/30 = तत्पर

तत्पर का मान आधुनिक गणित में कितना है? इसके ज्ञान के लिए हमें सर्वप्रथम निमेष का मान जानना आवश्यक है। अतः आइए इस का मान जानते हैं।

2.5.4 निमेष-

निमेष की चर्चा पहले की जा चुकी है। पूर्व में आपने पढ़ा कि पक्षपात अर्थात पलकों के संयोग को निमेष कहते हैं। निमेष का तीन हज़ारवाँ हिस्सा त्रुटि है। इस आधार पर निमेष का आधुनिक गणितीय मान जाना जा सकता है।

त्रुटि = निमेष/3000

निमेष = 3000 त्रुटि = 3000×1/3240000

निमेष = 1/1080 सेकेण्ड

=.8 ग 10.¯3 सेकेण्ड

इस प्रकार निमेष मिलिसेकेण्ड से कुछ छोटा तथा माइक्रोसेकेण्ड से 1000 गुना बड़ा होता है।

पूर्व में आपने जाना कि तत्पर निमेष का 30वाँ हिस्सा कहलाता है, अतः

तत्पर = 1/1080 × 30 त्र 1/32400 सेकेण्ड

आधुनिक गणितीय परम्परा में तत्पर को 3.24×10^{-5} सेकेण्ड इस रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार तत्पर माइक्रोसेकेण्ड से थोड़ा ही छोटा होता है।

2.5.5 लव-

आपने त्रुटि व रेणु के बारे में पहले पढ़ा। जिस प्रकार त्रुटि का 60 गुना रेणु होता है। उसी प्रकार रेणु का 60 गुना 'लव' होता है।

नारद के मतानुसार -

''रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः'' इति।

रेणुषष्ट्या = षष्टि अर्थात् साठ (60), 60 रेणु के द्वारा, लवः स्मृतः = लव कहा गया है (समझना चाहिए)।

= 1 लव = 60 रेणु

= 60 × 1/54000 सेकेण्ड

= 1/900 सेकेण्ड

इस प्रकार लव सेकेण्ड का 900वाँ हिस्सा है। इसे 9×10^{-2} सेकेण्ड भी कह सकते है। इस प्रकार लव मिलीसेकेण्ड से थोड़ा ही बड़ा और माइक्रोसेकेण्ड से दस हज़ार गुना छोटा कालमान है।

2.5.6 लीक्षक-

लीक्षक का मान लव से भी ज्यादा होता है। लीक्षक लव से 60 गुना बड़ा होता है। नारद ने लीक्षक की परिभाषा इस प्रकार की है-

''तत्षष्ट्या लीक्षकं प्रोक्तम्'' इति।।

तत् - जो पूर्व में कथित 'लव' नामक कालखण्ड है उसका, षष्ट्या - 60 गुना, लीक्षकं प्रोक्तम् –

'लीक्षक' कहा गया है।

अतः 1 लीक्षक = 60 लव

= 60 ग 1/900 सेकेण्ड

= 1/54 सेकेण्ड

इस प्रकार सेकेण्ड का 54वाँ हिस्सा **लीक्षक** कहलाता है। अर्थात् यदि सेकेण्ड के 54 बराबर भाग किए जाएं तो एक भाग 1 लीक्षक के तुल्य होगा। इस प्रकार लीक्षक का मान आधे सेकेण्ड से भी कम होता है। यही लीक्षक जब 60 हो जाते हैं तो स्थूल काल की प्रथम इकाई प्राण के बराबर होते हैं। अतः 1 प्राण = 4 सेकेण्ड ।

इस प्रकार ये त्रुट्यादि काल सूक्ष्मकाल के रूप में प्रचलित थे। जिनका व्यवहार में प्रयोग नहीं होता था। सूक्ष्मकाल की आदि इकाई त्रुटि आज के माइक्रोसेकेण्ड से भी छोटी इकाई है। इसी प्रकार सूक्ष्मकाल की सबसे बड़ी इकाई लीक्षक है जो आधे सेकेण्ड से भी छोटी है।

नारद पुराण में वर्णित सूक्ष्मकाल की ये परिभाषाएँ तत्कालीन भारतीय मनीषियों गणितज्ञों के सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देती है।

2.6 आधुनिक सूक्ष्मकाल -

वर्तमान समय में प्रयुक्त सूक्ष्मकाल निम्नलिखित हैं-

1. योक्टोसेकेण्ड = 10^{-24} सेकेण्ड

वर्तमान गणित में सेकेण्ड के दसवें हिस्से को प्रदर्शित करने के लिए 10^{-1} सेकेण्ड इस पद्धति का प्रयोग करते है। सेकेण्ड के सौंवे हिस्से के लिए 10^{-2} ,हज़ारवाँ हिस्सा हो तो उसे 10^{-3} दसहज़ारवाँ 10^{-4} लाखवाँ 10^{-5} दसलाखवाँ 10^{-6} इस क्रम से प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार आप कल्पना कीजिए की जिस कालखण्ड का मान, 10.24 सेकेण्ड है वो सेकेण्ड का कितना छोटा हिस्सा होगा।

2. ज़िफ्फी = 3×10^{-24}

वस्तुतः यह भौतिकशास्त्र में प्रचलित कालखण्ड है। निर्वात में स्थित न्यूक्लियन में प्रवेश करने के लिए प्रकाश को जितना काल लगता है उसे ही 'ज़िफ्फी' कहते है। गणित के द्वारा इस कालखण्ड का आकलन किया गया है, किन्तु इतने छोटे कालखण्ड को अभी तक मापा नहीं जा सकता है।

3. एट्टोसेकेण्ड = 10^{-18} सेकेण्ड

वर्तमान समय में यह कालखण्ड सबसे छोटा है जिसको मापने का यन्त्र वैज्ञानिक प्रयोग में लाते

4. फेम्टोसेकेण्ड = 10^{-15} सेकेण्ड

5. पीकोसेकेण्ड = 10^{-12} सेकेण्ड

अर्थात् सेकेण्ड के खरबवें हिस्से को पीकोसेकेण्ड कहते है।

6. नैनोसेकेण्ड =10^{-9}

अर्थात् सेकेण्ड के करोड़वें हिस्से को नैनोसेकेण्ड कहते है। बल्ब इत्यादि कृत्रिम प्रकाश के कणों को विद्युत प्रवाह के उपरान्त उद्दीप्त होने में एक नैनोसेकेण्ड का समय लगता है।

7. माइक्रोसेकेण्ड = 10^{-6} सेकेण्ड

सेकेण्ड के लाखवें हिस्से को माइक्रोसेकेण्ड बोलते हैं।

8. मिलिसेकेण्ड = 10^{-3} = 1/1000 सेकेण्ड

सेकेण्ड के हज़ारवें हिस्से को मिलिसेकेण्ड कहते है।

9. सेण्टीसेकेण्ड = 10^{-2} सेकेण्ड = 1/100 सेकेण्ड

सेकेण्ड के सौवें हिस्से को सेण्टीसेकेण्ड कहते है।

10. डेसीसेकेण्ड =10^{-1} सेकेण्ड = 1/10 सेकेण्ड

सेकेण्ड के दसवें हिस्से को डेसीसेकेण्ड कहते है।

बोध प्रश्न – 2

1. निम्नलिखित में ब्रह्मा जी की आयु है ?
   क. १ कल्प ख. २ कल्प ग. ३ कल्प घ. ४ कल्प
2. मानवीय एक पक्ष के बराबर पितरों का होता है ?
   क. १ दिन ख. २ दिन ग. ३ दिन घ. ४ दिन?
3. सूर्योदय द्वय का अन्तर होता है?
   क. २ सावन दिन ख. १ चान्द्र दिन ग. १ सावन दिन घ. कोई नहीं
4. लव से कितना गुणा बड़ा लीक्षक होता है?
   क. १० गुणा ख. २० गुणा ग. ५० गुणा घ. ६० गुणा
5. राम का अर्थ होता है?
   क. २ ख.१ ग. ३ घ.४
6. रेणु × ६० = ?
   क. लव ख. लीक्षक ग. तत्पर घ. निमेष

2.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ''कलयति इति कालः'' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जो गणना करने के योग्य है उसे काल कहते हैं। काल मुख्यतया 2 प्रकार का होता है। 1. संहारक काल एवं 2. गणनात्मक काल। पहला काल नित्य है, अखण्ड है, गतिशील है एवं सृष्टि की उत्पत्ति व विनाश का कारक है। यह सृष्टि के साथ-साथ सखण्ड (गणनात्मक) काल का भी अन्त करता है। जिस कालखण्ड का मूर्त्त रूप न हो, उसे अमूर्त्त काल कहते है। सूर्यसिद्धान्त एवं महाभारत में वर्णित काल के स्वरूप की भी इस पाठ में चर्चा की गई है। काल का दूसरा स्वरूप कलनात्मक या गणनात्मक है। यह काल भी 1. सूक्ष्म, 2. स्थूल इन 2 भेदों में विभक्त है। सूक्ष्मकाल वह है जो परिमाण में अत्यन्त छोटा है। सामान्यतया उसके परिमाण का (सीमा का) बोध नहीं होता है अतः उसे अमूर्त काल भी कहते हैं। प्राचीन भारतीय ज्योतिष में सूक्ष्मकाल की सबसे छोटी इकाई त्रुटि मानी गई है। सूई के द्वारा कमल पत्र के भेदन में जितना समय लगता है वही त्रुटि कहलाता है। आधुनिक मान के अनुसार त्रुटि सेकेण्ड का बत्तीसलाख चालीस हज़ारवाँ हिस्सा है। त्रुटि से बड़ा रेणु उससे बड़ा तत्पर, तत्पर से बड़ा लव, लव से बड़ा निमेष, निमेष से बड़ा लीक्षक होता है। आधुनिक गणित में तो योक्टोसेकेण्ड (10^{-24} सेकेण्ड), एट्टोसेकेण्ड (10^{-18} सेकेण्ड), पीकोसेकेण्ड (10^{-12}), नैनोसेकेण्ड (10^{-9} सेकेण्ड) माइक्रोसेकेण्ड (10^{-6} सेकेण्ड), मिलीसेकेण्ड (10^{-3} सेकेण्ड) थे सारी सूक्ष्मकाल की इकाइयाँ हैं।

इस प्रकार इस पाठ के अध्ययन से आप काल की अवधारणा, उसके भेद एवं सूक्ष्मकाल को अच्छी तरह जान सकेंगे।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली-

1. भूतानि - प्राणियों को
2. पचति - पकाता है। (अन्तिम अवस्था तक पहुचाता है)।
3. सहात्मना - अपने साथ।
4. कन्ते - प्रलय आने पर।
5. सपक्वः - पके हुए के साथ।
6. लयं - लीनता को (लुप्तावस्था को, विनाश को)।
7. व्रजेत् - जाता है (प्राप्त होता है)।
8. सृजति - उत्पन्न करता है।

9.	संहरते	-	संहार (नष्ट) करता है।
10.	शमयते	-	शान्त करता है (समाप्त करता है)।
11.	अन्तकृत्	-	अन्त (संहार) करने वाला।
12.	कलनात्मकः	-	कलना (गणना) करने के योग्य।

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर-

बोध प्रश्न -1 का उत्तर

1. कालाभिभूत
2. घञ्
3. १०००
4. काल
5. भूतानि
6. ध्रुवोर्मृत्युः
7. अमूर्त्त
8. अमूर्त्त
9. निमेष

बोध प्रश्न -2 का उत्तर

1. ख
2. क
3. ग
4. घ
5. ग
6. क

2.10 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्त शिरोमणि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
3. प्राचीनभारतीयगणित, ब.ल.उपाध्याय।

4. सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव। विज्ञान भाष्य।

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सूर्यसिद्धान्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. नारद पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. सिद्धान्तशिरोमणि, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
4. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर। (महाभारत आ.प.अ.1,श्लोक 248-250)

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अमूर्त्त काल की विस्तृत व्याख्या कीजिये।
2. लोकानामन्तकृत कालः .... श्लोक की स्पष्ट व्याख्या कीजिये।
2. त्रुटि को परिभाषित करते हुए लव और रेणु से उसका सम्बन्ध बताईये।
3. तत्पर, निमेष एवं लीक्षक क्या है? स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 3 मूर्त्त काल विवेचन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई – 102 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – मूर्त्त काल विवेचन। इससे पूर्व की इकाई में आपने अमूर्त्त काल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में मूर्त्त काल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यतया मूर्त्त काल वह काल है, जिसका हम व्यवहार में प्रयोग करते है। मूर्त्त का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप में व्यावहारिक जीवन से है।

आइए अब हम सब इस इकाई में मूर्त्त काल का अध्ययन विस्तारपूर्वक करते हैं, जिससे आपको तत्सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- मूर्त्त काल किसे कहते है।
- मूर्त्त काल का स्वरूप कैसा होता है।
- मूर्त्त काल के अन्तर्गत काल के कौन-कौन सा अंग आता है।
- व्यवहार में मूर्त्त काल का क्या प्रयोजन है।

3.3 प्राणादि मूर्त्तकाल

काल अनादि और अनन्त है। काल सृष्टि की शाश्वत सत्ता है, जिसके सापेक्ष समस्त प्राणी लोक में व्याप्त होकर अपने-अपने जीवन का निर्वहन करते हैं। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है - ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।।'' काल के विभिन्न स्वरूपों में हम इस इकाई में 'मूर्त्त काल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। अत: आइए यहाँ सर्वप्रथम मूर्त्त काल को समझते है -

'मूर्त्त' से तात्पर्य चाक्षुष सन्निकर्ष प्रतीयमान से है। अर्थात् जो हमें दिखलाई देती है अथवा जिसका हम दैनिक जीवन में उपयोग करते है। भावार्थ यही है। मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है- साकार अर्थात् आकार सहित। जैसे कि हम व्यावहारिक जीवन में कहते है कि मुझे उसके मूर्त्त रूप (साकार) का दर्शन हो गया। शिल्पकार मूर्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करता है, जिसे हम अपने चक्षु से साक्षात् अवलोकन कर उसकी मीमांसा करते है अथवा करने लगते है। अमूर्त्त में हमें वह (काल) प्रत्यक्षतया दिखलाई नहीं पड़ता है।

प्राणादि मूर्त्तकाल व्यवहार योग्य है, इसलिये इसे 'मूर्त्त काल' कहते है। अमूर्त्त काल के बारे में आपने पूर्व की इकाई में जान लिया है। अत: यहाँ दोनों के सापेक्ष बाते करते हैं। मूर्त्त- अमूर्त्त काल के दोनों भेदों को गणितीय आधार पर देखें तो ये दोनों भेद दो अवस्थाओं के भेद है, न कि काल भेद। ये भेद काल की दो भिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। मूलत: दोनों ही काल कलनात्मक काल हैं। कोई भी सृष्टि किसी न किसी कालखण्ड में होती है। जिसकी सृष्टि होती है उसका लय भी होता है। यह ध्रुव सत्य है और इसी शाश्वतता के अनुसार उस सृष्टि के आरम्भ से उसके लय पर्यन्त की कालावधि भी काल की एक मापक इकाई होती है। इस इकाई का अवसान लय के साथ होता है इसलिए इसे 'अन्तकृत काल' कहा जाता है। इस प्रकार जो इकाई सृष्ट्यारम्भ काल से सृष्टयन्त काल के मध्यगत कालावधि की गणना करती हैं उन सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों को कलनात्मक काल कहा गया है। चूँकि इसी कालावधि में सूक्ष्म और स्थूल इकाईयों का उपयोग होता है। अत: इसी कलनात्मक काल के दो भेद मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञक कहे गये है।

सृष्टि एक शाश्वत प्रक्रिया है। सृष्ट्यन्त या प्रलय एक कालावधि या काल की एक इकाई है जिसे हम 'कल्प' कहते हैं। कल्पान्त में ब्रह्मा समस्त सृष्टि का विलय कर विश्राम करते हैं। ब्रह्मा जी के लिए कल्प का एक दिन होता तथा उसी एक कल्प तुल्य उनकी रात्रि भी होती है। इस प्रकार ब्रह्मा के एक अहोरात्र में दो कल्प होते हैं। पुन: ब्रह्मा का दिवसारम्भ होता है, उसी के साथ–साथ सृष्ट्यारम्भ भी होता है। सृष्टि क्रम पूर्ववत् ही रहता है। जैसा कि श्रुति (वेद) भी कहती है – ''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत॥'' सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि की रचना में ब्रह्मा जी को 47400 दिव्यवर्ष का समय लगता है। यथा सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में कहा गया है –

''ग्रहर्क्ष देवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतघ्ना वेधसो गता:''।

अत: सृष्ट्यन्त और कल्पान्त दोनों ही काल की एक महत्तम इकाई के पर्याय है। इसी प्रकार स्थूल काल की लघुतम इकाई प्राण तथा सूक्ष्म काल की लघु इकाई त्रुटि कही गई है। यहाँ प्राणादि मूर्त्त काल का विवेचन करते है।

3.4 मूर्त्त काल एवं आधुनिक पाश्चात्य काल में साम्यता

ज्योतिष शास्त्र में कथित मूर्त्तकाल (भारतीय काल) एवं पाश्चात्य काल (आधुनिक काल) में साम्यता –

मूर्त्तकाल (भारतीय काल:)	**पाश्चात्य काल**
1 प्राण (असु) = 10 दीर्घाक्षरोच्चारणकाल = 10 विपल =	4 सेकेण्ड

1 पल (विघटी) = 6 प्राण = 60 विपल	=	24 सेकेण्ड = 2/5 मिनट
ढाई पल	=	1 मिनट
1 विपल = 1 दीर्घाक्षरोच्चारण काल = प्राण / 10	=	2/5 सेकेण्ड
1 नाडी (घटी) = 60 पल = 1 दण्ड	=	24 मिनट
1 नाक्षत्र अहोरात्र = 60 नाडी = 60 दण्ड	=	24 घण्टा
ढाई नाडी = 5/2 दण्ड	=	1 घण्टा
1 मास = 30 अहोरात्र	=	1 मन्थ
1 वर्ष = 12 मास	=	1 इयर

इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में काल के मुख्यत: दो भेद किये गये है – 1. प्राणियों का अन्त करने वाला (महाकाल) और 2. गणनात्मक काल (जिस काल की गणना की जाती है)। गणनात्मक काल के भी दो भेद किये गये हैं – 1. स्थूल काल और 2. सूक्ष्म काल।

स्थूल काल को ही 'मूर्त्त काल' भी कहते है। जैसा कि सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में कहा गया है-

प्राणादि: कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञक:।
षडभि: प्राणैर्विनाडी स्यात् तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ।।
नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मास: सावनोऽर्कोदयैस्तथा ।।

(मध्यमाधिकार, श्लोक -11,12)

जिस काल की गणना पद्धति में सबसे छोटी इकाई प्राण हो वह प्राणादि काल है। प्राणादि काल को मूर्त्तकाल कहा गया है। प्राण का पर्याय असु है। जैसे –

1 प्राण = सामान्य (स्वस्थ) व्यक्ति के श्वॉस लेने एवं छोड़ने का समय = दस दीर्घ उच्चारण काल =10 विपल = 4 सेकेण्ड।

या 1 प्राण = 10 विपल = 4 सेकेण्ड

6 प्राण = 10 × 6 = 60 विपल = 24 सेकेण्ड = 1 पल

1 पल (6 प्राण) = 60 विपल = 24 सेकेण्ड

ढाई पल = 1 मिनट

1 विपल = 1 दीर्घ अक्षर का उच्चारण काल = प्राण / 10 = 4 / 10 से ट 2/5 सेकेण्ड

60 पल = 1 नाड़ी = 1 दण्ड या एक घटी = 24 मिनट

नाड़ी, दण्ड, घटी ये तीनों समान काल का ही बोध कराते हैं।

60 घटी = 60 नाड़ी = 60 दण्ड = 24 घण्टा = 1 नाक्षत्र अहोरात्र

ढाई घटी = 5 घटी = 1 घण्टा

30 अहोरात्र = 1 मास

12 मास = 1 वर्ष

उपरिलिखित काल मान स्थूल (मूर्त्त) कालगणना पद्धति के है।

<u>मूर्त्तामूर्त्त कथन की व्याख्या</u>

सः स्थूलसूक्ष्मत्वात् द्विधा मूर्त अमूर्तश्च उच्यते।

शब्दार्थ -

कलनात्मक (सखण्ड) काल, स्थूलसूक्ष्मत्वात् = स्थूल और सूक्ष्म रूप में होने के कारण, द्विधा = 2 प्रकार का होता है, जो क्रमशः, मूर्तश्चामूर्त उच्यते = 'मूर्त' और 'अमूर्त' इस नाम से कहा जाता है।

व्याख्या-

स्थूल को मूर्त कहा गया है। यद्यपि काल ऐसी वस्तु नहीं है जिसके स्वरूप का रेखांकन करना सम्भव हो। तथापि यह काल खण्ड ऐसा है जिसकी मर्यादा (सीमा) का बोध सभी सामान्य लोगों को होता है। अतः अमुक काल खण्ड की सीमा कहाँ तक है एवं कब इसका अतिक्रमण हो रहा है? इन दोनों ही प्रश्नों का बोध जिस काल खण्ड के निमित्त (लिए) हो सके वही काल मूर्त है, स्थूल है। यथा- सेकेण्ड, मिनट घण्टा इत्यादि इन काल खण्डों की सीमाएं ज्ञात होने के कारण ये स्थूल या मूर्त कहलाती है एवं व्यवहार में इनका प्रयोग किया जाता है। प्राचीन गणकों ने 'प्राण' को स्थूलकाल की प्रथम इकाई माना। जैसे कि सूर्यसिद्धान्त में वर्णित है- **''प्राणादिः कथितो मूर्तः''** इति।।

अर्थात् मूर्त कालों (स्थूल कालों) में आदि = प्रथम इकाई 'प्राण' को, कथितः = कहा गया है।

सिद्धान्तशिरोमणि में आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी काल विभाग की कल्पना करते हुये लिखा है कि –

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कालोत्ता।।
त्रिंशत्कलार्क्षी घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तै खगुणैर्दिनं च।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षडभिः पलं तैर्घटिका खषडभिः।।
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।

क्षेत्रे समाद्येन समा विभागा: स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ता। ।।

आचार्य जी ने इस श्लोक में कालविभाग को परिभाषित किया है। जिसका वर्णन इस प्रकार है - पलक झपकने में जितना समय लगता है उसको एक निमेष कहते हैं। एक निमेष का तीसवॉ भाग तत्पर होता है। तत्पर के शतांश को त्रुटि कहते हैं। 18 निमेष का एक काष्ठ होता है। 30 काष्ठ की एक कला होती है। 30 कला की एक घटी होती है। दो घटी का एक मूहूर्त्त होता है। 30 क्षण का एक दिन होता है।

इसके पश्चात् प्रकारान्तर से दिनादि को इस प्रकार परिभाषित किया है। दस गुरू दीर्घ अक्षरों के उच्चारण का समय एक असु (प्राण) होता है। जिस अक्षर के विसर्ग के अंत में अनुस्वर लग जावे उसे दीर्घ अक्षर कहते हैं अर्थात् एक मात्रा का 'लघु' तथा दो मात्रा का अक्षर 'गुरू' कहलाता है। प्राण या असु वह होता है, जितने समय में कोई व्यक्ति एक स्वास – प्रश्वास लेताहै। 6 असु का एक पल होता है और 60 पल की एक घटी तथा 60 घटी का एक दिन होता है। एक चक्र में 12 राशि, एक राशि में 30 अंश , एक अंश में 60 कला तथा एक कला में 60 विकला होता है।

बोध प्रश्न -

1. काल अनादि और .... है ?
2. मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है .... ?
3. कलनात्मक काल .... प्रकार का होता है ?
4. 1 भचक्र = ?
5. 1^0 = ?
6. ज्योतिष के अनुसार काल के मुख्यत: कितने भेद है ?
7. 1 कला = ?
8. 1 वर्ष में कितने मास होते है?
9. 1 राशि में कितने अंश होते है ?

ज्योतिषषास्त्र में प्रमुख रूप से काल के नवभेद बताये गये है। जो इस प्रकार हैं –

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमर्क्षं मानानि वै नव ।।

अर्थात् 1. ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव (गुरू सम्बन्धी) 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र तथा 9. नाक्षत्र ये नव मान कहे गये हैं। यद्यपि ये मान कालभेद के रूप में कहे गये हैं , किन्तु ये

सभी मान मात्र मापक हैं। इन्हें कालमापक इकाईयों का भेद मानना चाहिये। जैसे किसी दीवार को मापने के लिये हम अंगुल और हस्त का भी प्रयोग कर सकते है। इंच और फुट का अथवा सेन्टीमीटर और मीटर का भी प्रयोग कर सकते हैं। माप्य दीवार एक ही है तथा मापक उपकरण भिन्न – भिन्न हैं। इसी प्रकार काल एक ही अनादि – अनन्त है। उसे मापने के लिये हम कभी सूर्य, कभी चन्द्र , कभी वृहस्पति आदि का उपयोग करते हैं। आचार्य भास्कर ने भी सिद्धान्त लक्षण में कहा है – ''त्रुट्यादि प्रलयान्त कालकलना मान: प्रभेद: क्रमात् '' त्रुटि से आरम्भ कर प्रलयान्त काल तक गणना तथा उनके मानों अर्थात् मापकों के भेदोंका विवेचन सिद्धान्त में किया जाता है। काल की गति के विषय में मतान्तर मिलते है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल सीधी रेखा में गतिशील रहता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काल भी चक्र भ्रमण करता है। इसीलिए इसे कालचक्र भी कहा जाता है। नेपाल और तिब्बत में कालज्योतिष नाम से ज्योतिष की एक प्रमुख विधा है। साहित्यकारों ने काल के चक्र भ्रमण को इंगित करते हुये लिखा है -

''चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्ति: ।।''

कालमापन हेतु जिन नव मानों का उल्लेख किया गया है उनमें से चार कालमान हमारी दिनचर्या से जुड़े हुये हैं। वे हैं सौर – चान्द्र - सावन और नाक्षत्र। जब हमे मास से अधिक काल की गणना करनी होती है तब हम सौर मान का प्रयोग करते हैं। सूर्य एक मास तक एक राशि में रहता है। 12 राशियों में भ्रमण करने में 12 मास अर्थात एक वर्ष लगता है मास की गणना हम चान्द्रमास से करते है। दिन की गणना हम पृथ्वी के दिन अथवा सावन दिन से करते हैं दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन या पृथ्वी का दिन होता है। एक नक्षत्र के उदय काल से द्वितीय उदय काल तक नाक्षत्र काल होता है। इस काल की अवधि सुनिश्चित है। 60 घटी (ठीक 24 घण्टे) बाद यह परिभ्रमण कर पुन:उसी बिन्दु पर आ जाता है। इसलिए नाक्षत्र दिन का मान सदैव एक समान 24 घण्टे या 60 घटी का ही होता है। इसी स्थिर काल के आधार पर घण्टा मिनट का विचार किया जाता है या घटी पल आदि लघु काल खण्डों का विभाजन या गणना की जाती है। इस काल विभाजन व्यवस्था को आचार्य भास्कर ने अपनी प्रसिद्ध रचना सिद्धान्त शिरोमणि में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है -

वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्
मासांस्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।
यत्कृच्छसूतकचिकित्सितवासराद्यम्
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्।।

घटयादि लघुकालखण्डों की गणना नाक्षत्र मान के अतिरिक्त अन्य सौरादि मानों से सम्भव नहीं

हैं, उन मानों के प्रतिदिन न्यूनाधिक होने के कारण। नाक्षत्र काल में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि इसका मान 60 घटी या 24 घण्टे का प्रतिदिन होता है। घटी यन्त्र द्वारा सूचित काल नाक्षत्र काल ही होता है, प्रतिदिन समान रूप होने के कारण। इस प्रकार आवश्यकतानुसार विभिन्न कालमानों का उपयोग होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। दैनिक उपयोग में आने वाले कालमानों का विवरण इस प्रकार है –

काल के अवयव –

अमूर्त्त काल	**मूर्त काल**
पद्म पत्र भेदनकाल = 1 त्रुटि	6 विपल = 1 प्राण
60 त्रुटि = 1 रेणु	60 विपल = 1 पल
60 रेणु = 1 लव	60 पल = 1 घटी
60 लव = 1 लीक्षक	60 घटी = 1 अहोरात्र
60 लीक्षक = 1 प्राण	30 अरोरात्र = 1 मास
	12 मास = 1वर्ष

घण्टा मिनट और घटी पल

24 सेकेण्ड = 60 विपल = 1 पल

24 मिनट = 60 पल = 1 घटी

24 घण्टा =60 घटी = 1 अहोरात्र

काल की बड़ी इकाई –

कृतयुग = 1728000 सौर वर्ष

त्रेतायुग = 1296000 सौर वर्ष

द्वापरयुग = 864000 सौर वर्ष

कलियुग = 432000 सौर वर्ष

महायुग = 4320000 सौर वर्ष

मनु = 306720000 सौर वर्ष

कल्प = 4320000000 सौर वर्ष

ब्राह्म अहोरात्र = 8640000000 सौर वर्ष

काल की इन बड़ी इकाइयों की गणना सौरमान से ही की गई है। इनके अतिरिक्त सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है –

सौरेण द्युनिशोर्मानम् षडशीतिमुखानि च ।
अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालताम् ।।

अर्थात् सौर अहोरात्रों के साथ – साथ षडशीतिमुख संक्रान्तियों के दिनों,अयनों एवं विषुव दिनों तथा संक्रान्तियों के पुण्य कालों का निर्णय भी सौरमान से ही करना चाहिये ।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल अनादि और अनन्त है। काल सृष्टि की शाश्वत सत्ता है, जिसके सापेक्ष समस्त प्राणी लोक में व्याप्त होकर अपने-अपने जीवन का निर्वहन करते हैं। पुराणों में काल को सृष्टिकर्त्ता तथा संहर्त्ता दोनों ही माना गया है - ''काल: सृजति भूतानि काल: संहरते प्रजा:।।'' काल के विभिन्न स्वरूपों में हम इस इकाई में 'मूर्त्त काल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। अत: आइए यहाँ सर्वप्रथम मूर्त्त काल को समझते है -

'मूर्त्त' से तात्पर्य चाक्षुष सन्निकर्ष प्रतीयमान से है। अर्थात् जो हमें दिखलाई देती है अथवा जिसका हम दैनिक जीवन में उपयोग करते है। भावार्थ यही है। मूर्त्त का शाब्दिक अर्थ है- साकार अर्थात् आकार सहित। जैसे कि हम व्यावहारिक जीवन में कहते है कि मुझे उसके मूर्त्त रूप (साकार) का दर्शन हो गया। शिल्पकार मूर्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करता है, जिसे हम अपने चक्षु से साक्षात् अवलोकन कर उसकी मीमांसा करते है अथवा करने लगते है। अमूर्त्त में हमें वह (काल) प्रत्यक्षतया दिखलाई नहीं पड़ता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

अनादि - जिसका कोई आदि (आरम्भ) न हो

अनन्त – जिसका कभी अन्त नहीं होता है, उसे अनन्त कहते है।

सृजति – सृजन करता है।

संहर्त्ता – संहार करने वाला

मूर्त्त – व्यावहारिक काल

कृताद्रिवेदा – 474

महाकाल – सृष्टि का विनाश कर्त्ता

गणनात्मक – जिसकी गणना किया जा सके

खराम – 30

असु – प्राण

पद्मपत्र – कमल का पत्ता

आर्क्ष – नाक्षत्र

3.7 बोध प्रश्न के उत्तर

1. अनन्त
2. साकार
3. दो
4. 1 राशि
5. 60 कला
6. 2
7. 60 विकला
8. 12
9. 30^0

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मूर्त्त काल से आप क्या समझते है?
2. प्राणादि मूर्त्त काल का वर्णन कीजिये।
3. भारतीय काल एवं पाश्चात्य काल में क्या अन्तर है?स्पष्ट कीजिये।
4. काल की महत्ता पर प्रकाश डालिये।
5. मूर्त्त काल पर निबन्ध लिखिये।

इकाई – 4 ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-102 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने काल स्वरूप, मूर्त्तामूर्त काल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में ज्योतिष शास्त्र में वर्णित ग्रहकक्षा एवं भचक्र व्यवस्था का अध्ययन करने जा रहे है।

वह पथ जहाँ ग्रह भ्रमण करते हैं, उसे पथ को कक्षा के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार ग्रहों की कक्षा को 'ग्रहकक्षा' कहा जा सकता है। 'भ' अर्थात् राशि राशिचक्र को भचक्र के नाम से जानते है। 'भ' का शाब्दिक अर्थ नक्षत्र भी होता है।

आइए अब हम इस इकाई में ग्रहकक्षा एवं भचक्र से सम्बन्धित विषयों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- बता सकेंगे कि ग्रहकक्षा किसे कहते है।
- भचक्र व्यवस्था को समझा सकेंगे।
- प्राच्य- पाश्चात्य मतेन ग्रहकक्षा को स्पष्ट रूप से समझ लेंगे।
- भचक्र व्यवस्था में विशेष को बतला सकेंगे।

4.3 ग्रहकक्षा परिचय

ग्रह ज्योतिषशास्त्र का मूल है, जिसके बिना हम ज्योतिष शास्त्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर ही आधारित है। यहाँ तक की आचार्यों द्वारा ज्योतिष की स्थूल परिभाषा में 'ग्रहगणितं ज्योतिषम्' कहा गया है। सृष्ट्योत्पत्ति के समय ब्रह्मा जी ने जब ग्रह एवं नक्षत्रों का निर्माण किया था उस समय प्रमुख ग्रहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में वर्णित है –

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादय:।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पंच जज्ञिरे।।

अर्थात् अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात् तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से वृहस्पति एवं शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए। इसी क्रम में नक्षत्रों एवं राशियों का भी निर्माण किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड में ग्रहों कों उनकी कक्षाओं में स्थापित

किया। जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

ब्रह्माण्डमध्यपरिधि व्योंमकक्ष्याऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानां तदधोऽध: क्रमादथ।।
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दव:।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्तात्सिद्धविद्याधरा घना:।।
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राण: परमां शक्ति ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्।।

श्लोकार्थ है कि ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं, फिर उसके नीचे क्रमानुसार शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर और मेघ है। इस ब्रह्माण्ड के बिल्कुल बीच में यह भूगोल ब्रह्मा की धारिणात्मिका परम शक्ति के बल पर शून्य में स्थित है।

इस प्रकार इन श्लोकों में यह बताया गया है कि ब्रह्माण्ड की परम परिधि के भीतर नक्षत्रों और ग्रहों की कक्षायें किस क्रम से है। हमारी पृथ्वी का स्थान इन ब्रह्माण्ड के बिल्कुल मध्य में माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अर्वाचीन ज्योतिष में सूर्य जगत का केन्द्र माना जाता है। सूर्य के सबसे निकट बुध ग्रह की कक्षा है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु और शनि की कक्षायें क्रमानुसार दूर होती गयी हैं।

ग्रहकक्षा का विचार दो प्रकार से किया जाता है – 1. भूकेन्द्रिक (प्राच्य) 2. सूर्यकेन्द्रिक (पाश्चात्य)
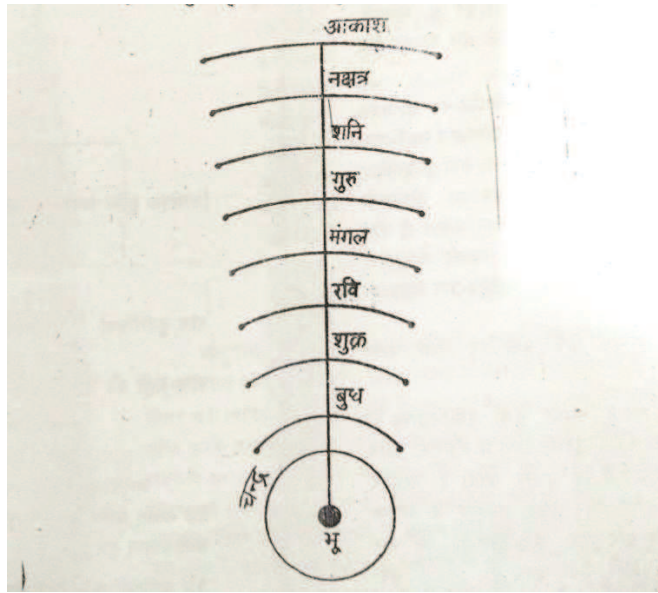
भारतीय ज्योतिष के अनुसार कक्षाओं का क्रम (पृथ्वी केन्द्र में)

चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रों की कक्षा अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं है। आकाश कक्षा की सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि आजकल कुछ तारों की दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षा की सीमा उसके सामने नगण्य है।
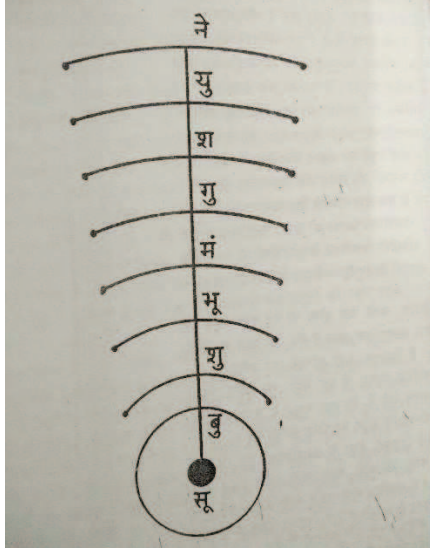
अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार ग्रह की कक्षाओं का क्रम (यहाँ सूर्य केन्द्र में)

इस चित्र में चन्द्रमा की कक्षा नहीं दिखलायी गयी है, क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य के भी चारों ओर जाता है।

ग्रह बोधक चक्र

प्राच्य मत में	पाश्चात्य मत में
सूर्य - ग्रह	सूर्य - तारा
चन्द्र – ग्रह	चन्द्रमा – उपग्रह
भौम – तारा ग्रह	भौम – ग्रह
बुध – तारा ग्रह	बुध- ग्रह
गुरु – तारा ग्रह	गुरु - ग्रह
शुक्र- तारा ग्रह	शुक्र- ग्रह
शनि – तारा ग्रह	शनि - ग्रह
राहु – पात ग्रह	पृथ्वी - ग्रह
केतु – पात ग्रह	यूरेनस - ग्रह
	नेपच्यून - ग्रह
	प्लूटो – ग्रह
	राहु, केतु – पात

भुव: स्थिति –

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।

विभ्राण: परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम।।

अर्थात् ब्रह्माण्ड के चारों ओर से मध्य भाग में यह भूगोल ब्रह्मा की धारणात्मिका परमशक्ति आकर्षण शक्ति से आकाश में अवस्थित है।

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार ग्रहकक्षा क्रम –

चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।

प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगा:।।

तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।

नेभ्यां स्यान्महदेवं स्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्।।

पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलमध: स्थ:।

उर्ध्वस्थस्तुल्यजवो विचरति तथा न महदर्कसुत:।।

अर्थ है कि चन्द्रमा से उपर-उपर बुध, शुक्र, रवि, मंगल, गुरु तथा सूर्यपुत्र शनि की कक्षायें है तथा उसके आगे तारागण है। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा मण्डल में पूर्व की ओर समान गति से भ्रमण करते हैं।

जिस प्रकार तैल निकालने के चक्र में चक्र की आरायें चक्रनाभी से आगे छितरी हुई होती जाती है तथा वे चक्र की नाभि के पास सघन होती है, उसी प्रकार (सभी ग्रहों की कक्षाओं में) राशियों के अन्तर उपर-उपर की कक्षाओं में अधिकाधिक होते जाते हैं। नक्षत्र मण्डल के नीचे चन्द्रमा छोटी कक्षा में स्थित होने के कारण सबसे शीघ्रता से भ्रमण करता है तथा शनि के उपर स्थित होने के कारण उसकी सबसे बड़ी कक्षा में होने से चन्द्रमा के तुल्य गति से चलता है लेकिन उस (चन्द्रमा) की जैसी शीघ्रता से वह नहीं चलता अर्थात् धीमी गति से चलता है।

गोल परिभाषा के अनुसार ग्रहकक्षा –

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खेऽस्थित:।

पृथुत्वात् समवद् भॉति चलोऽप्यचलवत् तथा।।

आवृत्तोऽयं क्रमाद् चन्द्रबुधशुक्राऽर्कभुभूवाम्।

गोलेजीवार्कीभानां च क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थितै:।।

अर्थात् यह गोलाकार भूमिपिण्ड स्वशक्ति से निराधार आकाश में स्थित है, यह विशाल होने के कारण चलते हुए भी अचल प्रतीत होता है। -'वृत्तस्य नवतिर्भाग: दण्डवत् परिदृश्यते' नियमानुसार

यह अचल माना जाता है। उर्ध्व क्रम से भू, वायु, अग्नि, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु एवं शनि।

भास्कराचार्य के मतानुसार खकक्षा एवं ग्रहकक्षा –

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृदभुजंगेन्दुभि।
ज्योतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभस: कक्षामिमां योजनै:।।
तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचिद् प्रोचुरदृश्य दृश्य कगिरिं पौराणिका: सूरय:।।
करतलकलितामलवदमलं सकलं विदनित ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरिनहततमसो नभसोसपरिधियदितस्तै:।।

ज्योतिषशास्त्रानुसार आकाश की कक्षापरिधि का मान १८,७१२,०६९,२००,०००,००० योजन कहते है।

ग्रहस्य चक्रैर्विहृता खकक्षाभवेत् स्वकक्षानिजकक्षिकायाम्।
ग्रह: खकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्तमन:।।

खकक्षा को जिस-जिस ग्रह की भगण संख्या से विभक्त करेंगे भागफल उस-उस ग्रह की कक्षा का मान तुल्य होता है। सूर्यकक्षा ४३३१४९७ १/२, चन्द्रकक्षा ३२४००० तथा भकक्षा २५९८८९८५० प्रमाण गणकों ने की है।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में वृहस्पति की उत्पत्ति किससे हुई?
   क. अग्नि से ख. पृथ्वी से ग. आकाश से घ. वायु से
2. प्राच्यमत में ग्रहकक्षा का विचार किस प्रकार होता है?
   क. सूर्यकेन्द्रिक ख. भूकेन्द्रिक ग. भौमकेन्द्रिक घ. गुरुकेन्द्रिक
3. पाश्चात्य मतानुसार सूर्य है?
   क. ग्रह ख. पात ग. तारा घ. उपग्रह
4. वृत्तस्य .... दण्डवत् परिदृश्यते?
   क. नवतिर्भाग: ख. पंचमो भाग: ग. सप्तमोभाग: घ. कोऽपि न
5. ज्योतिषशास्त्रानुसार आकाश की कक्षापरिधि का मान कितना है?
   क. १८,१७,१२००००० योजन ख. १८,७१२,०६९,२००,०००,००० योजन
   ग. १८७१००००० योजन घ. १८१२०६९००० योजन

6. सूर्य से निकटतम ग्रह कौन सा है?

क. बुध   ख. शुक्र   ग. पृथ्वी   घ. मंगल

4.4 भचक्र व्यवस्था

'भ' का शाब्दिक अर्थ है – राशि, किन्तु इसके साथ-साथ नक्षत्रों के लिए भी 'भ' शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार भचक्र से तात्पर्य राशि एवं नक्षत्र दोनों से ही हो सकता है। भारतीय ज्योतिष में भचक्र का प्रथम बिन्दु अश्विनी नक्षत्र से लिया जाता है। इस प्रथम बिन्दु भचक्र को १२ भागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक राशि का कोणीय मान ३०° है।

भूमण्डल के चतुर्दिक आकाश में पूर्वापर एक वृत्त की कल्पना करके, जिसके केन्द्र में पृथ्वी स्थित है, उसके केन्द्र पर चार समकोण बनाते हैं, जिनका मान ३६०° अंश होता है। इस वृत्त की परिधि को १२ समान भाग में विभक्त करने से प्रत्येक खण्ड ३६०/१२ = ३०° के होते हैं। इस 30 अंश के एक खण्ड को राशि, भवन या भ कहते हैं और उस वृत्त को भचक्र या भमण्डल कहते हैं।
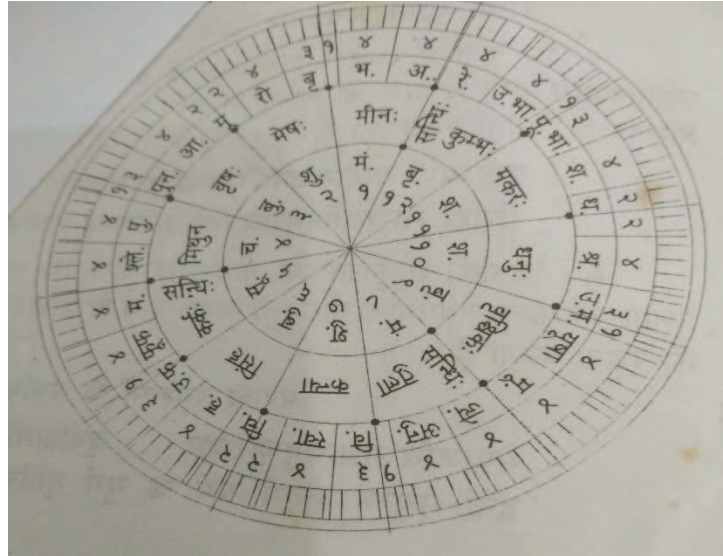
भचक्र या राशिचक्र

आप दिए गए क्षेत्र द्वारा भी भचक्र या राशिचक्र को समझ सकते हैं। इस भचक्र को पुन: सत्ताईस भागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार ३६०°/ २७ = १३ अंश २० कला का एक नक्षत्र होता है।

पुन: एक नक्षत्र को चार भागों में विभक्त किया गया। नक्षत्र के इस चतुर्थांश को चरण या पाद कहते हैं। २७ नक्षत्रों अर्थात् पूरे भचक्र में १०८ नक्षत्रचरण होते हैं, जो १२ राशियों के तुल्य है।

आप ऐसे भी समझ सकते हैं –

१२ राशि = २७ नक्षत्र = १०८ नक्षत्रचरण

१ राशि = २७/१२ = २.२५ नक्षत्र = ९ चरण

अर्थात् १ राशि = २.२५ नक्षत्र = ९ नक्षत्रचरण

९ चरण = १ राशि = ३०°

अत: १ चरण = १/९ राशि = ३०/९ = ३ अंश २० कला = राशिनवमांश

नक्षत्रचरण को ही नवमांश कहते हैं।

भचक्र के एक निश्चित बिन्दु से मेषादि द्वादश राशियों और अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों की स्थिति होती है, जैसा कि क्षेत्र से स्पष्ट है। यह भचक्र पश्चिम से पूर्व दिशा में नित्य भ्रमणशील रहता है। इसी भचक्र को जिसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं, सूर्य अपनी पूर्वाभिमुख गति से नित्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है।

आंग्ल भाषा में मेषादि राशियों के पर्याय इस प्रकार हैं –

मेष	Aries
वृष	Taurus
मिथुन	Gemini
कर्क	Cancer
सिंह	Leo
कन्या	Virgo
तुला	Libra
वृश्चिक	Scorpio
धनु	Sagittarius
मकर	Capricorn
कुम्भ	Aquarius
मीन	Pisces

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अश्विनी, भरणी और कृत्तिका का एक चरण मिलकर मेष राशि का विस्तार होता है।

आचार्य ब्रह्मगुप्त जी ने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त में भी कहा है कि –

अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपंचरो ध्रुवो नमति।
लंकायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे।।

अर्थात् मेरु से अन्यत्र सभी दिशाओं में भचक्र की उन्नति होती है और उत्तर ध्रुव की नति होती है। लंका में भचक्र सममण्डलाकार है और दोनों ध्रुव लंका क्षितिज में है। द्रष्टा मेरू से जैसे-जैसे सभी दिशाओं में जाते हैं वैसे-वैसे ध्रुव की नति होती है। यह आचार्य का कथन हैं। परन्तु लंका को ही मूल स्थान मानकर भास्कराचार्य ने स्थिति का प्रतिपादन किया है, इसलिये 'निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ' इत्यादि भास्कराचार्योक्ति और ब्रह्मगुप्त में कोई भेद नहीं है। अर्थात् मेरू की ओर जाते हुए मनुष्य को उत्तर ध्रुव की उन्नति और भचक्र की नति देखने में आती है, एवं उत्तर भाग से निरक्ष देशाभिमुख जाते हुए मनुष्य को नति और उन्नति विपरीत देखने में आती हैं, अर्थात् उत्तर ध्रुव की नति और भचक्र की उन्नति देखने में आती है। 'उदग्दिशं याति यथा यथा नर:' इत्यादि भास्करोक्ति से स्फुट है। निरक्षदेश से उत्तर भी बहुत देशों में उत्तर ध्रुव का दर्शन नहीं होता है, इसलिए यहाँ सिद्धान्त कहने में भूपृष्ठजनित अवरोध को स्वीकार न कर भूगर्भ ही से सब कुछ विचार करना चाहिए।

शीघ्रगामी नक्षत्रों के साथ सदैव पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में समान परिमाण में हारकर पीछे रह जाते हैं, इसलिए वह पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओं की परिधि के अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है, इसलिए नक्षत्र चक्र को भी यह भिन्न समय में अर्थात् २७ शीघ्र चलनेवाले थोड़े समय में और कम चलने वाले बहुत समय में पूरा करते हैं। रेवती के अन्त में पूरे होने वाले चक्र को 'भगण' कहते हैं।

रेवती नक्षत्र के अन्त से आरम्भ करके पूरब कओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवती के अन्त में आ जाता है तब वह एक भगण पूरा करता है। इसलिए भगण को चक्कर भी कहते हैं। राशि चक्र को बताते हुए सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि –

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत्त्रिंशता भवेद्राशि: भगणो द्वादशैव ते।।

६० विकलाओं की एक कला, ६० कलाओं का एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशों की एक राशि तथा १२ राशियों का एक भगण होता है। यह सभी कोण नापने की इकाईयाँ हैं।

हम जानते है कि पूरे नक्षत्रचक्र (भचक्र) को एक भगण कहते है। यदि इस चक्र को १२ समान भागों में विभक्त किए जाये तो प्रत्येक भाग ३०° का होगा, जो एक राशि के बराबर होता है और उसे ही राशि कहते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि १२ राशियों का एक भगण होता है। राशि के तीसवें

भाग को अंश, अंश के साठवें भाग को कला तथा कला के साठवें भाग को विकला कहते हैं। इनमें से भगण और राशि का प्रयोग तो केवल उस आकाश स्थित चक्र के लिए होता है जिसके तल में सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकला का प्रयोग अन्य कोणों के नापने में भी किया जाता है। कोण और समय नापने की इकाईयों में घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समय में एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समय में एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समय में एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समय में एक कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समय में एक विकला चलता है वह पल के प्राय: समान होता है।

सूर्यसिद्धान्तोक्त नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रहगतियों का सम्बन्ध –

भवेद्भकक्षातिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम्।
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम्।।
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिता: शशिकक्षया।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया कर व्याप्तिस्तथा रवे:।।
सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत्।
कुवासरैर्विभज्याह्न: सर्वेषां प्राग्गति: स्मृता।।
भुक्तियोजनजा संख्या सेन्दोर्भ्रमणं संगुणा।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तित्याप्ता गति लिप्तिका:।।

अर्थात् सूर्य कक्षा के योजनों को ६० से गुणा करने पर नक्षत्र कक्षा के योजनों का मान आ जाता है। सभी ग्रहों से ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजना में घूमता है। शशिकक्षा के योजनों को एक कल्प के चन्द्र भगणों की संख्या से गुणा करने पर आकाश कक्षा का मान ज्ञात होता है। सूर्य की किरणें वहीं तक जाती हैं। आकाश कक्षा के मान को जिस ग्रह के कल्प भगणों की संख्या से भाग दिया जायेगा उसी ग्रह की कक्षा का मान योजनों में ज्ञात होगा। आकाश कक्षा को कल्प के सावन दिनों के भाग देने पर सभी ग्रहों की दैनिकगति योजनों में आ जाती है। इस योजनात्मक ग्रहगति को चन्द्रकक्षा से गुणा करके जिस ग्रह की कक्षा से भाग देकर लब्धि को १५ से भाग देनें पर उस ग्रह की दैनिक गति कलाओं में प्राप्त होती है।

सूत्र –

1. नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०
2. आकाश कक्षा = कल्प के चन्द्र भगण × चन्द्र कक्षा

3. $\frac{\text{आकाशकक्षा}}{\text{कल्प में किसी ग्रहकी भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

4. $\frac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्प के सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति

5. $\frac{\text{ग्रह की योजनात्मक गति} \times \text{चन्द्र कक्षा}}{\text{ग्रहकक्षा} \times १५}$ = ग्रह की दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे सूत्र से स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्प में योजनों में चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधों से अशुद्ध है।

नक्षत्र कला और आकाश कक्षा के विस्तार कल्पित है। नक्षत्रों या तारों की दूरी की सीमा नहीं है। आजकल के वेधों से सिद्ध होता है कि कोई-कोई तारे पृथ्वी से इतनी दूर है कि उनके प्रकाश के पहुँचने में लाखों वर्ष लग जाते हैं।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह ज्योतिषशास्त्र का मूल है, जिसके बिना हम ज्योतिष शास्त्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर ही आधारित है। यहाँ तक की आचार्यों द्वारा ज्योतिष की स्थूल परिभाषा में 'ग्रहगणितं ज्योतिषम्' कहा गया है। सृष्ट्योत्पत्ति के समय ब्रह्मा जी ने जब ग्रह एवं नक्षत्रों का निर्माण किया था उस समय प्रमुख ग्रहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में वर्णित है –

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ तत्स्त्वङ्गारकादय:।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पंच जज्ञिरे।।

अर्थात् अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात् तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से वृहस्पति एवं शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए। इसी क्रम में नक्षत्रों एवं राशियों का भी निर्माण किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड में ग्रहों कों उनकी कक्षाओं में स्थापित

किया। 'भ' का शाब्दिक अर्थ है – राशि, किन्तु इसके साथ-साथ नक्षत्रों के लिए भी 'भ' शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार भचक्र से तात्पर्य राशि एवं नक्षत्र दोनों से ही हो सकता है। भारतीय ज्योतिष में भचक्र का प्रथम बिन्दु अश्विनी नक्षत्र से लिया जाता है। इस प्रथम बिन्दु भचक्र को १२ भागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक राशि का कोणीय मान ३०° है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

भूकेन्द्रिक - पृथ्वी को केन्द्र मानकर की गयी गणना।

धारणात्मिका – धारण करने वाली

ग्रहकक्षा – ग्रहों की कक्षा। जिस पथ पर ग्रह भ्रमण करते हैं, उसका नाम ग्रहकक्षा है।

अर्वाचीन – नवीन

प्राचीन – पुराना

उपग्रह - ग्रहस्य समीपं उपग्रहम्।

स्वशक्त्या – अपनी शक्ति से

निराधार – बिना आधार के

सकल – सम्पूर्ण

खकक्षा – आकाश कक्षा

भचक्र – राशिचक्र

आर्क्ष – नाक्षत्र

4.7 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ग
4. क
5. ख
6. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सूर्यसिद्धान्त
2. सिद्धान्तशिरोमणि
3. वृहज्ज्योतिसार
4. भारतीय ज्योतिष

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह से क्या समझते है?
2. ग्रहकक्षा का वर्णन कीजिये।
3. प्राच्य-पाश्चात्य मतानुसार ग्रहकक्षा का वर्णन कीजिये।
4. भचक्र व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।

खण्ड - 3
नवविध कालमान विवेचन

इकाई - 1 ब्राह्म, दिव्य एवं पैत्र्य मान विवेचन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

काल की महिमा का वर्णन प्रायशः समस्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। काल प्रतिपादक यह ज्योतिष शास्त्र समस्त काल के अङ्गों एवं उपाङ्गों का सम्यक् प्रकार से उपस्थापन करता है। अतएव इस काल के 9 प्रकार के मापक बताये गये हैं- 'कलसंख्याने' धातु से कर्ता अर्थ में घञ्' प्रत्यय करने पर काल शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ गणना करना है। आर्ष ग्रन्थों में काल की विस्तृत चर्चा सूर्यसिद्धान्त में प्रतिपादित है। भगवान् भास्कर मय को उपदेश करते हुये काल के भेदोपभेद को बताते हैं। काल के दो रूप हैं। (1) विश्व का संहारकर्ता काल (2) गणनात्मक काल। पुनः स्थूल काल या कलनात्मक काल के नौ भेद किये गये हैं।
यथा-

ब्राह्मं दिव्यं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वैर्नव।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-01)

1.ब्राह्म 2. दिव्य 3. पैत्र्य 4. प्राजापत्य 5. गौरव 6. सौर 7. सावन 8. चान्द्र 9. एवं नाक्षत्र।

परन्तु इन नौ मानों में से चार के द्वारा ही हमारे लौकिक कार्यों की सिद्धी हो जाती है। शेष 5 कालमानों का व्यवहार ज्योतिष शास्त्र के विविध विषय प्रतिपादन में किया जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

(क) कालमान के ज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) ब्राह्म-मान के औचित्य एवं वैशिष्ट्य का परिज्ञान होगा।

(ग) देवताओं के मान का ज्ञान सरलता से होगा।

(घ) पैत्र्य-मान परिज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।

(ङ) नवविधकालमान के औचित्य के निर्धारण में दक्षता प्राप्त होगी।

1.3 ब्राह्ममान-

अर्थतया स्पष्ट होता है कि ब्रह्म से संबंधित मान को ब्राह्ममान कहते हैं। नौ प्रकार के मानों में यह काल का सबसे बड़ा मान खंड है। भगवान् भास्कर इस मान के सन्दर्भ में कहते हैं कि-

तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः।।

सन्ध्यासन्ध्यांश-सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया।।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वयेकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः।।
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः।।
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिपंचदशः स्मृतः।।
इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती।।

सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लोक सं. - 15-20

यहाँ आशय यह है कि रवि का एक भगण भोग का काल एक सौरवर्ष होता है। इसी को एक दिव्यदिन भी कहते हैं।

360 दिन = 1 वर्ष = 1 दिव्यदिन।

360 दिव्यदिन = 1 दिव्यवर्ष।

इसी कालप्रमाण से 12000 वर्ष = चतुर्युग।

12000 ग 360 = 43,20,000 सौरवर्ष।

पुनः चारों युगों का मान अलग अलग लाने के लिए-

कृतयुग में धर्मपाद = 4 त्रेता में धर्मपाद = 3

द्वापर में धर्मपाद = 2 कलियुग में धर्मपाद = 1

इनका योग = 10 धर्मपाद। इसलिए अनुपात के द्वारा

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग का मान

(महायुग ग 3) / 10 = त्रेता का मान

(महायुग ग 2) / 10 = द्वापर का मान

(महायुग ग 1) / 10 = कलियुग का मान

यहाँ कहा गया है कि कृतयुगादिकों के षष्ठांश तुल्य सन्धियां होती हैं और चारों युगों का मान उनके सन्ध्या तथा संध्यांश से युक्त है।

71 महायुग = 1 मनु

एक कल्प में = 14 मनु

71 ग 14 = 994 महायुग

= 1 कल्प

कृतवर्षप्रमाणतुल्य मनु की सन्धि होती है। इसलिए मनुओं की सन्धि संख्या पन्द्रह होती है।

1 मनुसन्धि = कृतयुग 1 इसका महायुगात्मक मान लाते हैं तो

(महायुग ग 4) / 10 = कृतयुग = 1 मनुसन्धि

(महायुग ग 4 ग 15) / 10 = 15 मनुओं की सन्धि का मान।

= 6 महायुग

1 कल्प = 14 मनु $ 15 सन्धि

= 14 ग 71 महायुग $ 6 महायुग

= 1000 महायुग

= एक ब्राह्मदिन।

इसी प्रकार ब्रह्मा की रात्रि भी 1 कल्प की होती है। अतः अहोरात्र = 2 कल्प।

इस मान से ब्रह्मा को शतायु कहा गया है। जिन चौदह मनुओं की चर्चा यहाँ की गयी है वे-

स्वायम्भुवो मनुस्ततो मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा।।
वैवस्वतश्च कौख्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।
सावर्णि मनुस्ततो रौद्रो रौच्यस्तथैव च।।
तत्रैव मेरुसावर्णश्चत्वारो मनवः स्मृताः।

महाभारत, खि.ह.अ. 7, श्लोक सं.-4-3

अर्थात् (1) स्वायम्भुव (2) स्वारोचिष (3) उत्तमज (4) तामस (5) रैवत (6) चाक्षुष (7) वैवस्वत (8) सावर्णि (9) दक्षसावर्णि (10) ब्रह्मसावर्णि (11) धर्मसावर्णि (12) रुद्रपुत्र (13) रौच्य (14) मौत्यक।

ब्रह्मदिनोपपत्ति - ब्राह्म मान के सन्दर्भ में उपपत्ति ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णित है जैसे आचार्य भास्कर कहते हैं कि -

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः सततमाप्रलयं रविमीक्षते।
भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः।।1।।

अर्थात् -

पृथ्वी से अत्यन्त (अनन्त) दूर स्थित ब्रह्मा, आप्रलय पर्यन्त सूर्य दर्शन करता है अर्थात् ब्रह्मा का एक हजार युग का एक दिन और एक हजार युग की एक रात्रि अर्थात् 2 हजार युग प्रमाण का 1 दिन अर्थात् अहोरात्र होता है। दिनान्त के अनन्तर रात्रि शयन की तरह ब्रह्मा 1 हजार युग के दिनान्त में सारी सृष्टि का समापन कर एक कल्प तक शयन, करने के उपरान्त पुनः नवीन सृष्टि रचना और दूसरे कल्प का प्रारम्भ करता है। यहाँ उपपत्ति ज्ञान हेतु क्षेत्र का अवलोकन कर सकते है -
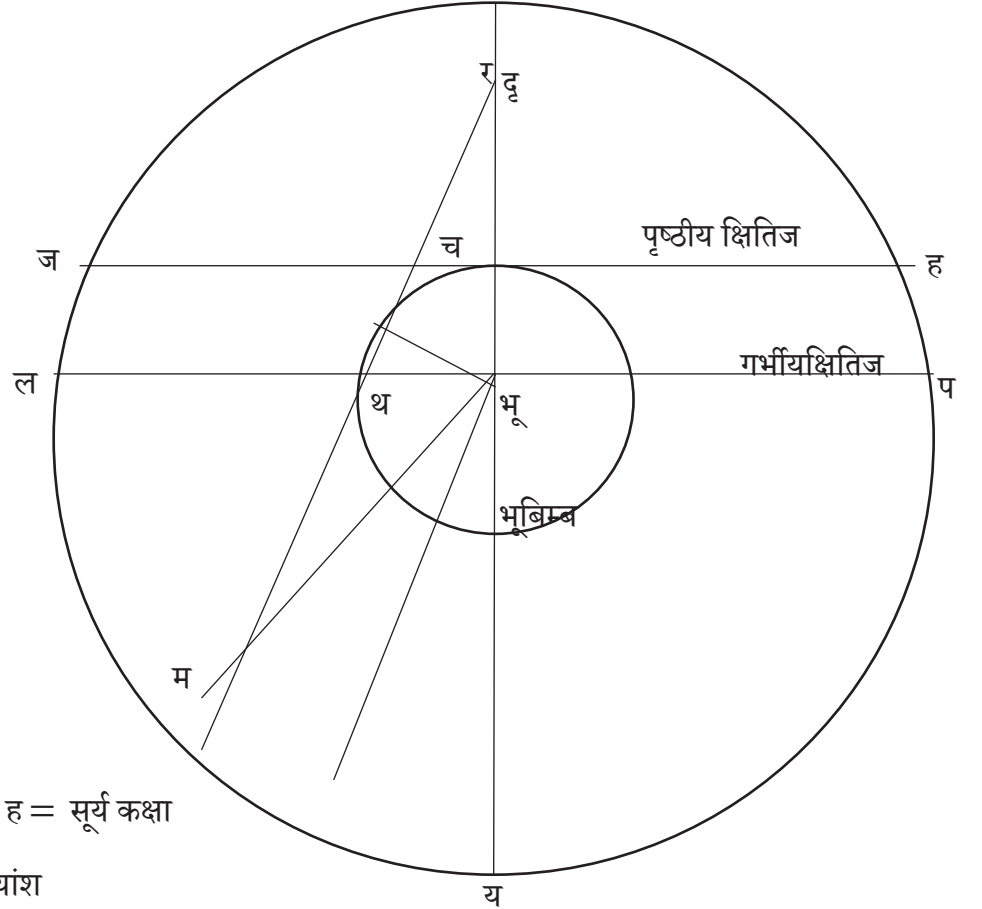
र ज म य प ह = सूर्य कक्षा

ल म = दृश्यांश

च ह = ह उ।

भू = भूकेन्द्र य थ भू ग = भू-बिम्ब।

24 अंश = जिनांश।

दृश्यांश = ल म।

जिनांश + कुच्छन कला = ज ल + ल म = योग।

अनुपात से $\frac{\text{भू व्या } \frac{1}{2} \times \text{ त्रि}}{\text{योग कोटिज्या}}$

अतः योग-भू व्या द. = दृ उ = च दृ।

अर्थात् विषुवद्वृत्त रूप गर्भ क्षितिज से नीचे **24** अंश तक दृश्यांश मान मानकर इससे जो द्रष्टा की उन्नति च दृ तुल्य की भूगर्भ से ऊँचाई से द्रष्टा के दृष्टि पथ में सदोदित सूर्य दर्शन होता रहेगा।

अर्थात् मानव मान के एक सहस्र युग में आकाश कक्षा सम्बन्धीय क्षितिज में सूर्य का अस्त, पुनः इतने ही काल तक अन्धकार जिसे महाप्रलय कहते हैं होता रहता है। इसी को एक कल्प कहिए। दूरद्रष्टा ऋषियों की बुद्धिस्थ इस खगोल ज्ञान के आधार पर, ही ''पुराकल्पेऽपि'' पूर्व कल्प में भी ''ऐसा होता था'' इत्यादि विषय में सविशेष कहा गया है।

आचार्य भास्कर इस विषय में कहते हैं कि-

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः।।21।।
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः।।22।।
सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम्।।24।।
शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान्।।25।।

-सि.शि., मध्यम.

अर्थात् 4,32,000 (सौरवर्ष) को क्रम से 4, 3, 2 एवं 1 से गुणा करने पर क्रम से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के मान होते हैं।।21।।

(1) 4,32,000 × 4 = 17,28,000 सत्ययुग

(2) 4,32,000 × 3 = 12,96,000 त्रेतायुग

(3) 4,32,000 × 2 = 8,64,000 द्वापरयुग

(4) 4,32,000 × 1 = 4,32,000 कलियुग

विशेष- आचार्य भास्कर ने यहाँ युग शब्द से चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) को ग्रहण किया है तथा पृथक्-पृथक् युगों के लिए युगचरण संज्ञा प्रदान किया है।

यहाँ धर्म के 10 चरण (लक्षण) को स्वीकार करते हुए पूर्वाचार्यों ने पृथक्-पृथक् युगों के लिए धर्म के चरणवश युग के मान का निर्धारण किया है। उससे यह परिलक्षित होता है कि युग का परम मान धर्म-चरण के आधार पर ही आधारित है। यथा सत्ययुग में धर्म के 4 चरण (पूर्ण) विद्यमान रहते हैं, अर्थात् अधर्म नहीं होता। त्रेता में 3 पाद, द्वापर में 2 पाद एवं कलियुग में केवल 1 पाद ही धर्म का विद्यमान रहता है। जिसमें शुभाशुभ धर्माधर्म के आधार पर ही 4 युगों का मान निश्चित किया गया है।

अपने-अपने युगचरण के बारहवें भाग के बराबर आद्यन्त में सन्ध्या एवं सन्ध्यांश होते हैं जिनको युगप्रमाण में जोड़ते हैं तो एक युगप्रमाण में 43,20,000 सौरवर्ष होते हैं।

विशेष- यहाँ आचार्य ने प्रत्येक युगचरण का 1/12 आदि सन्ध्या तथा 1/12 भाग अन्त सन्ध्या माना है, यह सन्ध्या और सन्ध्यांश युगमान में जुड़ा हुआ रहता है जिस प्रकार एक अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्यायें होती हैं वैसे ही चतुर्युग के प्रत्येक युगादि एवं युगान्त में मिलाकर 2 सन्ध्यायें होती हैं जिसे यहाँ आदि एवं अन्त नाम से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार यदि सन्ध्या-सन्ध्यांश का आनयन करते हैं तो पाते हैं कि सत्ययुग = 17,28,000 सौरवर्ष,

अतः $\frac{17,18,000}{12}$ = 1,44,000 आदि सन्ध्या

तथा 1,44,000 सौरवर्ष अन्त में सन्ध्या होता है।

इस प्रकार सौरवर्ष प्रमाण से-

त्रेतायुग = 1,08,000 आदि सन्ध्या + 1,08,000 अन्त सन्ध्या

द्वापरयुग = 72,000 आदि सन्ध्या + 72,000 अन्त सन्ध्या

कलियुग = 36,000 आदि सन्ध्या + 36,000 अन्त सन्ध्या

इस प्रकार 71 युग का मनु होता है अर्थात् 71 युगप्रमाण का 1 मन्वन्तरकाल होता है। ऐसे 14 मनु के द्वारा ब्रह्मा का 1 दिन तथा तत्तुल्य अर्थात् 14 मन्वन्तर प्रमाण की ही रात्रि होती है।

मनुओं के आदि-मध्य और अन्त में सत्ययुग के बराबर (वर्ष संख्या) सन्धियाँ होती हैं। इन सन्धियों को जोड़ने पर 1 हजार युग का ब्रह्मा का दिन होता है। उसे ही कल्प कहा जाता है। ब्रह्मा का अहोरात्र (रात-दिन) दो कल्प (2 हजार युग) प्रमाण का होता है।

विशेष- आचार्य ने प्रस्तुत श्लोक के द्वारा पूर्व में बताये गये श्लोक की संगति को पूर्ण करके तथा ब्राह्म दिन प्रमाण का उल्लेख किया है।

पूर्वोक्त प्रकार से ब्रह्मा की सौ वर्ष (100) की आयु बताई गई है। इस आयु को प्राचीनाचार्यों

ने महाकल्प की संज्ञा दी है। क्योंकि काल (ब्रह्म) अनादि है। अतएव कितने ब्रह्मा बीत गये और कितने वर्तमान हैं, उन्हें मैं नहीं जानता।

इस श्लोक में आचार्य भास्कर ने व्यंग्य प्रस्तुत किया है। जैसा कि सौर सिद्धान्त में बताया गया है कि 'आयुषोऽर्धगतम्' अर्थात् उस ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गयी है। अतएव भास्कराचार्य ने इसी स्थल पर व्यंग प्रस्तुत किया है कि जिस काल का मान अनादि है उसके कितने वर्ष व्यतीत हो गये। इसे मैं नहीं जानता। यथा -

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः।।26।।

अर्थात्- वर्तमान ब्रह्मा की आधी आयु व्यतीत हो गई है, कुछ लोग 8.5 वर्ष व्यतीत मानते हैं। अस्तु, यहाँ कोई भी आगम (प्रमाण) हो परन्तु इसका कोई विशेष उपयोग शास्त्र में नहीं देखा जाता। ग्रहसाधन सर्वदा वर्तमान ब्रह्मदिन के गताब्द पर से ही करना चाहिए।

विशेष- यहाँ पूर्वोक्त विशेष की ही पुष्टि करते हुए आचार्य ने युक्ति बताई कि ब्रह्मा की आधी आयु बीते या 8.5 वर्ष, इससे ग्रहगणना के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता है। अतः ग्रहानयन वर्तमान ब्रह्मदिन के आधार पर ही करना चाहिए।

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु।।27।।

-सि.शि., मध्यमा.

अर्थात् यद्यपि ब्रह्मा के दिनारम्भ से सृष्टि अर्थात् जगत् की संरचना होती है तथा दिनान्त में सभी भूतों का लय होता है। अतः विद्यमान दिन से ही ग्रहचारानयन जानना चाहिए। जो लोग असत् महाकल्प से इसे जोड़कर वर्तमान ग्रहों का मान लाते हैं, वैसे महान् लोगों को मेरा नमस्कार है।

विशेष- प्रस्तुत श्लोक में भी आचार्य जी ने जो लोग महाकल्प से ग्रहानयन करते हैं, उनका उपहास किया है।

1.4 दिव्यमान

'दिवि भवं दिव्यम्' अर्थात् देवताओं से संबंधित मान को दैवमान कहते हैं। दिव्य दिन का मान एक सौरवर्ष तुल्य होता है। जैसे-

360 सौरदिन = 1 सौरवर्ष।

1 सौरवर्ष = 1 दिव्य दिन।

360 दिव्य दिन = 1 दिव्य वर्ष।

सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं -

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत् प्रोक्तं तद् भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात्।।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलाध्याय, मानाध्याय, श्लोक सं.-20

देवताओं के दिन और रात्रि का मान तो तुल्य होता है किन्तु यहाँ विशेष यह है कि जब देवताओं का दिन होता है तब असुरों की रात्री तथा जब असुरों का दिन होता है तब देवताओं की रात्रि। इसका कारण यह है कि शास्त्रानुसार देवताओं का वास सुमेरु तथा दैत्यों का वास कुमेरु पर है। सुमेरु नाडीवृत्त से उत्तर दिशा में 900 दूरी पर तथा कुमेरु नाडीवृत्त से दक्षिण दिशा से 900 दूरी पर स्थित है। दोनों स्थानों के बीच की दूरी 1800 है। और दोनों के बीच में निरक्षदेश है तथा नाडीवृत्त ही दोनों का गर्भक्षितिज है। मेषादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से उत्तर में तथा तुलादि छः राशियों की स्थिति नाडीवृत्त से दक्षिण में हैं। अतः यदि सूर्य मेषादि छः राशियों में संचरण करता है तो असुरों के क्षितिज के नीचे होने से उनकी रात्रि तथा यदि तुलादि छः राशियों में संचरण करता है तो देवों की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है। इसी प्रकार दैत्यों एवं देवों के विपर्यय क्रम से छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात्रि होती है। इसी एक सौरवर्ष प्रमाण को दिव्य दिन की संज्ञा दी गई है । देवताओ से सम्बन्धित हैं यह मान इसलिए दिव्य कहते हैं।

1.5 पैत्र्यमान-

पैत्र्यमान के प्रतिपादन के प्रसंग में भगवान सूर्य सूर्यसिद्धान्त में कहते हैं कि-

पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम्।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना।।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-5

अर्थात् पित्र्यदिन एकचान्द्रमास तुल्य होता है। मयासुर के प्रश्न के उत्तर में भगवान कहते हैं कि-

पितरः शशिगः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि।

सूर्यसिद्धान्त, भूगोलध्याय, श्लोक सं.-74

अर्थात् पितरों के लिए पन्द्रह तिथियों का एक दिन तथा पन्द्रह तिथियों की एक रात्रि होती है। दोनों का योग करने से एक चान्द्रमास तुल्य अहोरात्र होता है। आचार्य भास्कर भी इस प्रसंग में कहते हैं कि-

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति

पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे

दर्शे यतोऽस्माद् द्युदलं तदैषाम्।

भार्धान्तरत्वान्न विधोरधस्थं

तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।

कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति

शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्।।

सि.शि., गोलाध्य, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक सं.-13-14

अर्थात् चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितरों का वास होता है। अतः यदि सूर्य अमावस्या को जब चन्द्रमा के ठीक ऊपर होता है तब ये अवस्था पितरों का दिनार्ध तथा पूर्णिमा को पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार संक्रान्तियों के विभाजन के क्रम में 16 दिन के लिए विशेष रुप से पितृपक्ष के लिए निर्देशित किया गया है। जिसमें सभी प्रकार का किया गया दान जप अक्षय होता है जैसे -

तुलादेः षडशीत्यंशैः षडशीतिमुखं दिनम्।

भचतुष्टयमेवं स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु।।4।।

षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेतिमिनस्य च।

मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायां च चतुर्दशे।।5।।

अर्थात् तुला संक्रान्ति से छियासी दिनों का षडशीति मुख क्रम से होता है। यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियों में होते हैं। धनु राशि के 26वें अंश, मीन राशि के 22वें अंश, मिथुन राशिके 18वें अंश और कन्या राशि के 14वें अंश तक।

विशेष- इन श्लोकों में दिन का अर्थ सावन दिन नहीं है, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है। ऐसे 360 दिनों का एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार 365 दिन 6 घंटे से कुछ अधिक हुआ परन्तु सूर्य की गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखों के मान भी सावन दिनों में समान नहीं हैं। तुला राशि से आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों के तीस-तीस अंश और धनु के 26 अंश मिलकर 86 अंश हुए इसलिये प्रथम षडशीतिमुख धनु के 26 अंश पर समाप्त होता है। दूसरा षडशीतिमुख धनु के 27वें अंश से आरम्भ होकर मीन के 22वें अंश पर समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मिथुन के 18वें अंश पर और चौथा कन्या के 14वें अंश पर समाप्त होता है। जिन चारों राशियों में षडशीति मुखों का अंत होता है वे द्विस्वभाव की बतलायी गयी हैं जिसकी चर्चा फलित ज्योतिष में आयी है।

किसी किसी ग्रन्थ में तिमिनस्य के स्थान में निमिषस्य पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है

क्योंकि निमिष का अर्थ मीन राशि नहीं है।

पितृपक्ष -

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।

क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृणां दत्तमक्षयम्।।6।।

अर्थात्- इसके उपरान्त कन्या राशि के शेष 16 दिन यज्ञकाल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

विशेष- इससे प्रकट होता है कि पितरों का श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशि में 15 से 30 अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणना से आश्विन कृष्ण पक्ष में और अमान्त गणना से भाद्र कृष्ण पक्ष में अर्थात् चान्द्रमान के अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

1.6 सारांश

कालमान के पहले बड़े मापक (ब्राह्म) की विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

युगों के मानों के साथ धर्मपाद की व्यवस्था ब्राह्म मान के लिए एक नूतनान्वेषण का विषय भी प्रतिपादित किया गया है।

देवताओं एवं दानवों के दिन व्यवस्था का समन्वय दिव्यमान के द्वारा सभेद बताया गया है।

पितरों के मान तथा उनके दिनादिमान एवं पितृपक्ष के निर्धारण का उपपत्ति भी वर्णित है।

प्रत्येक मान का सम्बन्ध एक दूसरे से सम्बन्धित होकर सर्वतोभावेन उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

1.7 शब्दावली

सौर - सूर्य के एक अंश का चलन सौरदिक।

ब्राह्म - एक सबसे बड़ा काल मापक का प्रमाण।

पैत्र्य - चन्द्रपृष्ठोर्ध्व पितरों की दिनरात्रि व्यवस्था भी एक कालमान के प्रमापक के रुप में है।

सावन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का काल सावनदिन कहलाता है।

चान्द्र - एक तिथ्यात्मक काल को चान्द्रदिन या मान कहते हैं।

1.8 अभ्यास प्रश्न -

(1) कालमान कितने प्रकार के हैं ? - 9

(2) सबसे बड़ा कालमान कौन सा है? - ब्राह्म

(3) सत्ययुग का मान कितना है ? - 17,28,000

(4) एक महायुग में ब्रह्मा का क्या होता है? - 1 दिन

(5) ब्रह्मा के अहोरात्र में कितने कल्प होते हैं? - 2 कल्प

(6) यद्यपि यह काल अनादि है किसकी उक्ति है ? - भास्कराचार्य की

(7) ग्रह कहाँ से साधन करना चाहिए। - ब्रह्म के वर्तमान दिन से

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

नाम	लेखक	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त		
सिद्धान्तशिरोमणि -		
ग्रहलाघवम् -		
सिद्धान्ततत्त्वविवेक -		
बृहद्दैवज्ञरंजनम् -	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

इकाई - 2 प्राजापत्य, बार्हस्पत्य एवं सौरमान

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -102 के तृतीय खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। ज्योतिष शास्त्र कालविधान शास्त्र है, इसकी परिगणना मुख्यरुप से काल को लेकर ही की गई है। अतएव 9 प्रकार के कालमानों में इस पाठ के अन्तर्गत केवल 03 मान की चर्चा आपके समक्ष की जाएगी, जिसमें प्राजापत्यमान, बार्हस्पत्य मान एवं सौरमान हैं। पूर्व के जिन 4 मानों को मानव-व्यवहार योग्य बताया गया है उसमें सौर मान भी वर्णित है ऐसी परिस्थिति में बार्हस्पत्य एवं प्राजापत्य मान की प्रासंगिकता तथा स्वरुप पर इस पाठ में बृहत चर्चा की जाएगी। कुछ प्रधान उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही कुछ वैशिष्ट्य का उल्लेख भी यथावशर किया जाएगा। यद्यपि जो मुख्य रुप से मनु सम्बन्धित मान है उसे ही प्राजापत्यमान नाम से अभिहित किया गया है तथा मध्यम मान से वृहस्पति का 1 राशि का भोग काल ही बार्हस्पत्यमान या समवत्सर कहलाता है। सौरमान की प्रासंगिकता की वृहत् चर्चा भी आगे की जाएगी।

2.2 उद्देश्य -

(क) छात्रगण प्राजापत्यमान के व्यवहार से परिचित होगे तथा उसमें दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) मनु-मान के व्यवहार को प्राजापत्य के साथ समन्वय में निपुणता प्राप्त होगी।

(ग) सम्वत्सरों के उद्भव के सन्दर्भ में कुशलता प्राप्त होगी।

(घ) सौरमान की परिभाषा तथा गणितीय स्वरुप का ज्ञान होगा।

(ङ) सौरमास तथा संक्रान्तियों के निर्माण में सौरमान के योगदान की भूमिका ज्ञान होगा।

2.3 प्राजापत्यमान -

प्रजापत्यमान के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्तकार कहते हैं कि मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्रजापत्यमान कहा जाता है।

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्।
न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्तितम्।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-21)

अर्थात् मन्वन्तर व्यवस्था को ही प्राजापत्य मान कहा जाता है। मनवन्तर व्यवस्था की चर्चा ब्राह्म मान में भी की गई है, ऐसी स्थिति में प्रसंगानुसार विचार करते हैं तो पाते हैं कि -

71 महायुग = 1 मनवन्तर

1 महायुग = चतुर्युग (सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलि)

इस प्रकार से कुल मनुओं की संख्या 14 है जिसमें 6 मनवन्तर का काल व्यतीत हो गया है तथा सातवें वैवस्न्त-मन्वन्तर चल रहा है। इस प्रकार ही सौरवर्ष प्रमाण में इनका गणितीय स्वरुप निम्नलिखित है-

2.4 बार्हस्पत्य (गौरव) मान -

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः।।

- सि. शि. मध्यमा.

अर्थात् - संहिताशास्त्र के विद्वान् बृहस्पति के मध्यम मान से एक राशि भोगकाल को बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। मनुष्य का मान व्यवहारमिश्रित जानना चाहिए, जिसमें चार मानों के द्वारा मानव व्यवहार-वृत्ति सम्पादित होती है।

विशेष - इस श्लोक में आचार्य ने संवत्सर-निर्माण-प्रक्रिया को बताते हुए नवविध काल मानों में मानव व्यवहारोपयोगी चार मानों को बताया है।

मध्यम मान से बृहस्पति जब एक राशि का भोग कर लेता है तो एक संवत्सर का काल होता है। संवत्सर 60 होते हैं, पुनः 60 के बाद इनकी आवृत्ति होती है। मानव व्यवहार हेतु केवल एक मान कोई पर्याप्त नहीं है अपितु चार मान (सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र) व्यवहार के लिए उपयोगी होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त में बार्हस्पत्य मान के सन्दर्भ में कहा गया है कि मध्यमगति से गुरु के एकराशि भोग को एक संवत्सर की संज्ञा दी गयी है। मानाध्याय में भगवान् सूर्य कहते हैं कि -

वैशाखादिषु कृष्णे च योगात् पंचदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात् तथा।।

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-27

अर्थात् वैशाखादि मासों से कृष्णपक्ष की 30वीं (अमावस्या) तिथि को कृत्तिकादि नक्षत्रों के संयोग से बार्हस्पत्य कार्तिकादिमास होते हैं। इस प्रकार से जिस मास में गुरु अस्त या उदय होता है उस मास से संबंधित बृहस्पति का वर्ष प्रारम्भ होता है।

जिस मास में गुरु उदय या अस्त हों उस मास के अमान्त नक्षत्र के नाम से गुरु वर्षारम्भ होता है। बृहस्पति के ये कार्तिकादि मास 60 संवत्सरों से सम्बन्धित गौरव वर्षों से भिन्न होते हैं।

जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में बृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

वस्तुतः जिस समय बृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता, इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतना दूर हो जाता है कि दिखाई पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और बृहस्पति की युति होती है जो लगभग 399 दिन या 13 मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'बार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर बृहस्पति के उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। 16वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है, इसलिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासों के पूर्णिमान्त नक्षत्रों से 14वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मास में पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मास में सूर्य विशाखा या अनुराधा के 14वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इसके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इसलिये बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो बृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'बार्हस्पत्य मार्गशीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और वार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनों में यह अंतर भी कर दिया जाता है कि वार्हस्पत्य वर्षों के नाम के पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षों का प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्त का यह नियम बहुत लचीला होता है। बृहस्पति के अस्तकाल से उदय काल का अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकाल के समय सूर्य स्वाती नक्षत्र में हो और उदय काल के समय अनुराधा में। ऐसी दशा में कौन सा बार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख'? शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उसी के नाम से बृहस्पति के वर्ष का नाम रखना चाहिये।

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।

तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षमासक्रमेणैव।।1।।

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।

क्रमशस्त्रिभं तु पंचममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षम।।2।।

बृहत्संहिता - गुरुचाराध्याय,

वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा भी की है।

बृहस्पति का वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं पंचांगों में इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्प के मंत्रों में तो यह प्रतिदिन काम में आते हैं। ऐसे 60 संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा 5 संवत्सरों का एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह है- (1) संवत्सर, (2) परिवत्सर, (3) इदावत्सर, (4) अनुवत्सर, (5) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदांग ज्योतिष तथा बृहत्संहिता में है जहाँ इनके फल भी बतलाये गये हैं।

2.5 सौरमान

सूर्य का भगणभोगकाल ही सौरवर्ष कहलाता है। अर्थात् सूर्य द्वारा द्वादश राशियों के भोग को एक सौरवर्ष कहते हैं। एक राशि का भोगकाल एक सौरमास होता है तथा एक अंश का भोगकाल एक-एक सौरदिन होता है। 360 सौर दिन = 1 सौरवर्ष। रवि के एकराशि संक्रमण काल से अपरराशि संक्रमण काल तक सौरमास होता है। सूर्य के संक्रान्ति वशात् ही अयन का निर्माण भी होता है। जैसे-

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।

कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्।।

द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।

मेषोदयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।

सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-9-10

इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। आठ संवत्सरों की गणना बृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

2.5.1 सौरमान का प्रयोजन -

सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च।

अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता।।3।।

- सू.सि., मान.

अर्थात् दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से ही निश्चय किया जाता है।

2.5.2 सौरसंक्रान्तियों के नाम -

भचक्रनाभौ विषुवद्द्वितीयं समसूत्रगम्।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः।।7।।
तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्योर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम्।।8।।

अर्थात् भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

यदि इसका गंभीर विचार करें तो पाते हैं कि, चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक 12 संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

क्रम	राशि	संक्रान्ति के नाम	ऋतुओं के नाम
1.	मेष	विषुवत्	वसंत
2.	वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
3.	मिथुन	षडशीतिमुख	ग्रीष्म
4.	कर्क	अयन	वर्षा
5.	सिंह	विष्णुपदी	वर्षा
6.	कन्या	षडशीतिमुख	शरद
7.	तुला	विषुवत्	शरद
8.	वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
9.	धनु	षडशीतिमुख	हेमन्त
10.	मकर	अयन	शिशिर
11.	कुम्भ	विष्णुपदी	शिशिर
12.	मीन	षडशीतिमुख	वसंत

2.5.3 सौरमान से उत्तरायण, दक्षिणायन और ऋतु -

भानोर्मकरसङ्क्रान्तेः षण्मासेषूत्तरायणम्।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्।।
द्विराशिमानादृतवः षडुक्ताश्शिशिरादयः।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।

(सू.सि. माना. 9-10)

अर्थात् सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय से 6 महीने तक दक्षिणायन होता है। ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष संक्रान्ति से 12 सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष भी होता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग में राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियाँ स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी के आदि बिन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश 180 है परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इसलिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में आरम्भ होती थी और 6 महीने तक बराबर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरम्भ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएँ एकसाथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से 23 दिन पहले ही आरम्भ हो जाती है। पाँच सौ वर्ष में यह अन्तर एक महीने के लगभग हो जायेगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चा की गयी है। सूर्य-सिद्धान्त का यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनी के 27 अंश इधर उधर ही रहता है, इससे अधिक अन्तर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकल के विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदि ने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों के ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायण का आरम्भ पहले उस समय से नहीं माना जाता था जब सूर्य की प्रवृत्ति उत्तर की ओर होती है वरन् उस समय से माना जाता था जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होकर उत्तर गोल में आ जाता है। इससे देवताओं के दिन और रात का भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि

देवता उत्तर ध्रुव के निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुव पर दिन का आरम्भ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होने लगता है, इसीलिये उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्ध में यह कल्पना न करनी पड़ती।

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत्॥

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

संक्रान्ति का पुण्यकाल -

अर्कमानकला षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।
तदर्धनाड्यस्सङ्क्रान्तेरर्वाक पुण्यास्तथापरः॥11॥

अर्थात् सूर्य के बिम्ब मान की कलाओं को साठ से गुणा करके उसकी दैनिक गति से भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियाँ पहले और पीछे संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है।

विशेष विचार करते हैं तो पाते हैं कि, संक्रान्ति उस समय होता है जिस समय सूर्य बिम्ब का केन्द्र राशि में प्रवेश करता है परन्तु सूर्य बिम्ब का मान 32 कला के लगभग है इसलिये संक्रान्ति का पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य के बिम्ब का पूर्वी किनारा राशि को प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब तक बिम्ब का पश्चिमी किनारा राशि के आदि बिन्दु को पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाब से 32 घड़ी के लगभग होता है जिसका आधा 16 घड़ी है। इस लिये संक्राति से लगभग 16 घड़ी पहले पुण्यकाल का आरंभ होता है और 16 घड़ी बाद तक रहता है। सूक्ष्म गणना के लिये श्लोकों में बतलाये हुये अनुपात से काम लेना चाहिये। संक्रान्ति काल में सूर्य की जो दैनिक गति हो उतनी गति 60 घड़ी में होती है तो सूर्य बिम्ब के समान गति कितनी घड़ियों में होगी। अर्थात्

पुण्यकाल = सूर्य बिम्ब का मान × 60 घड़ी सूर्य की दैनिक गति

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकाल से घटाने पर पुण्यकाल का आरम्भ जाना जाता है और जोड़ने पर उसकी पुण्यकाल की समाप्ति का समय निकल आता है।

2.6 वृत्त चित्र
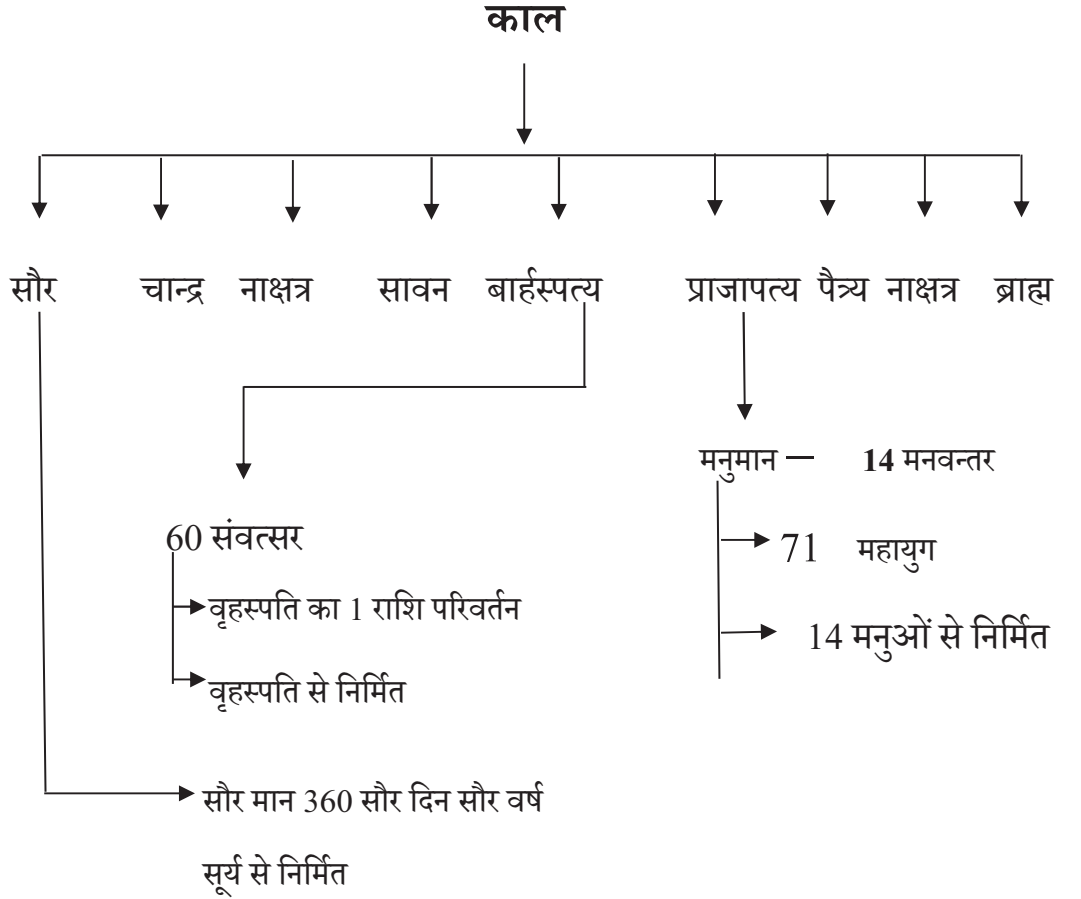
2.7 सारांशिका -

1. प्रस्तुत पाठ में प्राजापत्यमान अर्थात् मनु सम्बन्धि मान की विस्तृत चर्चा सौरवर्ष प्रमाण में की गई है, जिससे छात्रों को 'मनुजैः स्वमानात्' के अनुसार पाठ को समझने एवं गणित करने में सुलभता होगी।

2. बार्हस्पत्यमान वस्तुतः बृहस्पति से सम्बन्धित है जो समवत्सरों के द्वारा परिगणित होता है। इसकी भी सोपपत्तिक चर्चा की गई है।

3. सौरमान मुख्यरुप से सूर्य के द्वारा निर्मित है जिसमें सूर्य के प्रतिदिन की गति के आधार पर गणना बताई गई है तथा सौर प्रमाण से निर्मित होने वाले विविध स्थितियों एवं संक्रान्ति आदि की गणना भी की गई है।

4. सौरमास तथा संक्रान्ति के पुण्यकाल की भी विस्तृत परिचर्चा की गई है।

2.8 लघुत्तरीय प्रश्नोत्तर -

(क) प्राजापत्य मान क्या है ? - मनु मान ही प्राजापत्य मान है।
(ख) 1 मनु में कितने महायुग होते हैं - 71 महायुग
(ग) मनु कितने होते हैं? - 14 मनु
(घ) 14 मनु में कितनी सन्धियाँ होती हैं? - 15 सन्धियाँ
(ङ) सम्वत्सर कितने होते हैं ? - 60 सम्वत्सर
(च) 1 सम्वत्सर का काल कितना है - गुरु की 1 राशि मध्यम चलन द्वारा,
(छ) सौर दिन संख्या 1 सौरवर्ष में कितनी है? - 360
(ज) वर्तमान मन्वन्तर कौन सा है? - वैवस्वत
(झ) 1 सौरवर्ष में सावन दिन संख्या ? 365 दिन
(ञ) कालमान कितने हैं ? - 9 (नवविधकालमान)

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची -

ग्रन्थ नाम	मूल लेखक/ टीका	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	आर्ष ग्रन्थ/ प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
सिद्धान्तशिरोमणि	भास्कराचार्य/ आचार्य सत्यदेव शर्मा	,,
ग्रहलाघवम्	गणेश दैवज्ञ/ आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय	,,
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	कमलाकर भट्ट/ गंगाधर मिश्र	,,
बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राजापत्य मान का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. गौरव मान से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
3. सौर मान पर टिप्पणी लिखिये।
4. नवविधकाल मान में प्राजापत्य, बार्हस्पत्य एवं सौर मान की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।
5. क्या गौरव मान व्यावहारिक काल के अन्तर्गत आता है? समझाइये।

इकाई - 3 सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र मान

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना –

आप सभी छात्रों ने पूर्व पाठ में यह पढ़ा कि, भारतीय ज्योतिष में काल गणना की चर्चा विस्तृत रुप से की गई है। काल के प्रतिपादक ग्रह सूर्य एवं अन्य ग्रहों के मानानयन की प्रक्रिया तथा काल के मापक विविध प्रमापकों का वर्णन भी इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। वस्तुस्थिति विचार करने पर प्राप्त होता है कि, सूर्य एवं चन्द्र के द्वारा अधिकाधिक गणना में सहायता ली जाती है। चाहें तो पचांग साधन हो या नवविध कालमान दोनों की दृष्टि में इन दोनों ग्रहों की भूमिका नितान्त महत्त्वपूर्ण है। लोक में जिन प्रत्यक्ष ग्रहों की परिचर्चा है उसमें रविचन्द्र ही महत्त्वपूर्ण है। 9 प्रकार के कालमान में 4 मान (सौर, चान्द्र, नाक्षत्र, सावन) मानव के व्यवहार योग्य स्वीकार किये गये हैं। इसका मूल कारण यह है कि, हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा व्यवहारिक प्रक्रिया इन चार मानों के द्वारा ही पूर्ण हो जाती हैं। इसके कारण हम इन 4 मानों का प्रमुखता से विचार करते हैं।

प्रस्तुत पाठ में सावन, चान्द्र एवं नाक्षत्र मान की परिचर्चा की जाएगी, जिसमें आप सभी लोग इसकी महत्ता, आनयन प्रक्रिया, भेद तथा उपपत्ति का विधिवत ज्ञान करेंगे। सूर्यग्रह क्रान्तिवृत्त में प्रतिदिन आसन्न मान से 10 चलता है। इससे वह पूर्वाभिमुख गति के कारण 3600 चलकर अपने प्रारम्भ बिन्दु पर पुनः आ जाता है। सूर्य के चलने से सौरदिन-मास-अयन-ऋतु आदि का निर्माण होता है। इससे विविध प्रकार के युग मान परिवर्तन में सहायता भी मिलती है। चन्द्रमा के स्वविमण्डल में गमन द्वारा चान्द्र दिन-मास-वर्षादि की प्रवृत्ति होती है। नक्षत्र चक्र द्वारा नाक्षत्र मान का परिज्ञान तथा आकाशीय स्थितियों का परिवर्तन प्रत्यक्ष रुप से परिलक्षित होता है।

3.2 उद्देश्य

(क) मानवव्यवहारोपयोगि कालमान परिज्ञान में दक्षता मिलेगी।

(ख) सौरमान का विधिवत परिज्ञान होगा।

(ग) चान्द्रमान प्रमाण के प्रयोग में कुशलता मिलेगी।

(घ) सोपपत्तिक मानों का रहस्य ज्ञात होगा।

(ङ) आकाशीय मानचित्र के बोधक नक्षत्रों का ज्ञान होगा।

(च) मानों के व्यवहार का स्थल भी ज्ञात होगा।

3.3 सावनमान -

एक सूर्योदय से अपर सूर्योदय के मध्य के अन्तर्वर्ती काल को सावन दिन कहते हैं। स्पष्टतया यह सूर्य

सावन दिन है। भगवान् सूर्य स्वयं मानाध्याय में कहते हैं कि-

उदयादुदयं भानोः सावनं तत् प्रकीर्तितम्।
सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः।।
सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।
मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-18-19)

उपर्युक्त श्लोक में सावनदिन प्रमाण का उल्लेख करते हुए ग्रन्थकार ने सावन दिन के प्रयोजन का विधिवत वर्णन किया है कि किस-किस कार्य में इस सावन मान का प्रयोग करना चाहिए । प्रस्तुत प्रसंग में मतान्तर द्वारा भी सावन की प्ररिभाषा यही बताई गई है कि, सूर्य के उदय काल से दूसरे उदय काल तक के बीच की अवधि को सावन दिन कहा जाता है। यथा चित्र में –
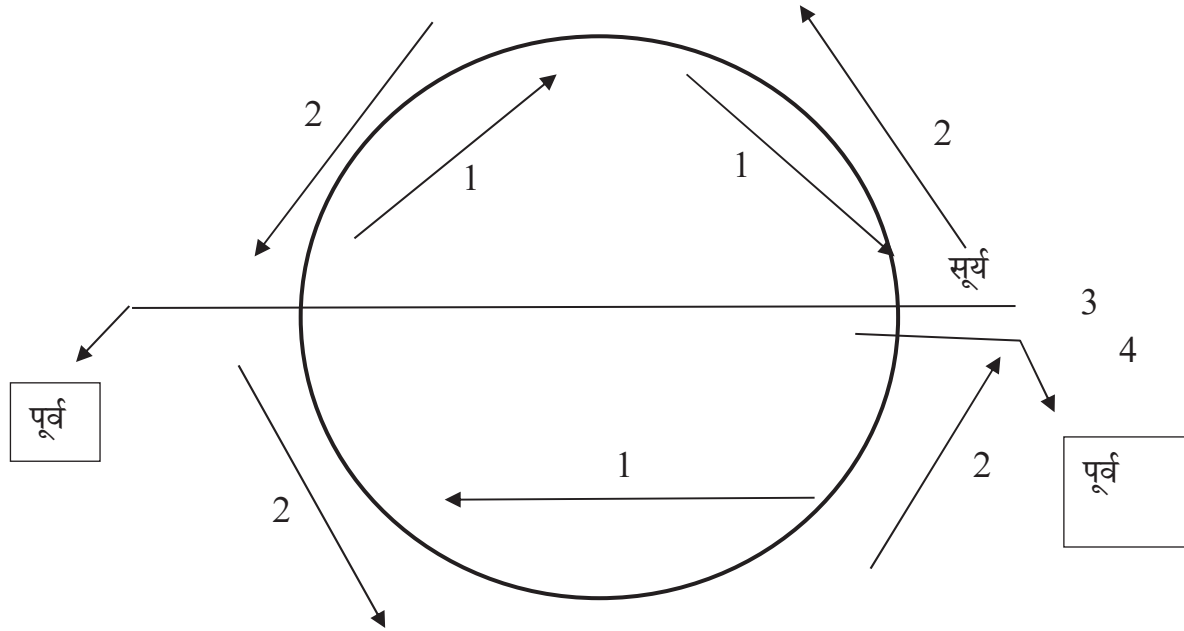
क्षेत्र परिचय -

1. सूर्य की पूर्वाभिमुख गति (स्वगति) पूर्व
2. सूर्य की गति (प्रवहवायुप्रेरित) पश्चिम
3. क्षितिजवृत्त

4. क्रान्तिवृत्त (रवि का गमन वृत्त)

प्रायः हम यही प्रतिदिन देखते हैं कि सूर्य पश्चिम के तरफ गमन करता है परन्तु वह प्रवह वायु की गति है न कि सूर्य की स्वगति।

प्रयोजन - सूतक, दिनेश, मासेश, वर्षेश एवं ग्रहों के मध्यमा गति का आनयन इसी मान के द्वारा किया जाता है।

3.4 चान्द्रमान -

सूर्य एवं चन्द्रमा की युति अमावस्या संज्ञिका होती है। एक अमावस्या से दूसरे अमावस्या के मध्यवर्तिकाल को चान्द्रमास कहते हैं। यथा-

रवीन्द्वोर्युतिः संयुतिर्यावदन्या
विधोर्मास एतच्च पैत्र्यं द्युरात्रम्।

सि.शि., म.अ., श्लोक सं.-19

तिथियों की संख्या तीस है तथा एक वृत में 3600 अंश है। अतः (3600 × 1) / 30 = 120 = 1 तिथिमान। अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर 120 के बराबर होता है तो 1 तिथि निष्पन्न होती है। इस प्रकार तिथियों का उद्भव होता है। सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है कि -

अर्काद् विनिस्सृतः प्राची यद्यात्यहरहः शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः।।

(सू.सि. - माना.)

प्रयोजन प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि, तिथि, करण, विवाह, क्षौर, कर्म तथा जातकर्म, व्रत, उपवास व यात्रा आदि कार्य चान्द्र मान से ही ग्रहण होते हैं। अर्थात् इन कार्यों का निष्पादन चान्द्रप्रमाण के आधार पर ही करना चाहिए। यथा-

तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा।
व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण सिद्धयति।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-13)

यथा आलेख द्वारा चान्द्रमान के अंशादि एवं तिथि प्रदर्शित किये गये हैं -

तिथि	चन्द्रसूर्यान्तर	तिथि स्वामी	विशेष संज्ञा
१	१२°	अग्नि	नन्दा (शुक्लपक्षारम्भ)

२	२४°	ब्रह्मा	भद्रा
३	३६°	गौरी	जया
४	४८°	गणेश	रिक्ता
५	६०°	सर्प	पूर्णा
६	७२°	गुह्य	नन्दा
७	८४°	रवि	भद्रा
८	९६°	शिव	जया
९	१०८°	दुर्गा	रिक्ता
१०	१२०°	यम	पूर्णा
११	१३२°	विश्वदेव	नन्दा
१२	१४४°	हरि	भद्रा
१३	१५६°	कामदेव	जया
१४	१६८°	शिव	रिक्ता
१५	१८०°	शशि	पूर्णा (पूर्णिमा)
१६	१९२°	अग्नि	नन्दा (कृष्णपक्षारम्भ)
१७	२०४°	ब्रह्मा	भद्रा
१८	२१६°	गौरी	जया
१९	२२८°	गणेश	रिक्ता
२०	२४०°	सर्प	पूर्णा
२१	२५२°	कार्तिकेय	नन्दा
२२	२६४°	सूर्य	भद्रा

२३	२७६°	शिव	जया
२४	२८८°	दुर्गा	रिक्ता
२५	३००°	यमराज	पूर्णा
२६	३१२°	विश्वदेव	नन्दा
२७	३२४°	विष्णु	भद्रा
२८	३३६°	कामदेव	जया
२९	३४८°	शिव	रिक्ता
३०	३६०°	पितर/चन्द्रमा	पूर्णा (अमावस्या)

3.5 नाक्षत्रमान -

नाक्षत्र मान प्रसङ्ग में आचार्य कहते हैं कि,

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः।।

कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।

अन्त्योपान्त्यो पंचमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्।।

(सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय, श्लोक सं.-15-16)

अर्थात् प्रवहवायु के द्वारा प्रेरित होकर यह भचक्र सतत् भ्रमण होता है। भचक्र के एक भ्रमण काल को नाक्षत्रदिन कहते हैं।

पूर्णिमा तिथि से जिस नक्षत्र का योग होता है उसी नक्षत्र से उस मास का नाम होता है। कृतिका से दो-दो नक्षत्रों के योग से कार्तिकादि मास, अन्तिम-उपान्तिम और पंचम मास तीन-तीन नक्षत्रों के योग से निष्पन्न होते हैं। जैसे - चक्र में

पूर्णिमा तिथि के नक्षत्र	**मास**
कृत्तिका-रोहिणी	कार्तिक
मृगशीर्ष-आर्द्रा	मार्गशीर्ष
पुनर्वसु-पुष्य	पौष
आश्लेषा-मघा	माघ
पू. फा, उ. फा., हस्त	चैत्र
विशाखा-अनुराधा	वैशाख
ज्येष्ठा-मूल	ज्येष्ठ
पू.षा.-उ.षा.	आषाढ़
श्रवण-घनिष्ठा	श्रावण
शतभिष्, पू.भा., उ.भा.,	भाद्रपद
रेवती, अश्विनी, भरणी	आश्विन

अर्थात् जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े है। उदाहरणार्थ कुछ वर्षो की वर्तमान स्थिति -

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत्र	१४- चित्रा १५-स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६-विशाखा १७-अनु0	विशाखा अनुराधा	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१८-ज्येष्ठा १९-मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा

आषाढ़	२०-पू0षा0 २१-उ0षा0	उ0षा0	उ0षा0	पू0षा0	उ0षा0	पू0षा0
श्रावण	२२-श्रवण २३-धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४-शतभिषा	उ0भा0	पू0भा0	शत0 उ0भा0	उ0भा0	पू0भा0

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम संख्या सहित	पूर्णिमान्त काल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
आश्विन	२६- उ0भा0 २७- रेवती १-अश्विनी २-भरणी	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
कार्तिक	३-कृत्तिका ४-रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी+
मार्गशीर्ष	५-मृग0 ६-आर्द्रा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी
पौष	७-पुनर्वसु ८-पुष्य	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
माघ	९-आश्लेषा १०-मघा	मघा	आश्लेषा	पू0फा0+	मघा	आश्लेषा
फाल्गुन	११-पू0फा0 १२-उ0फा0 १३-हस्त	उ0फा0	पू0फा0	हस्त	उ0फा0	पू0फा0

कृतिका आदि मासो का संयोग कृतिकादि नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवें मासों का संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं जिन पर चंद्रमा पूर्णिमा के दिन रहता है। इस

युक्ति से तिथि, मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसार के ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उन पर दूसरे देशों के ज्योतिष शास्त्र के नकल करने का जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासों का यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहाँ यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचंभे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालों की ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। सारणी से यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है।

इस सारिणी में 1994-95 वि. के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पंजिका से लिखे गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान् 365 दिन 6 घंटा 9 मिनट 9-504 सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक 180 अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगों से लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहाँ दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

3.5.1 विशेष –

नाक्षत्र मान के अन्तर्गत परिगणना करने पर यह परिज्ञान होता है कि, सभी ग्रहों के मान की परिगणना नाक्षत्र मान के आधार पर किया जाता है। प्रति दैवसिक पंचांगस्थ चान्द्र नक्षत्रों का सर्वाधिक व्यवहार लोक में किया जाता है। जिससे विविध वर्ग में विभाजित करके देखा जा सकता है।

(क) पंचांगस्थ चान्द्रनक्षत्र - प्रतिदिन 1-1 नक्षत्रों का भोग चन्द्रमा करता है और लोक में इस नक्षत्र का सभी कार्यों में सर्वाधिक व्यवहार किया जाता है। जब भी ग्रह का भोगांश 30-20 कला होता है यानी 800 कला तो 1 नक्षत्र का खण्ड होता है। ऐसी परिस्थिति में नक्षत्र ज्ञान हेतु ग्रह के कलात्मक भोग में 800 का भाग देकर 1-1 नक्षत्र का मान जानते हैं।

यथा चन्द्रस्पष्ट - 0-20°-20'-10'',

कला बनाने पर 20 × 60 = 1200+20

= 1220 कला

1220/800 = भागफल 1 शेष 420

अर्थात् चन्द्रमा का अश्विनी नक्षत्र गत हो गया है तथा भरणी वर्तमान नक्षत्र है जिसका भोग 420 है। इस प्रकार इस भोगांश भुक्तांश से भोग्य एवं भुक्त घटी का आनयन भी किया जा सकता है।

(ख) नाक्षत्रदिन - प्रवहवायु के द्वारा 60 घटी में भचक्रभ्रमण द्वारा नाक्षत्रोदय द्वारा नाक्षत्रदिन की उत्पत्ति होती है। 23 घंटे 56 मिनट 4 सेकेण्ड के आसन्न यह काल होता है।

वस्तुतः क्रान्तिवृत्तीय खण्ड में 27 नक्षत्रों एवं 12 राशियों के विभागात्मक विभाजन के आधार पर नामांकित किया गया है। जिसमें छोटे खण्ड का नाम नक्षत्र एवं बड़े खण्ड का नाम राशि होता है जैसे-
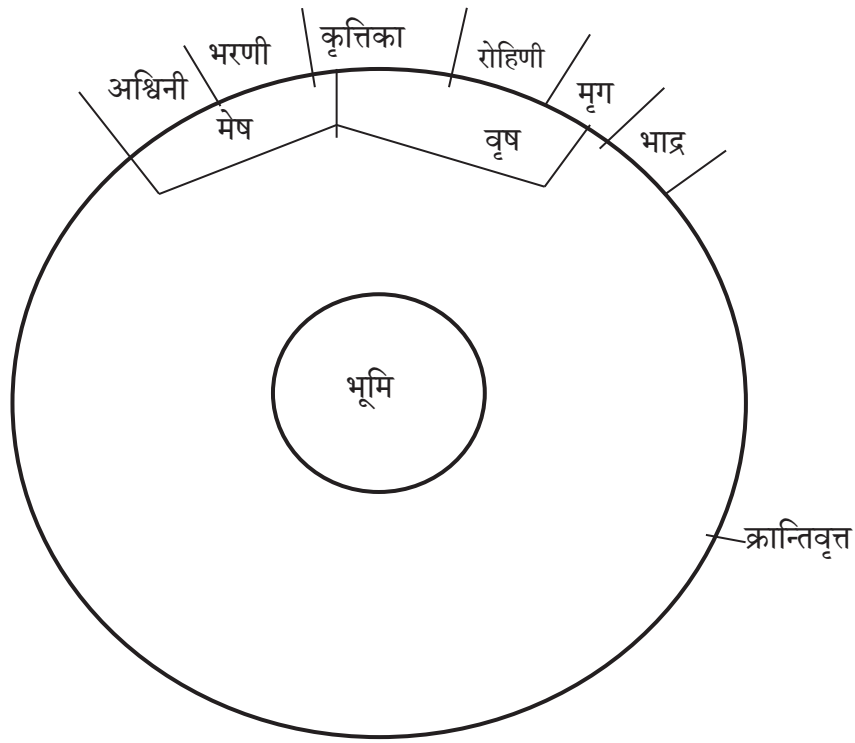
3.5.2 यहाँ नक्षत्रों की आकृति तथा तारें -

क्र.सं.	नक्षत्रम्	स्वस्पम्	तारासंख्या
1.	अश्विनी	अश्वमुखम्	3
2.	भरणी	योनिदृशम्	3
3.	कृत्ति	क्षुरः	6

4.	रोहिणी	शकटाकारम्	5
5.	मृगशीर्षः	मृगास्यम्	3
6.	आर्द्रा	मणिसृदशम्	1
7.	पुनर्वसुः	गृहाकारम्	4
8.	पुष्यः	शरः	3
9.	श्लेषा	चक्राकरम्	5
10.	मघा	भवनसदृशम्	5
11.	पु.फा.	मंचकाकारम्	2
12.	उ.फा.	शय्यासदृशम्	2
13.	हस्त	हस्ताकारम्	5
14.	चित्रा	मौक्तिकरूपम्	1
15.	स्वाती	प्रवालसदृशम्	1
16.	विशाखा	तोरणाकारम्	4
17.	अनुराधा	बलिसदृशम्	4
18.	ज्येष्ठा	कुंडलाकारम्	3
19.	मूलम्	सिंहपुच्छसदृशम्	11
20.	पू.षा.	गजदंतसदृशम्	2
21.	उ.षा.	मंचकाकारम्	2
22.	अभिजित्	×	×
23.	श्रवणम्	वामनरूपम्	3
24.	घनिष्ठा	मृदंगाकारम्	4
25.	शतभिषक्	वृत्ताकारम्	100
26.	पू.भा.	मंचाकारम्	2
27.	उ.भा.	यमलम्	2
28.	रेवती	मृदंगानुरूपम्	32

3.6 सारांशिका -

(क) प्रस्तुत पाठ में सावन मान की परिभाषा पूर्वक गोलीय तथा गणितीय स्थिति को विस्तृत रुप में बताया गया है।

(ख) चान्द्रमान वस्तुतः तिथिमान का ही एक पर्यायवाची नाम है जिसके अन्तर्गत 30 तिथियों की गणना तथा उनसे निर्मित मास-वर्षादि की परिचर्चा की गई है।

(ग) नाक्षत्रमान में नक्षत्रोदय तथा नक्षत्राश्रित मास की संज्ञा को अमान्त-पूर्णिमान्त के क्रम में पूर्णरुप से वर्णन किया गया है।

(घ) यद्यपि यह पाठ कालमान के अन्तर्गत निर्धारित है तथापि पूर्वोक्त तीनों प्रकार के मानों के वैशिष्ट्य तथा उनसे प्रभावित होने वाले विशेष स्थितियों को भी निर्देशित किया गया है।

3.7 प्रश्नोत्तर -

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के अन्तर्वर्ती काल को क्या कहते हैं?

- सावनदिन

सावनमास में दिनों की संख्या है? - 30 दिन

तिथियों की संख्या है? - 30

एक सौरवर्ष में सावनदिनों की संख्या है? - 365

पूर्णिमा का स्वामी कौन है? - चन्द्रमा

द्वितीया तिथि का स्वामी है? - ब्रह्मा

1 तिथि में रवि-चन्द्रान्तर होता है? - 12 अंश,

वैशाख मास की पूर्णिमा से सम्बद्ध नक्षत्र हैं? - विशाखा

चान्द्रवर्ष में तिथिसंख्या है? - 360 दिन

एक सौरवर्ष में चान्द्रदिन होता है ? - 354 दिन लगभग

3.8 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. सावनमान का विस्तृत परिचय दें।
2. मासों के नाम की मीमांसा करें।
3. चान्द्रमान की विशेषता लिखें।

इकाई – 4 अहोरात्र व्यवस्था

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना -

अहोरात्र पद का अर्थ होता है दिन एवं रात। वस्तुतः हम सभी मनुष्यगण भूमि के पृष्ठ भाग पर विद्यमान हैं । जिस प्रकार कदम्ब के पुष्प के चारों तरफ उसके केशर प्रसृत हैं उसी प्रकार से इस भूमि के चारों तरफ लोग एवं जनजीवन व्याप्त है। सूर्य एक है। जिस सौरमण्डल में हम सभी रहते हैं उसमें सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहोपग्रहों तथा तारों की स्थिति है। यही कारण है कि दिन-रात्रि की परिभाषा करते समय आचार्य भास्कर कहते हैं कि "दिनं दिनेशस्य यतोऽत्रदर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने" अर्थात् जहाँ सूर्य का दर्शन हो वहाँ दिन तथा जिस स्थान पर सूर्य का अदर्शन हो वहाँ रात्रि परिभाषित की गई है परन्तु दिन-रात के परिज्ञान में मुख्य भूमिका क्षितिज की होती है। प्रत्येक व्यक्ति जहाँ स्थित है वहाँ उसका पृष्ठीय क्षितिज होने से भिन्न-भिन्न क्षितिजवृत्त होता है और इसी कारण दिन रात्रि मान भिन्न-भिन्न होते हैं । यथा चित्र द्वारा सूर्य जिस स्थान में जाता है वहाँ दिन होता है तथा जहाँ सूर्य का अदर्शन
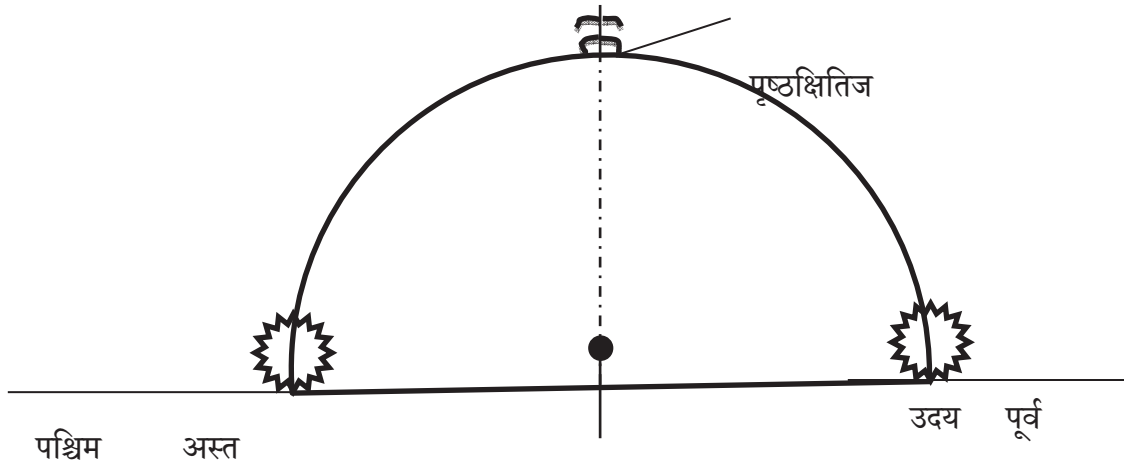
होता है वहाँ रात्रि होती है। प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत अहोरात्र के भेद एवं विविध स्थितियों का निरुपण किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य –

इस पाठ के द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होगी।

(क) अहोरात्र की परिभाषा परिज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) भिन्न-भिन्न स्थानों के अहोरात्र ज्ञान में निपुणता मिलेगी।

(ग) 2 मास तथा 4 एवं 6 मास के दिनमान वाले स्थान का ज्ञान होगा।

(घ) भौगोलिक स्थिति के ज्ञान एवं सूर्यगति का ज्ञान होगा।

(ङ) क्षैतिज अन्तर के कारण अहोरात्र के अन्तर का ज्ञान होगा।

(च) विभिन्न प्रकार के अहोरात्र के भेद का ज्ञान होगा।

4.3 देवताओं और असुरों के दिन रात (अहोरात्र) के विभाग -

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम् ।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वाम-सव्ये दिनक्षपे।।47।।
मेषादावुदितस्सूर्यः त्रीन् राशिनुदगुत्तरे।
संचरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम्।।48।।
कर्क्यादिसंचरर्धस्तद्वद् अह्नः पश्चार्थमेव सः।
तुलादीन् त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम्।।49।।
अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
अहोरात्रप्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात्।।50।।

-(सू.सि. भूगोलाध्याय)

अर्थात् जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिन रात एक दूसरे से विपरीत होता है। मेष राशि के आदि में उदय होकर सूर्य उत्तर की तीन राशियों मेष, वृष और मिथुन में उत्तर की ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरु-निवासियों अर्थात् देवताओं के दिन का पूर्वार्ध पूरा करता है। उसी प्रकार कर्क के राशि आदि से आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुला में वह उनके दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में जाता हुआ, वह असुरों के दिन का पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसलिये देवताओं और असुरों के अहोरात्र एक दूसरे के विपरीत होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है।

विशेष - जिस दिन सूर्य वसन्त सम्पात बिन्दु पर आता है उस दिन को विषुव-दिन कहते हैं। इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुव से क्षितिज पर रहता है इसलिए उत्तरध्रुव के निवासियों देवताओं को और दक्षिण ध्रुव के निवासियों असुरों को क्षितिज पर देख पड़ता है परन्तु सूर्य की गति उत्तर होने के कारण वह देवताओं को उदय होता हुआ और असुरों को अस्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। अर्थात् इस दिन से देवताओं के दिन का और असुरों की रात का आरम्भ होता है। सूर्य के इस स्थान को अर्थात्

वसंत-सम्पात-बिन्दु को मेष का आदि स्थान कहा गया है। इसके बाद सूर्य उत्तर की ओर प्रतिदिन बढ़ता है। जब यह वसंत-सम्पात बिन्दु से 90 अंश पर पहुँचता है तब इसका उत्तर की ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्य की परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसी दिन देवताओं का मध्याह्न होता है और असुरों की मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात-बिन्दु से 90 अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियाँ होती हैं। जब सूर्य कर्कराशि के आरम्भ से लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियों को पार करके तुला के आदि में पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओं को यह अस्त होता हुआ दिखाई पड़ता है। इसलिये इस समय से देवताओं की रात और असुरों के दिन का आरम्भ होता है। सूर्य का यह स्थान शरद्-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिन को भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में रहता है तब तक असुरों का पूर्वाह्न और देवताओं की पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशि में पहुँचता है तब देवताओं की मध्यरात्रि और असुरों का मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियों में होता है तब असुरों का अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्य का एक चक्र जितने समय में पूरा होता है उतने समय में देवताओं या असुरों का एक अहोरात्र होता है परन्तु देवताओं का जो दिन है वही असुरों की रात और देवताओं की जो रात है वह असुरों का दिन होता है।

इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियों का आरम्भ वसंतसम्पात से माना गया है न कि निरयण मेष से, जो आजकल वसंत-सम्पात से 23 अंश से भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पात से सदैव आगे होता जा रहा है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। 1400 वर्ष से कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ-साथ थे, इसलिए इस समय मेष का स्थान वहीं था जिसे आजकल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आजकल ज्योतिषियों में दो भेद हो गये हैं, सायन-वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायनवादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पात को ही मेष का आदिस्थान मानते हैं परन्तु निरयण-वादी लोग निरयण मेष को राशियों का आरम्भ स्थान मानते हैं। सूर्य-सिद्धान्त में सायन और निरयण का भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिपिबद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आजकल निरयण मेष का आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनों की चर्चा है।

देवताओं या असुरों के अहोरात्र के वर्णन से, जो सूर्य-सिद्धान्त में कई जगह आया है, यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्ष से समान होता है और यही वर्ष का स्वाभाविक मान है

परन्तु इस अहोरात्र का प्रमाण सूर्य के भगण-काल के समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकार के श्लोक 29 और 37 के अनुसार 365.2658756 मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगणकाल शुद्ध नाक्षत्र-सौर वर्ष से भी .002382 दिन बड़ा है। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त में सायन वर्ष का मान स्थूल रूप से सूर्य के भगण काल के समान मान लिया गया है।

4.3.1 देवासुरों का मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचे का क्या अर्थ है - इस प्रसंग में प्राप्त होता है कि,

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः।।51।।
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंका सिद्धपुराश्रिताः।।52।।
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाऽप्यधः।।53।।

अर्थात् देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि अयन के अंत में एक दूसरे के विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर मानते हैं। जो लोग भूव्यास की दिशा में रहते हैं वे भी दूसरे को अपने से नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्ष के (यमकोटि नगर के) रहने वाले केतुमाल देश के (रोमक नगर के) रहने वालों को और लंका नगर के रहने वाले सिद्धपुर वालों को अपने से नीचे समझते हैं। इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थान को ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाश में स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहाँ है?

विशेष- 51वें श्लोक का पूर्वार्ध 50वें श्लोक से सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध में यह बतलाया है कि देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगे के दो श्लोकों में उदाहरण के साथ बतलाया गया है।

अयन के अन्त में देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों के लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचे की बात भी समझना कठिन नहीं है क्योंकि सब लोग उस दिशा को ऊपर मानते हैं जो आकाश के मध्य में होता है और इसकी विपरीत दिशा को नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगह के रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यास के दूसरे सिरे पर रहने वाले को नीचे समझते हैं।

4.3.2 दिन- रात्रि (अहोरात्र) के छोटे एवं बड़े होने के कारण

अतश्च सौम्ये दिवसो महान्स्याद्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये।

द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे।।5।।

-सि.शि.

अर्थात् - उत्तर गोल में चर तुल्य काल के अनन्तर पूर्व में सूर्योदय और दक्षिण गोल में चर तुल्य काल के अनन्तर सूर्योदय होता है। अतः उत्तर में गमनशील ग्रह का दिनमान 30 घटी से अधिक एवं दक्षिण गोल में 30 घटी से कम का दिन मान होता है।

उपपत्ति- अहोरात्रवृत्त उन्मण्डल के पूर्व सम्पात से याम्योत्तराहोरात्रवृत्त सम्पात निरक्षखमध्य तक का समय 15 घटी = 6 घण्टा है।

अतः 15 घटी + चर घटी = दिनार्द्ध।

अतः 2 (15 घटी + चर घटी) = 30+2 चर घटी = दिन मान तथा 15 घटी-चर = रात्र्यर्ध।

अतः 2(15घटी-चर) = 30-2 च = रात्रि मान।

तथा 30+2 चर + 30-2 च = अहोरात्रमान दक्षिण गोल में होता है। उक्त क्रिया का समीकरण वैपरीत्य स्वतः सिद्ध हो जाता है।

4.4 सर्वदा एकसमान मान के रात्रि-दिन (अहोरात्र) का स्थान -

सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत्।
षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः।।6।।
लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र।
यावच्च याम्या सततं तमिस्रा ततश्च मेरौ सततं समार्धम्।।7।।

- सि.शि0, गोला.

अर्थात् - दिन-रात्रि की परमाधिकता और परम लघुता क्षितिज वृत पर निर्भर है, -क्योंकि मात्र

उन्मण्डल ही वहाँ एक क्षितिज वृत्त है।

उपपत्ति - उदाहरण द्वारा समझाया जा रहा है।

जिस देश में अक्षांश = 70 है तो उस देश में लम्बांश = 90°-70 = 20° । उस देश में निरक्ष क्षितिज वृत्त दक्षिण क्षितिज से 20° ऊपर और उत्तर क्षितिज से 20° नीचे लगा रहेगा।

जिस समय सूर्य की क्रान्ति 20° के तुल्य होगी उस समय उत्तर क्षितिज में अर्द्धोदित रवि बिम्ब होकर, मध्याह्न में दक्षिण क्षितिज से ऊपर याम्योत्तर वृत्त में रवि 40° उन्नत रहेगा। अतः उस समय 15 + 15 = 30 दिनार्ध, अतः दिनमान = 60 घटी होता है।

∴ रात्रि मान = 0

इसी के द्वितीय दिन में क्रान्ति की वर्द्धमान स्थिति में सूर्य उत्तर क्षितिज का स्पर्श नहीं करेगा। इस प्रकार परम क्रान्ति तुल्य सूर्य की स्थिति में इस प्रकार मिथुनान्त क्रान्ति 12°+8° + 4° =24° में सूर्य उत्तर क्षितिज से 4 अंश ऊपर-ऊपर ही भ्रमण करेगा, पुनः इसी क्रम से परमोत्तरा क्रान्ति की अपचीयता में सूर्य अवरोहण अस्त क्षितिज की ओर जावेगा, अतः 20 अंश तुल्य क्रान्ति तक सदा सूर्य दर्शन होगा तब तक दिन ही रहेगा। तथा दक्षिणगोल में तब तक सूर्य के क्षितिज से नीचे रहने तक सदा दक्षिण गोल में रात्रि होगी।

इस प्रकार मेरु = ध्रुव का अक्षांश = 90 लम्बांश = 90-90 = 0 शून्य, अतः मेरु में भूपरिधि = 0 बिन्दु मात्र भूपरिधि से ध्रुव स्थान में भूपरिधि का अभाव। ध्रुव केन्द्र से 90 अंश की दूरी पर ध्रुव का क्षितिज होने से मेष-वृषभ मिथुनान्त सूर्य में ध्रुव में 15 घटी = 3 महीने तथा कर्क-सिंह-कन्यान्त में ध्रुव में सूर्यास्त होने से 15 घटी = 3 महीने मध्याह्न से सूर्यास्त का समय = 30 घटी = 6 महीने का दिन उत्तर ध्रुव में होगा। तथा तुलादि से मीनान्त 6 महीने तक जब सूर्य रहेगा तो दक्षिण ध्रुव के क्षितिज के ऊपर दक्षिण ध्रुव में दिन रहेगा, तो ऊत्तर ध्रुव में रात्रि रहेगी। गोल दर्शन से स्पष्ट है।

4.4.1 मेरु स्थान की दिन-रात्रि (अहोरात्र) -

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथा च दैत्यानाम्।
उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्धोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम्।।8।।
उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वे परितो भ्रमन्तमादित्यम्।
सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये।।9।।

उत्तर ध्रुव में देवस्थान, दक्षिण ध्रुव में राक्षस स्थान होने से, नाड़ीवृत्त दोनों ध्रुवों का क्षितिजवृत्त होता

है। क्योंकि दोनों ध्रुव उन दोनों के आकाश खमध्य में होते हैं।

अतः उत्तर गोल में क्षितिज के ऊपर भ्रमण करते हुये देवता लोग, सव्य रूप में, असुर लोग अपसव्य रूप में उत्तरगोल में निरन्तर 6 महीने तक एवं दक्षिण गोल में निरन्तर देव दानव, भ्राम्यमाण सूर्य को देखते हैं।

उपपत्ति - गोल दर्शन से स्पष्ट है कि क्षितिज के ऊपर अहोरात्र क्षितिज सम्पात के उदय सम्पात से अहोरात्र क्षितिज के अस्त सम्पात तक दिन मान कहना परिभाषया समीचीन है। अतः नाड़ीवृत्त के समानान्तर मेषादि 6 अहोरात्र वृत्त नाड़ी वृत्त से उत्तर होने से उत्तर ध्रुव के उदय क्षितिज के ऊपर रहने से वहाँ निरन्तर 6 महीने का दिन एवं तुलादि 6 राशियाँ क्षितिज के नीचे रहने से 6 महीने की रात्रि उत्तर ध्रुव में होती है और ऐसी स्थिति में दक्षिण ध्रुवीय देशों में दिन-रात्रि का मान व्यस्त समझना चाहिए।।।।

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति।
कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितृणां शशिपृष्ठवासिनाम्।।10।।

- सि. शि. -गोला

अर्थात् - भूपृष्ठ स्थित मानव की तरह चन्द्रपृष्ठस्थ पितरों का दिनमान-जहाँ सूर्यदर्शन है वहाँ दिन, सूर्यदर्शन रहित भूपृष्ठ में रात्रि होती है। जैसे भूपृष्ठस्थ प्राणियों की दिन रात्रि होती है उसी भाँति चन्द्रपृष्ठस्थ पितरों की भी दिन रात्रि होती है।।।।

4.4.2 संहिता में अहोरात्र व्यवस्था -

दिनं सुराणामयन यदुत्तरं निशेतरत्सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्तनाय तत्।।11।।
द्वंन्द्वान्तमारोहति यैः क्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस्तत्रैव तिष्ठन्न विलोकयते किम्।।12।।

- सि. शि. -गोला

मध्य रात्रि के पश्चात् सूर्य दिनोन्मुख हो जाने से मध्य रात्रि से मध्याह्न तक के समय की दिन संज्ञा एवं मध्य दिन के बाद रात्रि की उन्मुखता से, मध्य दिन से रात्रि मध्य तक की रात्रि संज्ञा संहिता शास्त्रकारों के मत से हुई है। इस आधार से उत्तर ध्रुव में कर्कादि से लेकर धन्वन्त तक रात्रि, दक्षिण ध्रुव में दिन तथा मकरादि से मिथुनान्त तक उत्तर ध्रुव में दिन, दक्षिण ध्रुव में रात्रि होती है। यह मत सांहितिकों का है जो गोल युक्ति से बहिर्भूत है।।।।

4.4.3 पितरों का अहोरात्र -

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम्॥13॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥14॥

- सि. शि. -गोला

चन्द्रमा के ऊपरी पृष्ठ पर पितर लोग (भौतिक शरीर छोड़ कर जो मृतात्मा रहते हैं।) अपने नीचे पृथ्वी को देखते हैं। जैसे भूपृष्ठ वासी चन्द्रमा को ऊपर देखते हैं वैसे ही चन्द्रपृष्ठ वासी पृथ्वी को आकाश में अपने ऊपर देखते हैं। अर्थात् चन्द्रपृष्ठ वासियों के लिए आकाशस्थ पृथ्वी चन्द्रमा की तरह देखी जाती है।

भू गर्भाभिप्रायिक अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठस्थ मृतात्मा अपने अपने स्थान से ऊपर सूर्य को देखते हैं इसलिए अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न अर्थात् दिनार्ध होता है।

अमान्त समय से 6 राशि की दूरी पर पूर्णान्त होने से पूर्णान्त में पितृलोकाभिप्रायिक निशीथ अर्थात् रात्र्यर्द्ध पितृलोक में होता है।

इस प्रकार निश्चित स्थान से 3 राशि 900 आगे अर्थात् कृष्णपक्ष की साढ़े सप्तमी को पितृलोकाभिप्रायिक क्षितिज में सूर्योदय होता है और इसी सिद्धान्त से शुक्लपक्ष साढ़े सप्तमी ($7\frac{1}{2}$) को पितृलोकाभिप्रायिक चन्द्र पृष्ठ में सूर्यनारायण अस्त होते हैं।

अभ्यास प्रश्न –

1. अहोरात्र पद का क्या अर्थ है?
   क. रात्रि ख. दिन ग. दिन-रात घ. अहर्गण
2. जिस दिन सूर्य वसन्त सम्पात बिन्दु पर आता है, उस दिन को क्या कहते है?
   क. भूदिन ख. विषुव दिन ग. कुदिन घ. चान्द्रदिन
3. चरखण्ड कहाँ होता है?
   क. क्रान्तिमण्डल में ख. द्युरात्रमण्डल में ग. विषुव मण्डल में घ. दृग्वृत्त में
4. निरक्ष देश का अक्षांश कितना होता है?
   क. ३०° ख.४०° ग. ०° घ. ६०°

5. जिस देश में अक्षांश ७० है, तो लम्बांश कितना होगा?

क. २०° ख.३०° ग. ४०° घ. ५०°
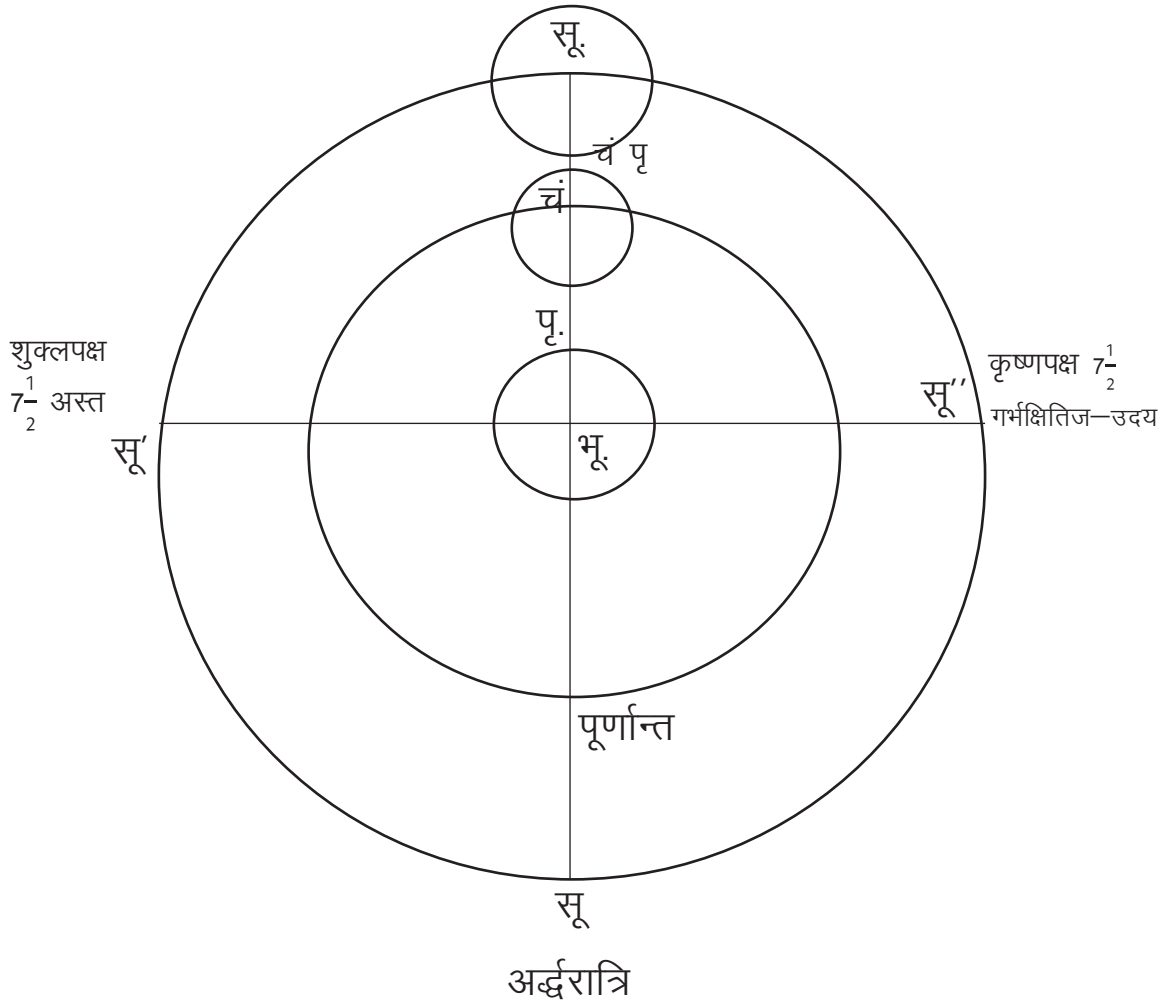
उत्पत्ति - चित्र देखें -

सूर्य कक्षा में गर्भाभिप्रायिक अमान्त काल में सू = सू = मध्याह्न या अमान्त

चन्द्र कक्षा में च = अमान्त

पृथ्वी = पृ.

भू = भूगर्भ केन्द्र

सू भू सू = पृथ्वी में गर्भ क्षितिज।

सू सू' = अमान्त के बाद की सार्द्ध सात $(7\frac{1}{2})$ तिथियाँ

पूर्णान्त = सू'' = अर्द्धरात्रि।

सू = पितृलोकाभिप्रायिक सूर्योदय = $(7\frac{1}{2})$ कृष्णपक्ष की, $(7\frac{1}{2})$ तिथियाँ=चं.सू.=90° दर्शान्त समय में चन्द्रपृष्ठाभिप्रायिक ख मध्य के शिर में सूर्य बिम्ब होने से चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न देखा जाना क्षेत्र दर्शन से स्पष्ट है।

विशेष- अमान्त काल अनेक प्रकार का होता है।

सूर्य भ्रमण मार्ग और और चन्द्र भ्रमण मार्ग की एकता अर्थात् चन्द्रशर के अल्पता की स्थिति के समय उक्त क्षेत्र सुतरां समीचीन है। किन्तु चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है, चन्द्र बिम्बोपरि कदम्ब सूत्र जहाँ क्रान्तिवृत्त में लगेगा, उस जगह पर सूर्य बिम्ब होने से भूपृष्ठ से चन्द्र सूर्योपरिगत रेखा में दोनों सूर्य चन्द्र बिम्बों की स्थिति स्वल्पान्तर शर के अवसर पर ठीक हो सकती है। चन्द्रमा के शराभाव विशिष्ट अमान्त में उक्त क्षेत्र सुतरां सही है।

चन्द्रमा की शर सत्ता की स्थिति में तथा भूपृष्ठ क्षैतिज एवं चन्द्रपृष्ठ एवं चन्द्रपृष्ठ क्षितिजों में वृत्त की स्थिति वश अन्य अनेक संस्कार विशेषों से उक्त क्षेत्र की रचना अन्य प्रकार की होगी। जो यहाँ पर व्याख्यान या क्षेत्र से नहीं दर्शायी जा सकती है और यह गुरुमुख से ग्रन्थाध्ययन से ही सम्यक् स्पष्ट हो सकती है।।।।

4.5 सारांशिका –

इस पाठ में निम्नलिखित विषय विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

(क) अहोरात्र की परिभाषा तथा व्यवस्था पूर्णरुपेण प्रतिपादित किया गया है।

(ख) विभिन्न अक्षांश के स्थानों में अहोरात्र का भेद एवं उसका कारण बताया गया है।

(ग) चन्द्रपृष्ठोर्ध्व पितरों के दिन-रात्रि की व्यवस्था को भी निर्देशित किया गया है।

(घ) मेरु पर दिन-रात्रि की व्यवस्था उपपत्ति के सहित बताई गई है।

(ङ) सचित्र विविध अहोरात्र सन्दर्भित विषयों को सरल एवं सुबोध ढंग से व्याख्यायित किया गया है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

कुदिन – कु का अर्थ होता है – भू अर्थात् पृथ्वी। इस प्रकार कुदिन का तात्पर्य है – भूदिन। 'उदयादुदयं भानो: भूमे: सावन वासर:' परिभाषा के अनुसार एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय पर्यन्त भूदिन होता है।

अहोरात्र – अहोरात्र पद का अर्थ है – दिन-रात।

चरखण्ड – चरखण्ड द्युरात्रवृत्त अर्थात् अहोरात्र वृत्त में होता है।

अमान्तकाल – अमावस्यान्तकाल।

दिनार्द्ध – दिन के आधे भाग को दिनार्द्ध कहते है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ख
3. ख
4. ग
5. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

ग्रन्थ नाम	लेखक/टिका	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ माधव प्रसाद पुरोहित	चौखम्भा प्रकाशन
सिद्धान्तशिरोमणि	आचार्य सत्यदेव शर्मा	''
ग्रहलाघवम्	गणेश दैवज्ञ/ आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय	''
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	कमलाकर भट्ट/गंगाधर मिश्र	''

बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहोरात्र से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
2. 6 मासात्मक दिन एवं रात्रि का विवेचन करें।
3. मेरु पर अहोरात्र की व्यवस्था लिखें।
4. पितृ जनों के अहोरात्र प्रमाण का उल्लेख करें।
5. गोलीय आलेख द्वारा दिन-रात्रि की व्यवस्था दिखावें।

इकाई – 5 अधिमास एवं क्षयमास

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना -

भारतीय काल गणना में मास का अत्यधिक महत्त्व है। कालमान के अनुसार चान्द्रमान के आधार ही मास की गणना ज्योतिष में बताई गई है। ग्रहसाधन प्रसंग में अधिमास एवं क्षयमास का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। भारतीय कालगणना के अन्तर्गत सौर एवं चान्द्र दोनों प्रकार के मानों को स्वीकार किया गया है ताकि दोनों का व्यवहार भी किया गया है। यही कारण है कि अधिकमास एवं क्षयमास उत्पन्न होते हैं तथा उनका साधन भी शास्त्रों में किया गया है। न केवल सिद्धान्त ग्रन्थों में अपितु फलित एवं मुहूर्त ग्रन्थों में भी अधिमास एवं क्षयमास की चर्चा की गई है।

5.2 उद्देश्य –

इस पाठ के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

(क) अधिमास के लक्षणज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।

(ख) अधिमास की उत्पत्ति के मूल का ज्ञान होगा।

(ग) क्षयमास की उपपत्ति ज्ञात होगी।

(घ) क्षयमास की संभावना का ज्ञान भी होगा।

(ङ) अधिमास की संभावना का मध्यम मान ज्ञात होगा।

(च) क्षयमास कब-कब होगा यह स्फुटित होगा।

5.3 अधिकमास एवं क्षयमास का लक्षण

सिद्धान्तशिरोमणि के आधार पर अधिकमास क्षयमास का लक्षण -

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्या -
त्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात्॥1॥

सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ में श्री भास्कराचार्यजी ने कहा है कि जिस चान्द्र मास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है तो उस मास की अधिकमास संज्ञा होती है युक्ति अनुसार बात यह है कि चान्द्र महिना वही होता है कि जिसमें सूर्य की संक्रान्ति होती है। इसलिये संक्रमण रहित मास अधिक या मल या पुरुषोत्तम होता है। एवं जिस मास में अर्थात् चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हो उस चान्द्रमास को क्षयमास कहते हैं। यह क्षयमास प्रायः अभी कार्तिकादि तीन मास में होता है या यों समझिये कार्तिक, अगहन, पौष ही क्षय हो सकता है किन्तु किसी किसी के पक्ष में 'कार्तिक आदि येषां ते.

अर्थात् कार्तिक है आदि में जिसके या यों समझिये अगहन, पौष, माघ इन्हीं में क्षय की संभावना होती है, ऐसा कथन है। तथा जिस वर्ष में क्षय मास होता है उस वर्ष में दो अधिक मास 1 तीन मास के पूर्व तथा 1 अनन्तर से होता है। यहाँ किसी के मत में प्रथम अधिकमास तीस दिन का और अन्य पक्ष में साठ दिन का मानते हैं।

मुहूर्तमार्तण्ड में बताया गया है कि -

> एकस्मिन्वर्षे अधियुगे अधिकद्वये सति पूर्वोऽधिमासो
> प्रथमोऽधिमासः प्राकृतः प्राकृतवज्ज्ञेयः। अधिकवन्न त्याज्यः।
> अर्थादुत्तरोऽधिकमासो मलमासस्तदुक्तम्।
> मासद्वयेऽब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा।
> प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्य मलिम्लुचः।।

यदि एक ही वर्ष में क्षय तथा दो अधिमासों की प्राप्ति हो तो क्षय से प्रथम अर्थात् पहिला अधिकमास प्राकृत होता है अधिक की तरह त्याज्य नहीं होता है अर्थात् उत्तर वाला या यों समझिये क्षय के बाद वाला अधिक मास मलमास होता है। ऐसा कहा गया है।

जैसे-यदि एक वर्ष में दो चान्द्र मासों में सूर्य की संक्रान्ति न हो तो क्षय से पूर्ववर्ती महिना प्राकृत अर्थात् तीस दिन का होता है। क्षय से बाद वाला अधिक होता है। इस विषय में विचारणीय है कि,

पितामहः -

> अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यन्ते फाल्गुनादयः।
> सौम्यपौषौ क्षयो नित्यं भवेतामिति निश्चितम्।।3।।
> क्षयो वाप्यधिमासो वा स्यादूर्ज इति निश्चितम्।
> न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघे वै परिकीर्तितः।।4।।

ब्रह्माजी का आदेश है कि फागुन आदि आठ महीनों में से ही अधिक मास और अगहन व पौष मास क्षय नित्य होता है। ऐसा निश्चित प्राय है।

क्षय के विषय में यह भी संभावना है कि वह क्षय व अधिमास कार्तिक में हो सकता है तथा माघ महीना न तो अधिक व क्षय हो सकता है।

आचार्य चण्डेश्वर द्वारा लक्षण:-

> दर्शद्वयमतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः।
> मलमासः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः।।

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि यदि दो अमावास्याओं के अन्तर सूर्य की संक्रान्ति न होने से उक्त मास को मलमास कहते हैं। इस मलमास में समस्त शुभ काम नहीं करना चाहिये।

बादरायण के आधार पर -

षष्टिभिर्दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः।
आद्यो मलिम्लुचः पक्षो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः।।

आचार्य बादरायण का कथन है कि, यह मलमास साठ दिन का होता है। पहला पक्ष तो यह है कि क्षय पूर्ववर्ती अधिक मास अर्थात् मलमास 60 दिन का।

दूसरा पक्ष है कि पहिले वाला अधिमास प्राकृत अर्थात् 30 तीस दिन का होता है। अब भी इस देश में दोनों धारा बहती हैं।।

ब्रह्म सिद्धान्त के आधार पर लक्षण -

चान्द्रो मासो ह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः।।

ब्रह्मसिद्धान्त में प्रतिपादित है कि जिस चान्द्र महिना में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है। उसे मलमास कहते हैं।।

कालनिर्णय द्वारा लक्षण किया है कि -

सङ्क्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मण्डलाद्बहिरनिर्गते विधौ।
उच्यतेऽथ स हि सङ्क्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः।।

इसमें कहा है कि यदि सूर्य मण्डल से बाहर न निकले हुए चन्द्र के मध्य काल में संक्रमण होने से शुद्ध मास एवं इसके विपरीत में मलिम्लुच मास होता है।

मुहूर्तमार्त्तण्ड द्वारा लक्षण बताया गया है कि -

ब्रह्माद्यैरिनमण्डलान्त उदितश्चान्द्रस्त्वमान्तः परै-
र्मासोऽसङ्क्रमणो द्विसङ्क्रमणको ज्ञेयोऽधिकोऽथो क्षयः।।

ब्रह्मा आदि सिद्धान्त कर्ताओं ने सूर्य मण्डल के अन्तर संयोग तक के चान्द्रयोग से मास और मण्डल के बाहर चन्द्र के जाने पर यदि संक्रान्ति हो तो अधिक मास अर्थात् ब्रह्मादि पक्ष में मण्डलान्त मास और अन्य मत में अमान्त से अमान्त तक। एक चान्द्र मास जब ही कहलाता है जब इसके मध्य सूर्य की संक्रान्ति होती है तो चान्द्रमास अन्यथा अधिकमास होता है। जिस चान्द्रमास में अर्थात् दो अमावस्याओं के भीतर यदि दो सूर्य की संक्रान्ति हों तो क्षयमास होता है।।।।

गर्ग मत से लक्षण बताया गया है कि -

यदा चन्द्रोऽर्कबिम्बस्थस्ततः सङ्क्रमते रविः।

दानव्रतादि यज्ञादि वर्ज्यं तत्राधिमासके।।

जब कि सूर्य बिम्बस्थ चन्द्रमा होता है तो उसके बाद यदि सूर्य की संक्रान्ति होती है तो अधिक मास होने के कारण दान, व्रत, यज्ञादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।।

लल्लमत से अधिक मास की परिभाषा होती है कि -

यदा शशी याति गभस्तमण्डलं दिवाकरः सङ्क्रमणं करोत्यनु।
विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुकस्तदाधिमासः कथितः स्वयम्भुवा।।

आचार्य लल्ल का कहना है कि, जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है और इसके पश्चात् सूर्य की संक्रान्ति यदि होती है तो अधिक मास होता है। इसमें विवाह, यज्ञ, उत्सव आदि नहीं करना चाहिये। ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है।

5.3.1 अधिमास एवं क्षयमास में त्याज्य कर्म -

गर्ग के मत से अधिक में त्याज्य कर्म -

अग्न्याधानं प्रतिष्ठां च यज्ञो दानव्रतानि च।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।।20।।
गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनम्।
यानं च गृहकर्माणि मलमासे विवर्जयेत्।।21।।

गर्गाचार्य जी का कहना है कि अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म, व्रतबन्ध, देवतीर्थों में गमन, विवाह, अभिषेक, यान और घर के काम अर्थात् गृहारम्भादि कार्य अधिक मास में नहीं करना चाहिये।।।।

तथा च सूर्योदये -

सूर्योदय के मत से मलमास में कर्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान

आवश्यककर्म मासाख्यं मलमासमृताब्दिकम्।
तीर्थेभच्छाययोः श्राद्धमाधानांगपितृक्रियाम्।।22।।
कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षे मध्ये चेत्सर्वदाधिकम्।
तत्र स्यान्मासिकं मृत्युं मासात्स द्वादशो यदि।।23।।
प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तथा।
श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रेण स्याद्वर्ज्यमतोऽन्यथा।।24।।
काम्यारम्भं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिम्।
मेखला चौलमांगल्याग्न्याधानोद्यापनक्रियाः।।25।।

वेदव्रतमहादानाभिषेकान्वर्द्धमानकम्।
इष्टं पूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदा कृतौ।।26।।

सूर्योदय नामक ग्रन्थ में कहा है कि मास में विहित आवश्यक कार्य, मलमास में मरने वाले का वार्षिक श्राद्ध, तीर्थ व गजच्छाया श्राद्ध, आधानाङ्गीभूत पितरों की क्रिया करना चाहिये। यदि मध्य में किसी के मलमास हो तो एक मास का अधिक ही श्राद्ध होगा, अर्थात् जिस मास में यह प्राप्त होता है उसकी द्विरावृत्ति होती है। यदि मल में ही किसी की मृत्यु हो तो उससे जो बारहवाँ मास हो उसमें प्रेत क्रिया को समाप्त करना चाहिये। और आभ्युदयिक तथा श्यामाकाग्रयण कृच्छ्र के साथ करना चाहिये।

काम्य कार्य का आरम्भ, वृषोत्सर्ग, पर्वोत्सव, उपाकृति, मेखला, चौल, मांगल्य, अग्न्याधान, उद्यापन कर्म, वेदव्रत, महादान, अभिषेक, वर्द्धमान, इष्ट तथा पूर्त कर्म नहीं करना चाहिये और किसी की विधि का विनाश न हो ऐसे कार्य, इसमें करना चाहिये।।।।

स्मृतिरत्नावल्याम् -

स्मृतिरत्नावली के आधार पर कर्त्तव्य -

प्रवृत्तं मलमासात्प्राग्यत्काम्यमसमापितम्।
आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यमसंशयम्।।27।।

स्मृति रत्नावली नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित है कि, जिस काम्य प्रयोग का आरम्भ मलमास से पूर्व ही हो गया है उसके दिनों की समाप्ति में जो होना चाहिये वह इस अधिक मास में विहित है। अर्थात् उसकी समाप्ति अवश्य ही संदेह रहित होकर करना चाहिये।।।।

फलविवेके-

फल विवेक के आधार पर निषिद्ध कर्म -

मलमासे तु यो यात्रां कुर्यान्मोहेन भूपतिः।
पराजयो भवेत्तस्य कलहो जीवनाशनम्।।।।

फल विवेक नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो राजा मोह के वशीभूत होकर यात्रा इसमें करता है उसकी सेना के सिपाहियों का कलह के साथ नाश और राजा का पराजय होता है।।।।

गर्गः -

गर्ग के मत से

सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे।
तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि।।29।।

महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत्।
स्पष्टमासे विशेषाद्धयाविहितं वर्जयेन्मले।।30।।

गर्गाचार्य जी का आदेश है कि सोमयागादि नित्य कर्म, आग्रयण, आधान, चातुर्मास्यादि, महालय, अष्टका श्राद्ध, उपाकर्मादि मलमास में नहीं करना चाहिये। ये सब स्पष्ट मास में ही होते हैं।

बृहस्पतिः -

बृहस्पति जी के आधार पर -

अग्न्याधानप्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः।।।।
मांगल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत्।।।।

गुरु जी कहते हैं कि, अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दानव्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, मांगल्य और अभिषेक मलमास में नहीं करना चाहिये।।।।

मरीचिः -

मरीचि जी के वचन से निषिद्ध कर्म -

गृहप्रवेशगोदानास्थानाश्रयमहोत्सवम्।
न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पाहंस्पतौ तथा।।।।

ऋषि मरीचि जी का कहना है कि गृह प्रवेश, गोदान, स्थान का आश्रय, महोत्सव मलमास में तथा संसर्प व अहंस्पति मास में नहीं करना चाहिये।।33।।

वसिष्ठः -

वसिष्ठजी के आधार पर निषिद्ध कार्य -

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च।
न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पाहस्पती तथा।।34।।

ऋषि वसिष्ठजी का कहना है कि वापी, कुआ, तालाब आदि, प्रतिष्ठा, यज्ञादि कार्य, मलमास व संसर्प, अंहस्पति (क्षय) में नहीं करना चाहिये।।।।

मनुस्मृतौ-

मनुस्मृति के आधार पर कर्त्तव्य -

तीर्थश्राद्धं दर्शश्राद्धं प्रेतश्राद्धं सपिण्डनम्।
चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं मलमासे विधीयते।।35।।

मनुस्मृति में कहा है कि तीर्थ श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, प्रेतश्राद्ध, सपिण्डीकरण, चन्द्रसूर्यग्रहणीय

स्नान अधिक मास में करना चाहिये।।।।

पराशरः - पराशर मुनि के आधार पर कर्त्तव्य -

गर्भे वार्धुषिके भृत्ये प्रेतकर्मणि मासिके।

सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत्।।।।

ऋषि पराशर का कहना है कि अधिक मास में गर्भस्थ की मास संज्ञा, वर्द्धापन कार्य, सेवक की मास संज्ञा, प्रेत कार्य, मासिक कर्म, सपिण्डी करण और प्रतिदिन करने वाले कार्य का त्याग नहीं करना चाहिये।।।।

कात्यायनस्मृतौ-

कात्यायनि स्मृति के आधार पर -

गर्भाधानादिका अन्नप्राशनान्ता मलिम्लुचे।

कर्तव्या कर्णवेधादिक्रिया नान्या कदाचन।।।।

कात्यायनि स्मृति में कहा है कि गर्भाधानादि संस्कार से अन्न प्राशन संस्कार के अन्त तक करना तथा कर्णवेधादि क्रिया अधिक मास में कभी नहीं करना चाहिये।।।।

गणपतिः -

गणपति के आधार पर -

गर्भाधानादिसंस्कारे तथान्नप्राशने शिशोः।

न तत्र गुरुशुक्रास्तमलमासादिदूषणम्।।।।

गणपति का कथन है कि गर्भाधानादि संस्कार में, बालक के अन्न प्राशन समय में गुरु शुक्र अस्तत्व और मलमास जनित दोष नहीं होता है। क्योंकि इसमें काल की प्रधानता होने से उक्त कार्य मलमास में करना चाहिये।।।।

मलमासानयन विधि -

शाकः षड्रसभूपकै (1666) र्विरहितो नन्देन्दु (19)

भिर्भाजितः शेषेऽग्नौ (3) च मधुः शिवे

(11) तदपरो ज्येष्ठेऽम्बरे (10) चाष्टके (8)।

आषाढो नृपते (16) र्नभश्च शरके (5) विश्वे

(13) नभस्यस्तथा बाहू (2) चाश्विनसंज्ञको मुनिवरैः प्रोक्तोऽधिमासः क्रमात्।।।।

मकरन्द ग्रन्थ में कहा है कि शक संख्या में 1666 घटाकर उन्नीस का भाग देने पर यदि 3 शेष बचे तो चैत्र, 11 शेष में वैशाख, 10 में जेठ, 8 में आषाढ, 16 में सावन, 13, 5 में भाद्रपद, और

2 शेष में आश्विन मास होता है। ऐसा श्रेष्ठ ऋषियों का कहना है।।।।
अन्यः -
प्रकारान्तर से उक्त विधि ज्ञान -

अष्टाश्विनन्दै (928) र्वियुते च शाके नवेन्दुभिर्भाजितशेषमङ्कम्।
खं (0) रुद्र (11) अष्टा (8) विषु (5) विश्व
(13) युग्मं (2) चैत्रादितः सप्त सदाधिमासः।।।।

अन्य का कहना है कि शक् संख्या में 928 घटाकर अवशिष्ट में 19 का भाग देने पर यदि शेष 9 हो तो चैत्र, 0 में वैशाख, 11 में जेठ, 8 में आषाढ, 5 में सावन, 13 में भादों, 2 में आश्विन ये चैत्र से सात मास मलमास होते हैं।।।।
अन्यस्तु-
पुनः प्रकारान्तर से

शशिमुनिविधुवह्निर्मि (3171) श्रिता शककाले, द्विगुणमनु
(1432) विहानो नन्दचन्द्रै (19) र्विभक्तः।
यदि भवति सशेषः सध्रुवोऽङ्को विलोक्य
गणकमुनिभिरुक्तं चात्र चैत्रादिमासः।।।।
यदा षोडशके शेषे समासं च द्वितीयकम्।
आषाढमासकं कार्यं ब्रह्मसिद्धान्तभाषितम्।।।।

किसी के मत में शक संख्या में 3171 जोड़कर 1432 घटाकर 19 का भाग देने पर यदि शेष संख्या अधिमास की हो तो उसे देखकर अधिक मास का आदेश करना चाहिये। यहाँ ब्रह्मसिद्धान्त के मत से 16 शेष में आषाढ का ग्रहण करना चाहिये।।।।
अन्यः - अन्यत्रापि -
शाके भानु (12) मिते गुण्यं भागमेकोन (19) विंशतिः।
चैत्राद्या गणनीयाश्च अधिमासाः प्रकीर्तिताः।।।।

अन्य ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि शक संख्या को 12 से गुणित करके 19 का देने पर शेष के आधार पर चैत्र आदि अधिक मास की गणना करना चाहिये।।।।

पञ्च मासास्तु वैशाखादधिकाः संव्यवस्थिताः।
भवन्ति चाष्टभिर्वर्षैः भवैर्वाङ्कनिशाकरैः।।।।
तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकः।

एते क्विन्द्रैः (141) शराङ्गैश्च (65) कदाचिद्गोकुवत्सरैः।।।।
मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको भवेत्।
अधिमासस्तदा ज्येष्ठे भवेन्नित्यं क्षयो यदा।।।।
क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये।
आश्विनोर्जौ सदा स्यातामादौ भाद्रपदः सकृत्।।।।
यस्मिन्वर्षे कार्तिकक्षयो भवेत्तस्मिन्वर्षे ज्येष्ठोऽधिमासो भवेत्।
अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो ज्ञेयः।। (बृहद्दैवज्ञरंजनम्/अधिमास)

वैशाख से पाँच मास अधिक 8 या 11 वर्ष में होते हैं। इसी प्रकार फाल्गुन, चैत, आश्विन व कार्तिक मास भी अधिक मास 141 वर्ष या 65 या 19 वर्ष में होता हैं। अगहन व पौष मास प्रायः करके क्षय मास होते हैं तथा कभी कभी कार्तिक मास भी क्षय मास होता है। जब क्षय अगहन या पूस का होता है तो जेठ मास अधिक होता है। क्षय मास से पूर्व भादों से तीन मास अधिक होते हैं। प्रायः अश्विन कार्तिक ही अधिकतम होते हैं। कभी-कभी भादों मास भी अधिक होता है। जिस वर्ष कार्तिक का क्षय होता है तो उस वर्ष जेठ मास अधिक होता है। यहाँ जेठ शब्द से भादों का ग्रहण करना चाहिये।

5.4 अधिकमास की उपपत्ति -

चान्द्रोनसौरेण हृतात्तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढ्यैः।32।16।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः।।10।।
सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान्यस्मात्तस्मात्संख्यया तेऽधिकाः स्युः।
चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये मासास्तज्ज्ञैस्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः।।11।।
(सि.शि.गोल.)

यहॉं- अधिमास की उत्पत्ति बताई जा रही है -

इस श्लोक का आशय है कि, सौर मास से चान्द्रमास लघु होने के कारण किसी बड़ी संख्या में छोटी संख्या से भाग देने पर लब्धि अधिक होगी अपेक्षया उक्त उसी बड़ी संख्या में बड़ी संख्या से भाग देने से। अतएव कल्प सम्बन्धी सौर चान्द्रादि मासों में कल्प सौरमास संख्या से कल्पचान्द्र मास संख्या अधिक होती है। अतएव सौरमास संख्या से चान्द्र मास संख्या जितनी अधिक होती है उसी माप से युग अधिमास, महायुगाधिमास, या कल्पाधिमास संख्या अधिक ही होगी । अतः चान्द्रात्मक अधिक मास, चान्द्र और सौर मासों के अन्तर के तुल्य सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार 32 मास, 16 दिनादि घटिकात्मक सौरमानीय काल में 1 चान्द्र मास संख्या

अधिक हो जाने से इतने समय में चान्द्रमास संख्या 33 हो जाती हैं।

उपपत्ति - कल्पकुदिन या एक महायुग सम्बन्धी सौर वर्ष में सौर चान्द्र मासों की नियत संख्या शास्त्र में बता दी गई है।

एक सौर मास की सावन दिन संख्या = 365।15।22।30 /12 = 30।26।17 में एक चान्द्र मास सम्बन्धी सावन दिनादि = 29।31।50 को

कम करने से सावनादिनात्मक शेष = 0।54।27 होता है।

अर्थात् एक सौरमास में सौर चान्द्र कुदिनों का अन्तर = 0।54।27 होता है।

उक्त अन्तर में यदि एक सौर मास की प्राप्ति होती है तो एक चान्द्र मासान्तःपाती

सावनदिनात्मक संख्या में कितने सौर मास प्राप्त होंगे, त्रैराशिक अनुपात से -

$$\frac{1 \text{ सौरमास} \times 60 |31 |50}{0 |54 |27} = 32।15।31।28।27$$

सौर मासों में एक चान्द्रात्मक अधिकमास गणित से सिद्ध होता है॥

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः।

चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात्तथा॥

सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्।

सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात्तथा॥

अर्थात - सौर मान से साधित अधिमास का मान चान्द्रमान में, और चान्द्र मान से साधित अधिमास का मान सौर मान में होता है तथा लब्ध अधिमास में जो अधिशेष होता है वह भी सौर साधित चान्द्र एवं चान्द्र साधित सौर मानात्मक होता है।

तथैव, चान्द्रमान एवं सौर मान से साधित अवम और अवम शेष भी क्रमशः सावन और चान्द्र मानात्मक होते हैं॥

5.4.1 अधिमास का गणितीय उपपत्ति -

सैद्धान्तिक दृष्टि के आधार पर जब भी दो अमान्त के मध्य में संक्रान्ति का अभाव हो जाये तो उसे अधिमास की संज्ञा दी जाती है। क्योंकि सिद्धान्त बताया गया है कि -

मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।

चैत्राद्यः स विज्ञेयः पूर्तिर्द्वित्वेऽधिमासोऽन्यः॥

अर्थात् मेषादि राशियों पर गमन करता हुआ सूर्य जब-जब चान्द्रमासों की पूर्ति करता है उस मासों को क्रम से चैत्रादि मास की संज्ञा दी गई है। जिसमें संक्रान्ति की पूर्ति नही होती है उसे अधिमास

कहते हैं।

इसका सैद्धान्तिक कारण अन्वेषज्ञण करते हैं तो पाते हैं कि, व्यवहार में सौर-चान्द्रमासों की गणना प्रचलित है। इन दोनों के साथ सावन दिनों का सम्बन्ध भी जुड़ा हुआ है।

चान्द्रमास = 30 तिथ्यात्मक मान

सौरमास - एक संक्रान्ति से दूसरे संक्रान्ति तक

सावन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का मध्य।

मध्यम मान से सौरमास 30:26:17 सावन दिनादि प्रमाण का होता है।

1 चान्द्रमास में 29:31:50 सावन दिनादि प्रताण होता है। दोनों का अन्तर=

सौरमास 30:26:17

चान्द्रमास 29:31:50

0:54:26 यह अधिशेष कहलाता है।

यह अधिशेष जब बढ़ते हुए 1 चान्द्रमास के तुल्य हो जाता है, तो वह अधिकमास होता है। जैसे यह कितने सौरमास पर पतित होगा यह जानना है तो अनुपात करते हैं कि -

$$\frac{1 \text{ चान्द्रमास } (29:31:50) \times 1}{0:54:27} = 32:16:4 \text{ मासादि प्राप्त ।}$$

होता है। अर्थात् 32:16:4 सौरमास व्यतित होने पर 1 अधिकमास पतित होता है। यही कारण है कि प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिमास अवश्य आता है।

5.5 क्षयमास की उपपत्ति -

जब एक ही चान्द्रमास में 2 बार सूर्य की संक्रान्ति जब होती है तब उस चान्द्रमास को क्षयमास कहते हैं यहाँ आचार्य भास्कर कहते हैं कि,

''असंक्रान्तिमास -------------

द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।

क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्युः।

तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च।।

- सि.शि. मध्यमा.

अर्थात् आचार्य कहते हैं कि, क्षय संज्ञा होती है, समस्त मास के मान का क्षय नहीं होता है। केवल दिनात्मक अन्तर उत्पन्न होता है। आगे आचार्य लिखते हैं कि, यह कभी-कभी ही होता है सर्वदा नहीं होता है और जिस वर्ष क्षयमास पतित होता है उस वर्ष में 3 मास पहले और 3 मास बाद भी

एक-एक अधिक मास पड़ता है। जब भी सूर्य की गति कम होती है तो मास के भोग में अधिक समय लगता है तथा जब गति अधिक होती है तो मास के भोग में कम समय लगता है और गति की अधिकता के कारण ही सूर्य की एक चान्द्रमास में 2 बार संक्रान्ति होती है और क्षयमास भी पतित होता है। ''क्षयः कार्तिकादि प्रसंग में उपपत्ति यहाँ आचार्य कहते हैं कि आदौ कार्तिकः अस्य स मार्गशीर्ष पौष-माघ मासों में ही क्षयमास की संभावना होगी। कारण प्रसंग का यदि हम निरुपण करें तो पाते हैं कि मार्गशीर्षादि 3 मासों में ही क्षयमास पतित होता है। इसके कारण प्रसंग में आचार्य कहते हैं कि, जब सूर्य की गति 61 कला के आसन्न होती है तो ऐसी स्थिति में सूर्य मास की पूर्ति जल्दी-जल्दी करता है और एक चान्द्रमास में 2 संक्रान्ति संभव होती है। ऐसी स्थिति, धनु-मकर के सूर्य में ही होती है अत-एव मार्गशीर्षादि त्रय मासों में ही क्षयमास पतित होता है। जब भी ऐसी स्थिति होती है क्षयमास के पूर्व गत्यल्प के कारण मास की पूर्ति अधिक काल में होता है तो अधिकमास पतित होता है। क्षयमास के बाद मास त्रयान्तर में भी यही स्थिति होती है तो अधिमास पुनः दूसरा पतित होता है। यह त्रयमास कब-कब पतित होगा ऐसी स्थिति में आचार्य कहते हैं कि,

''कुवेदेन्दुवर्षै क्वचिद् गोकुवर्षे' अर्थात् 141 वर्ष या 19 वर्षों में यह कभी-कभी पतित होता है।

5.6 सारांशिका -

- मासपरिज्ञान प्रसंग में अधिकमास का ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि धार्मिक एवं ज्योतिषीय दोनों की दृष्टि से अधिकमास का आनयन एवं विचार महत्त्वपूर्ण है।
- शुभाशुभ कार्यों में अधिकमास एवं क्षयमास दोनों का विचार-विमर्श शास्त्रों में गंभीरता पूर्वक किया गया है। अतएव ऐसी परिस्थिति में इसकी विस्तृत परिचर्चा यहाँ संग्रहीत है।
- अधिकमास एवं क्षयमास में वर्णित एवं प्रतिपादित समस्त कार्यों का विधिवत् उल्लेख किया गया है।
- अधिमास एवं क्षयमास दोनों का गणितीय स्वरुप एवं उपपत्ति भी पूर्णरुपेण प्रतिपादित है।
- कब-कब अधिमास एवं क्षयमास पतित होगा, इसको संवत् के आधार पर टेबल के माध्यम से वर्णित किया गया है।

5. 7 शब्दावली (पारिभाषिक) -

मास - मस्ये परिमियते इति मासः (काल प्रमाण ही मास है)

सौरमास - सूर्य की एक संक्रानित से दूसरी संक्रान्ति तक 1 सौरमास होता है।

चान्द्रमास - अमान्तकाल से अमान्तकाल तक की अवधि को चान्द्रमास कहते हैं।

संक्रान्ति - राशि परिवर्तन का नाम संक्रान्ति है।

सावन दिन - एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय का काल सावन दिन कहलाता है।

5.8 अभ्यास प्रश्नोत्तर -

1.चान्द्रमान किसे कहते हैं? - अमान्त से अमान्त तक

2. सौर-चान्द्र का अन्तर क्या कहलाता है। - अधिदिन

3. अमान्त से अमान्त तक क्या कहलाता है? - चान्द्रमास

4. एक सौरवर्ष में सावनदिन की संख्या कितनी है। - 365 दिन

5. जिस वर्ष क्षयमास पतित होता है उस वर्ष अधिकमास कितने होते हैं। - 2 मास

6. क्षयमास किन तीन मासों में आता है। - मार्गशीर्षादि 3 मास में

7. क्षयमास कितने वर्षो बाद सम्भावित होता है। - 19 वर्ष के बाद,

8. सबसे अधिक सूर्य की गति कितनी होती है। - 61 कला 20 विकला

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थसूची -

नाम	लेखक	प्रकाशक
सूर्यसिद्धान्त	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	चौखम्भा भवन
सिद्धान्तशिरोमणि	डॉ. सत्यदेव शर्मा	चौखम्भा पब्लिकिंग हाउस
ग्रहलाघवम्	प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय	..
सिद्धान्ततत्त्वविवेक	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
बृहद्दैवज्ञरंजनम्	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अधिमास से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. अधिमास की उपपत्ति लिखिये।

3. क्षयमास क्या है। विस्तृत वर्णन कीजिये।

4. क्षयमास की उपत्ति लिखिये।

5. अहर्गण में अधिकमास एवं क्षयमास के प्रयोजन पर प्रकाश डालिये।

खण्ड – 4

ग्रहानयन

इकाई - 1 अहर्गण एवं मध्यम ग्रहसाधन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अहर्गण परिचय

  1.3.1 अहर्गण साधन

  1.3.2 विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार अहर्गण ज्ञान

1.4 मध्यम ग्रह साधन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के चतुर्थ खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है, जिसकाशीर्षक है - अहर्गण एवं मध्यम ग्रह साधन। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने काल मान से जुड़े विविध मानों को जान लिया है। अब आप सिद्धान्त ज्योतिष में और विस्तृत ज्ञान हेतु उसके प्रथम सोपान अहर्गण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

अहर्गण गणित ज्योतिष का प्रथम इकाई है, क्योंकि अहर्गण के बिना ग्रहों का गणित करना सम्भव नहीं है। अहर्गण दिनों का समूह होता है।

अहर्गण की सिद्धि सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा किया जाता है। आइए इस इकाई में अहर्गण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अहर्गण को परिभाषित कर सकेगें।
- अहर्गण की सिद्धि कर सकेगें।
- सिद्धान्त, तन्त्र एवं करण तीनों ग्रन्थों के द्वारा अहर्गण को बता सकेगें।
- अहर्गण का महत्व को समझा सकेगें।

1.3 अहर्गण परिचय

सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।

अहर्गण साधन की आवश्यकता क्यों हैं?

अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ

अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम गणित ज्योतिष में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

1.3.1 अहर्गण साधन

ग्रहलाघव ग्रन्थ के अनुसार -

द्वयब्धीन्द्रो नितशक ईशहृत्फलं स्यात् चक्राख्यं रवि हतशेषकं तु युक्तम्।
चैत्राद्यै: पृथगमुत: सदृग्घ्नचक्राद् दिग्युक्तादमरफलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रिघ्नं गततिथियुङ्निरग्रचक्रांगाशाढ्यं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धै:।
ऊनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद् वै वार: स्याच्छरहृतचक्रयुग्गणोऽब्जात्।।

अहर्गण साधन विधि- इसके लिए हमें निम्न अंशों की आवश्यकता होगी। चक्र साधन, मध्यम मासगण, अधिक मासगण, मासगण, मध्यम अहर्गण, क्षयदिवस आदि।

- क्रमश: - अभीष्ट शक $-\frac{1442}{11}$ = लब्धि चक्र होगी, शेष रख लें
- मध्यम मासगण = (शेष × 12) + गत मास (इष्टमास को छोडकर बीते हुए माह)
- अधिकमास = (चक्र × 2) + 10 + $\frac{\text{मध्यममासगण}}{33}$
- मासगण = मध्यम मास + अधिमासगण
- मध्यम अहर्गण = (मासगण × 30) + गत तिथि + $\frac{\text{चक्र}}{6}$ (लब्धि)
- क्षयदिवस = मध्यम अहर्गण ÷ 64
- अहर्गण = मध्यम अहर्गण − क्षयदिवस
- शेषवार = $\frac{(\text{चक्र} \times 5) \div \text{अहर्गण}}{7}$

चलिए अब इसका अभ्यास करते हैं-

जैसे शक 1835, श्रावण शुक्ल 12, बुधवार का अहर्गण निकालना है।

अहर्गण साधन नियमानुसार-

$$1835 - 1442 = \frac{393}{11} \text{ लब्धि} - 35 \text{ चक्र}, \quad \text{शेष } 08$$

शेष 8 × 12 = 96 + 4 = 100 मध्यममासगण

चैत्र से गत मास आषाढ़ तक गिनने पर 4 गत मास आए

$$\frac{(35 \times 2) + 10 + 100}{33} = \frac{180}{33} = 5 \text{ लब्धि} = \text{अधिमासगण},$$

और शेष 15 अनावश्यक, 100 + 5 = 105 मासगण

105 × 30 = 3150 + गततिथि 11 + 5 = 3166 मध्यम अहर्गण

अब अहर्गण वे $\frac{3166}{64}$ = 49 लब्धि क्षयदिवस, 3166 − 49 = 3117 स्पष्ट अहर्गण।

$$\frac{\text{अहर्गण} - 373}{2520} = \text{लब्धि को दो स्थान में रखें।}$$

- प्रथम स्थान पर - लब्धि/ 360 = लब्धि × 3 + 1 = प्रथम फल
- प्रथम फल/ 7 = वर्षपति होगा।
- द्वितीय स्थान पर - लब्धि/ 30 = लब्धि × 2 +1 = द्वितीय फल
- द्वितीयफल/ 7 = मासपति होगा।

1.3.2 विभिन्न सिद्धान्तानुसार अहर्गण साधन

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार अहर्गण –

अत उर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया।
मासीकृतायुता मासै: मधुशुक्लादिभिर्गतै:।।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्ना: सूर्यमासविभाजिता:।
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता:।।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिता:।
लब्धोनरात्रिरहिता लंकायामार्धरात्रिक:।।

सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों में सत्ययुग के उपरान्त जितने सौरवर्ष व्यतीत हों गये हो उनका योग कर ले। योगफल इष्टकाल तक के सौर वर्षो की संख्या होगी। इसके मास बना ले अर्थात् १२ से गुणा कर ले। मासों की संख्या में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से इष्टकाल तक जितने मास व्यतीत हो गये हों, उनको भी जोड़ दो। इस संख्या को दो स्थानों पर रखे, एक को महायुग के अधिमासों की संख्या से गुणा कर महायुग के सौर मासों की संख्या से भाग दे, जो लब्धि आवे वही सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के अधिमासों की असंख्या होगी। इस लब्धि को दूसरे स्थान में रखे हुए मासों में जोड़ दे। योगफल सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक के चान्द्र मासों की संख्या है। इसको ३० से गुणाकर चान्द्रदिन अर्थात् तिथि बना ले और इष्टकाल तक वर्तमान मास की जितनी तिथियाँ व्यतीत हों उनका योग कर ले तो सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियाँ व्यतीत हुई हैं वह ज्ञात हो जायेगी। इन तिथियों की संख्या को भो दो स्थान में रखकर एक को महायुगीय क्षय तिथियों की संख्या से गुणा कर और गुणनफल को महायुगीय तिथियों की संख्या भाग दें, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक की क्षयतिथियों की संख्या हुई। इसको दूसरे स्थान में रखी हुई तिथियों की संख्या में से घटा दे, जो शेष बचे उससे एक कम लंका की अर्द्धरात्रि तक सावन दिनों

की अहर्गण संख्या होगी।

सूर्यसिद्धान्तीय कलियुग के आरम्भ से अहर्गण साधन का उदाहरण –

दिनांक: - १३ अप्रैल २०१३, संवत् – २०७०, शक् – १९३५, वैशाखकृष्णपक्षः, तिथि: - तृतीया, वार:-शनिवासर: अश्विन्यां मेषेचार्क: (अश्विनी नक्षत्र तथा मेष राशि में सूर्य का प्रवेश दिन), युगअधिमासा: - १५९३३३६, युगसौरमासा: - ५१८४००००, युगअवमशेष: - २५०८२२५२, युगचान्द्रदिन – १६०३०००८०।

वर्तमान कलियुग का व्यतीत सौरमान - ५११४ सौरवर्ष। अब यहाँ सूत्र द्वारा अहर्गण साधन करते हैं -

५११४
× १२
६१३६८
+ ० – गतमास
६१३६८

अनुपात करते है - यदि युगसौरमास में युगअधिमास मिलता है तो इष्टसौरमास में क्या मिलेगा?

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{इष्टसौरमास}}{\text{युगसौरमास}}$$

$$\frac{१५९३३३६ \times ६१३६८}{५१८४००००}$$

= ९७७७९८४३६४८ ÷ ५१८४००००

लब्धि = १८८६
+ ६१३६८
६३२५४
× ३०
१८९७६२०
+ १७
१८९७६३७ इष्टचान्द्रतिथि

पुनः, यदि युगचान्द्रदिन में युगअवमशेष मिलता है, तो इष्ट चान्द्रतिथि में क्या मिलेगा?

२५०८२२५२ × १८९७६३७ ÷ १६०३०००८०

= ४७५९७००९४३८५२४ ÷ १६०३०००८०

लब्धि = २९६९२ क्षय तिथि (अवम तिथि)

१८९७६३७
- २९६७५
१८६७९६२ सावन अहर्गण।

वार ज्ञान के लिए –

१८६७९६२ ÷ ७ = लब्धि = २६६८५१, शेष = ५ + १ = ६ रविवारा से गणना करने पर शनिवार अभीष्ट वार आ जायेगा।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण –

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वित:।।
खदहनैर्गुणितस्तिथिसंयुत:।
पृथगतोऽधिकमास समाहतात्।।
रविदिनाप्तगताधिकमासकै:
कृतदिनै: सहितो द्युगणो विधो:।
पृथगत: पठितावम संगुणाद्
विधुदिनाप्तगतावमवर्जित:।।
भवति भास्करवासरपूर्वको दिनगणो रविमध्यमसावन:।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिनकमत्र न गृह्यते।।

अर्थात् कल्पारम्भ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को १२ से गुणा करके (गतवर्ष के रविमास प्राप्त होंगे। इनमें चैत्रारम्भ से वर्तमान वर्ष के) गतचान्द्रमास संख्या (सौरमास मान कर) युत करके तीस से गुणा करके इष्टमास की (प्रतिपदा से) गत तिथि (सौर तिथि तुल्य मान कर) युत करके इसको पृथक् स्थान पर कल्पाधिमास १५९३३०००० से गुणा करके कल्प रवि दिन १५५५२०००००००० से भाग देने से प्राप्त अधिमास संख्या के दिन बनाकर (पूर्वोक्त) अहर्गण में जोड़ दें। फिर इन प्राप्त चान्द्र दिनों को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से पृथक स्थान पर गुणा करके कल्पचान्द्र दिवस संख्या १६०२९९९०००००० से विभक्त करने से प्राप्त फल को अहर्गण में घटाने से पूर्वोक्त रविदिनगण संख्या से रविमध्यम सावन दिन संख्या प्राप्त होती है। यहाँ अधिकमास तथा दिन क्षय में प्राप्त शेष की दिन घटिकादि को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

विशेष – भास्कराचार्य जी के अनुरूप अहर्गण साधन ज्योतिष शास्त्र के सभी पूर्ववर्ति तथा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों कहा है लेकिन भास्कराचार्य जी में विशेष बात यह है कि – वो कहते है कि इस प्रकार साधित अहर्गण मध्यम मान का है, स्फुट नहीं है। अर्थात् वास्तविक अहर्गण से यह अहर्गण संख्या भिन्न हो सकती है। इनके अतिरिक्त वटेश्वर सिद्धान्त के प्रतिपादक वटेश्वराचार्य जी ने अनेक विधियों से अहर्गण साधन अलग से 'द्युगण: विधि' अध्याय के द्वारा बतलाया है।

मकरन्दप्रकाश के अनुसार अहर्गणानयनम् –

मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के रचयिता आचार्य नारायणदैवज्ञ ने मध्यमाधिकार के आरम्भ में अहर्गण का साधन इस प्रकार बतलाया है -

नवनगेन्द्रकृशानुसमन्वितो भवति शाकगणो गतवत्सर:।
कलिमुखादथ भानुगणो गतैर्मधुसितादिकमासचयैर्युत:।।
त्रिकगत: स च खाद्रिहृदाप्तयुक् सुरहृदाप्तगताधिकमासयुक्।
खगुणसंगुणितस्तिथिसंयुत: पृथगसौ शिवसंगुणितस्तथा।।
गुणनभोधरणीधरभाजितोऽथ स च लब्ध दिनावमवर्जित:।
दिनगणो रविमध्यम सावन: सितमुखो भवतीह निशादले।।

अर्थात् इष्ट शकाब्द में ३१७९ जोड़ने से कलिगताब्द होता है। उसको १२ से गुणाकर उसमें गत चैत्र शुक्लादि चान्दमास की संख्या जोड़कर तीन स्थानों में लिखकर प्रथम स्थान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़े, फिर उसमें ३३ से भाग देने पर लब्धि गताधिमास को तृतीय स्थान में जोड़ दें। बाद में उसको ३० से गुणाकर गत अमावस के बाद इष्ट तिथि पर्यन्त की संख्या जोड़कर दो जगह प्रथम स्थान में ७०३ का भाग देकर लब्धि अवमदिन को प्रथम स्थान में स्थित अंक में घटाने से रात्र्यर्धकालिक शुक्रवारादिक मध्यम सावनात्मक अहर्गण होता है।

विशेष – मकरन्दप्रकाश में कलियुगादि से इष्ट दिन पर्यन्त का अहर्गण साधन किया गया है। अधिमास के पश्चात् यदि इष्ट तिथि हो, तब गतमास में उसकी गणना नहीं करनी चाहिये। अधिमास में इष्ट तिथि हो, तब इष्ट तिथि की संख्या में अधिमास की तिथि भी ग्रहण होती है। कलियुग का प्रारम्भ शुक्रवार को हुआ था, अत: शुक्रवारादि से वार की गणना होती है। अहर्गण में ७ का भाग देकर शेष के अनुसार शुक्रादिवार जानना चाहिए।

मकरन्दीय अहर्गण का उदाहरण

वर्तमान शक - १९३५ श्रावण कृष्ण प्रतिपदा तिथि, भौमवार का अहर्गण साधन।

इष्ट शकाब्दा: - १९३५

अत: सूत्र से –

१९३५ + ३१७९ = ५११४ = कलिगताब्द

अत: ५११४ × १२ = ६१३६८ = सौरमास

अत्र चैत्रादिगत शुक्लादि चान्द्रमाससंख्या = ३

६१३६८ + ३ = ६१३७१ - इसे तीन स्थानों पर रखना हैं।

प्रथम मान में ७० का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में जोड़ने पर -

प्रथम स्थान - ६१३७१ ÷ ७० = ८७६

द्वितीय स्थान - ६१३७१ + ८७६ = ६२२४७ इसे सुर अर्थात् ३३ अंश से भाग देकर तृतीय स्थान में जोड़ने पर –

तृतीय स्थान - ६१३७१ + १८८६ = ६३२५७

६३२५७ × ३० = १८९७६२०

गत आषाढकृष्ण अमान्तादिष्टतिथि संख्या = १६

१८९७६२० + १६ = १८९७७१०

इसे दो स्थान पर रखकर प्रथम मान में ११ से गुणा कर ७०३ से भाग देने पर – लब्धि: = २९६९३

अत: १८९७६२० – २९६९३ = १८६७९२७ इष्टदिवस का अहर्गण हुआ।

अहर्गणोसैकनिरेककरण कथनम् -

दिनगणेऽद्रिहृतेऽभिमतो यदा नहि भवेद् दिवसो दयुगुणस्तदा ।
शशिविहीनयुतोऽपि च वास्तवो दिनगण: कथितो गणकोत्तमै: ।।

अहर्गण में ७ का भाग देने पर यदि अभिष्ट वार की प्राप्ति नहीं होती, तो एक जोड़ने या घटाने से अभीष्ट वार की प्राप्ति हो जाती है।

बोध प्रश्न -

1. अहर्गण शब्द का अर्थ होता है –
   क. समूह ख. दिनों का समूह ग. दिन घ. रात्रि का समूह
2. युगादि से इष्टदिन पर्यन्त जहाँ अहर्गण साधन किया जाता है, उसे क्या कहते है।
   क. सिद्धान्त ख. तन्त्र ग. करण घ. संहिता
3. ग्रहलाघव में अहर्गण साधन किस मान से किया गया है?
   क. युगादि से ख. शकादि से ग. कल्पादि से घ. सृष्ट्यादि से
4. सूर्यसिद्धान्त में अहर्गण साधन कहाँ से किया जाता है?
   क. सृष्ट्यादि से ख. शकादि से ग. युगादि से घ. कोई नहीं
5. अहर्गण साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहों की स्थिति जानने के लिए ख. नक्षत्रों को समझने के लिए ग. तारों को जानने के लिए घ. ब्रह्माण्ड को जानने के लिए
6. वार के ज्ञान के लिए अहर्गण में कितनी संख्या का भाग देते है?
   क. ५ ख.६ ग.७ घ. ८
7. अहर्गण साधन का मान क्या होता है?
   क. सौर ख. चान्द्र ग. नाक्षत्र घ. सावन

आचार्य वेंकट कृत् केतकीग्रहगणित के अनुसार अहर्गण साधन –

व्यभ्राभ्रेभकु १८०० शकनंदचन्द्रलब्धि
श्चक्राख्यारवि १२ हतशेषकं तु युक्तम्।

चैत्राद्यैः पृथगमुतः शरा प्तचक्रा
शा १० युक्तादमरलाधिमासयुक्तम्।।
खत्रि ३० घ्नं गततिथियुक् शरद्गणाभ्रां
गां ६० शोनं पृथगमुतोऽब्धिषट्कलब्धैः।
उनाहैर्वियुतमहर्गणो भवेद् वै
वारः स्यादगुण ३ हतचक्रयुग्गणोज्ञात्।।

अहर्गण साधक सूत्र

अभीष्टशालिवाहनशक - १८०० = वर्षगण।
वर्षगण ÷ १९ = गतचक्र।
(चक्रशेष × १२) + गतमास = सौरमास।
(सौरमास + १० + गतचक्रपञ्चमांश) / ३३ = अधिमास।
सौरमासा + अधिमासा = चान्द्रमासा
(चान्द्रमासा × ३०) + गततिथिगण - (वर्षगण ÷ ६०) = तिथिगण ।
तिथिगण ÷ १९ = क्षयतिथिगण।
तिथिगण - क्षयतिथिगण = अहर्गण।
वारज्ञानार्थंसमीकरणम् –
(अहर्गण + (चक्र × ३)) / ७

शेष की गणना बुधादिवार से होती है। शून्य आने पर उसे बुधवार के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

1.4 मध्यम ग्रह साधन

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। ग्रहों के स्पष्ट आनयन हेतु विदित हो कि मध्यम ग्रह का साधन अहर्गण द्वारा किया जाता है। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा (उतना ही बड़ा) वृत्त बनाते हैं, जिसे प्रतिवृत्त कहते हैं। यही प्रतिवृत्त मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है।

ग्रहलाघव के अनुसार ग्रहों की अहर्गण गति को उनके क्षेपक में जोड़ देने से वे मध्यम बनते हैं। उदाहरण के लिए मध्यम रविबुधशुक्र का आनयन इस प्रकार कहा गया है –

स्वखनगलव हीनो द्युव्रजोऽर्कज्ञशुक्रा।

खतिथिहृतगणोनो लिप्तिकास्वंशकाद्या:।।

कल्पना किया कि अहर्गण का मान यदि -१३३ है, तो

१३३ ÷ ७० = १।५४।० अंशादि ७०) १३३ (१

७०

६३×६० = ३७८०

७०)३७८०(५४

३५०

२८०

२८०

०

१३३।०।० – अंशादिक अहर्गण

– १।५४।० – अंशदिक फल

१३१ ।६ । ० शेष अंशादि मान

पुन: अहर्गण में १५० संख्या से भाग दिया।

१३३ ÷ १५० = ० कलादि फल आया।

१३१ ।६।० अंशादि रविबुधशुक्र।

तथा राश्यादि बनाने के लिए अंशादि मान में ३० से भाग देने पर

१३१ ÷ ३० = ३०) १३१(४

१२०

११ शेष

४ । ११ । ० । ० राश्यादि रविबुधशुक्र हुआ।

पुन: सूर्य की ध्रुवा – ०।१।४९।११ × ४५ (चक्र) = २।२१।५३।१५

अर्हगण से उत्पन्न ग्रह का मान – ४। ११।०।०

– २।२१।५३।१५

१।१९।६।४५

सूर्य की राश्यादि क्षेपक मान + ११।१९।४१।०
१३।८।४७।४५ मध्यमरविबुधशुक्र।

१।९।४७।४५ राश्यादि मध्यमरविबुधशुक्र मान होगा।

सूर्य सिद्धान्त द्वारा मध्यम ग्रह साधन –

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिनराशि: कुवासरै:।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्।।

प्राप्त अहर्गण में किसी ग्रह के महायुगीय भगण को गुणा कर दीजिये और गुणनफल को महायुगीय सावन दिनों से भाग दे दीजिये, जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रह के (सृष्टि के आदि से) मध्यम गति के अनुसार पूरे हुए है, ऐसा समझना चाहिये। जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से गुणा करके फिर महायुगीय सावन दिनों से भाग देने से उस राशि की संख्या आयेगी जितनी राशियाँ वह ग्रह वर्तमान भगण में पूरा कर चुका है। अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर उन अंशों की संख्या निकल आयेगी जितने अंश वह ग्रह वर्तमान राशि में पूरा कर चुका है।

यहाँ त्रैराशिक अनुपात द्वारा मध्यम ग्रह साधन का सूत्र इस प्रकार है –

$$\frac{\text{कल्पग्रहभगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्पकुदिन}} = \text{एकदिवसीय मध्यम ग्रह।}$$

सूर्यसिद्धान्त में सभी ग्रहों का भगणमान दिया हुआ है। जैसे सूर्य, बुध एवं शुक्र का-४३२००००, चन्द्रमा का -५७७५३३३६, मंगल का – २२९६८३२, गुरु का -३६४२२०, शनि का-१४६५६८

<u>मध्यम सूर्य का गणितीय साधन</u>

कल्पना किया कि अहर्गण का मान – १८६६८३५, कल्पकुदिन – १५७७९१७८२८
तथा कल्पग्रह भगण का मान - ४३२००००। अत: पूर्व में कथित सूत्र द्वारा यह मध्यम सूर्य का साधन करते हैं -

$$\frac{४३२०००० \times १८६६८३५}{१५७७९१७८२८} \div = \frac{८०६४७२७२०००००}{१५७७९१७८२८}$$

लब्धि = ५११०, शेष राशि = १५६७०९८९२०

१५६७०९८९२० × १२ ÷ १५७७९१७८२८ = १८८०५१८७०४० ÷ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि: , शेषम् = १४४८०९०९३२

१४४८२९२९३२ × ३० ÷ १५७७९१७८२८ = ४३४४२७२७९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = २७ अंशः , शेषम् = ८३८९४६६०४

८३८९४६६०४ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५०३३६७९६२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ३१ कला, शेषं = १४२१३४३५७२

१४२१३४३५७२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ८५२८०६१४३२०/ १५७७९१७८२८

= ५४ विकला

११ । २७ । ३१ । ५४ राश्यादि एकदिवसीय मध्यमसूर्य होगा।

इसी प्रकार अब यहाँ मध्यम चन्द्रमा का साधन करते है -

अहर्गण - १८६६८३५

कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८८१

चन्द्रमा का भगणमान – ५७७५३३३६

सूत्र से,

५७७५३३३६ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = १०७८१५९४९०११५६० / १५७७९१७८२८

लब्धि = ६८३२७, शेष = १५५७५७७८०४

१५५७५७७८०४ × १२ / १५७७९१७८२८ = १८६९०९३३६४८/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ११ राशि, शेष – १३३३८३७५४०

१३३३८३७५४० × ३०/ १५७७९१७८२८ = ४००१५१२६२००/१५७७९१७८२८

लब्धि = २५ अंश, शेष- ५६७१७८५००

५६७१७८५०० × ६० / १५७७९१७८२८ = ३४०३०७१००००/ १५७७९१७८२८

लब्धि = २१ कला, शेषम् – ८९४४३५६१२

८९४४३५६१२ × ६०/ १५७७९१७८२८ = ५३६६६१३६७२०/ १५७७९१७८२८

= ३४ विकला

इस प्रकार से ११ । २५ । २१ । ३४ राश्यादि मध्यमचन्द्र मान आया।

मध्यम भौमसाधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या-१५७७९१७८२८, भौम का भगणमान – २२९६८३२

सूत्रेण,

२२९६८३२ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ४२८७८०६३६६७२० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २७१७, शेष – ६०३६२८०४४

६०३६२८०४४ × १२ / १५७७९१७८२८ = ७२४३५३६५२८/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष– ९३१८६५२१६

९३१८६५२१६ × ३० / १५७७९१७८२८ = २७९५५९५६४८०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - १७ अंश, शेष – ११३१३५३४०४

११३१३५३४०४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ६७८८१२०४२४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३ कला, शेष – ३०७३७६३६

३०७३७६३६ × ६० / १५७७९१७८२८ = १८४४२५८१६० / १५७७९१७८२८

= १ विकला

४।१७।४३।१ राश्यादिमान मध्यमभौम का हुआ।

मध्यम बुध शीघ्रोच्च का साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, बुधशीघ्रोच्चभगण- १७९३७०६०

सूत्रेण,

१७९३७०६० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ३३४८५५३१४०५१०० / १५७७९१७८२८

लब्धि - २१२२१, शेष– ५३७१७७११२

५३७१७७११२ × १२ / १५७७९१७८२८ = ६४४६१२५३४४/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४ राशि, शेष – १३४४५४०३२

१३४४५४०३२ × ३० / १५७७९१७८२८ = ४०३३६२०९६०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - २ अंश, शेष – ८७७७८५३०४

८७७७८५३०४ × ६० = ४६६७११८२४० / १५७७९१७८२८

लब्धि = २ कला, शेष – १५११२८२५८४

१५११२८२५८४ × ६० / १५७७९१७८२८ = ९०६७६९५५०४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ५७ विकला

४।२।२।५७ राश्यादिमान मध्यमबुधशीघ्रोच्च का होगा।

मध्यमगुरू -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिनसंख्या - १५७७९१७८२८, गुरू भगणमान –३६४२२०

सूत्रेण,

३६४२२० × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = ६७९९३८६४३७००/ १५७७९१७८२८

लब्धि - ४३०, शेष– १४३३९७७६६०

१४३३९७७६६० × १२ = १७२०७७३१९२० / १५७७९१७८२८

लब्धि - १० राशि, शेष – १४२८५५३६४०

१४२८५५३६४० × ३० = ४२८५६६०९२००/ १५७७९१७८२८

लब्धि - २७ अंशा, शेष– २५२८२७८४४

२५२८२७८४४ × ६० = १५१६९६७०६४०/ १५७७९१७८२८

लब्धि = ९ कला, शेष – ९६८४१०८८

९६८४१०१८८ × ६० = ५८१०४६११२८० / १५७७९१७८२८ = ३६ विकला

१०।२७।९।३६ राश्यादि मध्यमगुरु का मान आया।

मध्यम शुक्रशीघ्रोच्च –

अहर्गण-१८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या– १५७७९१७८२८, शुक्रशीघ्रोच्च भगणसंख्या – ७०२२३७६।

सूत्रेण,

७०२२३७६ × १८६६८३५ / १५७७९१७८२८ = $\frac{१३१०९६१७२९९९६०}{१५७७९१७८२८}$

लब्धि - ८३०८, शेष – २७५९८४९३६

२७५९८४९३६ × १२ = ३३११८१९२३२/ १५७०७९१७८२८ = लब्धि २ राशि

शेष – १४५९८३५७६

१४५९८३५७६ × ३० = ४३७९५०७२८०/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २ अंश

शेष – १२२३६७१६२४

१२२३६७१६२४ × ६० = ७३४२०२९७४४० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४६ कला शेष – ८३६०७७३५२

८३६०७७३५२ × ६० = ५०१६४६४१११२० / १५७७९१७८२८ = ३१ विकला

२।२।४६1३१ राश्यादिमान मध्यमशुक्रशीघ्रोच्च होगा।

मध्यमशनि का गणितीय साधन -

अहर्गण - १८६६८३५, कल्पकुदिन संख्या – १५७७९१७८२८, शनि भगण – १४६५६८

सूत्र के द्वारा,

१४६५६८ × १८६६८३५ = २७३६१८२७२२८० ÷ १५७७९१७८२८ = लब्धि १७३ शेष –

= ६३८४८८०३६।

६३८४८८०३६ × १२ = ७६६१८५६४३२ / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४ राशि, शेष – १३५०१८५१२० ।

१३५०१८५१२० × ३० = ४०५०५५५३६००/ १५७७९१७८२८ = लब्धि २५ अंश, शेष – १०५७६०७९००

१०५७६०७९०० × ६० = ६३४५६४७४००० / १५७७९१७८२८ = लब्धि ४० कला , शेष – ३३९७७६०८८०

३३९७६०८८० × ६० = २०३८५६५२८०० / १५७७९१७८२८ = लब्धि १२ विकला

४। २५। ४०। १२ राश्यादिमानम् मध्यमशनि आया।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया अहर्गण शब्द का अर्थ होता है – दिनों का समूह। संस्कृत में इसको इस प्रकार भी जान सकते है - अह्नां नाम दिनानां, गण: अर्थात् समूह: अयमेव दिनानां समूहो अहर्गण: कथ्यते। अर्थात् दिनों के समूह को 'अहर्गण' कहते है। अहर्गण के चार प्रकार हैं – सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र। इनमें ग्रहसाधन हेतु तथा गणितीय क्रियाकलापों के लिए सावनाऽहर्गण का प्रयोग किया जाता है।
अभीष्ट समय में ग्रहों की स्थिति क्या हैं? इसको जानने के लिए अहर्गण का साधन किया जाता है। अहर्गण साधन के तीन प्रकार हैं – 1. सिद्धान्त ग्रन्थानुसार 2. करण ग्रन्थों से तथा 3. तन्त्र ग्रन्थों के द्वारा। युगादि से जहाँ अहर्गण साधन किया जाता हैं, उसका नाम **तन्त्र** है। शकादि से अहर्गण साधन की विधि **करण** ग्रन्थों में बतलायी गयी हैं तथा सृष्ट्यादि या कल्पादि से जहाँ अहर्गण साधन का विवेचन प्राप्त होता है, उसे **सिद्धान्त** कहते हैं। अहर्गण के बिना हम गणित ज्योतिष में प्रवेश नहीं पा सकते। अत: ग्रहों का आनयन हेतु अहर्गण का ज्ञान परमावश्यक हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

अहर्गण - दिनों का समूह।

सृष्ट्यादि – सृष्टि के आरम्भ से।

युगादि - युग के आरम्भ से।

शकादि – शक के आरम्भ से।

तन्त्र – जहाँ युगादि द्वारा अहर्गण साधन किया जाता है।

सिद्धान्त – सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:। जहाँ कल्पादि से अहर्गण साधन किया जाता हो।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री/माधवप्रसाद पुरोहित।

2. सिद्धान्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा।

3. ज्योतिषसिद्धान्तमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय।

4. केतकीग्रहगणितम् – आचार्य वेंकट विरचित।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ख

3. ख

4. क

5. क

6. ग

7. घ

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अहर्गण साधन क्यों आवश्यक है? परिचय दीजिये।

2. ग्रहलाघव के अनुसार अहर्गण साधन कीजिये।

3. मकन्दीय अहर्गण का साधन कीजिये।

4. सिद्धान्तशिरोमणि में कथित अहर्गण का वर्णन कीजिये।

5. सूर्यसिद्धान्त में वर्णित अहर्गण का विवेचन कीजिये।

6. मध्यम ग्रह से आप क्या समझते है? उदाहरण सहित मध्यम ग्रह साधन कीजिये।

इकाई – 2 मन्दफल एवं शीघ्रफल

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – मन्दफल एवं शीघ्रफल। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह का अध्ययन कर लिया है। अब आप स्पष्टग्रहानयन के क्रम मन्दफल एवं शीघ्रफल के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

स्पष्टग्रहानयन की प्रक्रिया में अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह लाकर उसमे मन्दफल एवं शीघ्रफल संस्कार किया जाता है। अत: मन्दफल एवं शीघ्रफल ग्रहस्पष्टीकरण के प्रमुख घटक है। सूर्य एवं चन्द्रमा की स्पष्टीकरण में केवल मन्दफल तथा अन्य भौमादि पंचतारा ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल दोनों की आवश्यकता होती है।

गणित ज्योतिष में स्पष्टग्रहों का आनयन प्रमुख आधार माना गया है तथा स्पष्टग्रह के साधन में मन्दफल एवं शीघ्रफल को मुख्य माना गया है। अत: आइए हम इस इकाई में मन्दफल एवं शीघ्रफल का ज्ञान प्राप्त करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- मन्दफल को परिभाषित कर सकेगें।
- मन्दफल की सिद्धि कर सकेगें।
- गणित ज्योतिष में मन्दफल एवं शीघ्रफल को बता सकेगें।
- ग्रहानयन में मन्दफल एवं शीघ्रफल की भूमिका का निरूपण कर सकेंगे।।

2.3 मन्दफल एवं शीघ्रफल परिचय व साधन

मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल।

भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न

होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है।

सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **‘मन्दफल’** है।

मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से मन्द-केन्द्र आता है। मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल ऋण होता है। क्योकि, ग्रह इस इशा में भूवासियों को स्वस्थान से पीछे दिखलाई पड़ता है और यदि केन्द्र तुलादि ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर हो तो वह स्वरूप स्थान से आगे दिखलाई पड़ता है जिससे मन्दफल धन होता है।
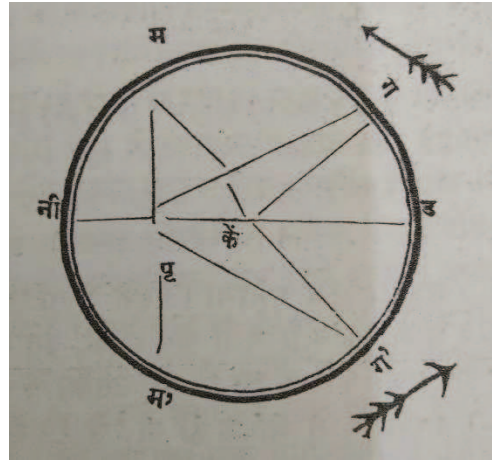
इस क्षेत्र में नी = मन्द नीच, पृ = पृथ्वी, के = कक्षा केन्द्र, उ = मन्दोच्च, ग = मन्दोच्च से ६ राशियों के भीतर ग्रह स्थान और ग = ६ से ऊपर पर १२ राशियों के भीतर ग्रह स्थान, पृगके = ग का मन्दफल ऋण और पृग कें = ग का मन्दफल धन है। ग्रह बाण की दिशा में घूम रहा है। पृ से देखने पर ग बाण की पूँछ की ओर परग’ उसके मुख की ओर स्वस्थान से विचलित मालूम होगा, अत: ऋण मन्दफल को मध्यम ग्रह में घटाना और धन मन्दफल को उसमें जोड़ना चाहिये। नी और उपर मन्दफल का अभाव होगा, कारण कि पृ और कें दोनों स्थानों से ग्रह एक ही सीध में देख पड़ेगा। जब

ग्रह नी उ रेखापर लम्ब भूत पृ गके म बिन्दु पर पहुँचेगा तो उसका परम मन्दफल होगा। म बिन्दु पर मन्द केन्द्र कुछ अधिक ९० अंश रहता है जो चन्द्र-सूर्य के लिए सुखार्थ ९० अंश ही मान लिया जाता है।

सूर्यसिद्धान्त में मन्दफल का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तद्गुणभुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनु: मान्दं लिप्तादिकं फलम्।।

अर्थात् स्फुट मन्दपरिधि को क्रम से भुजज्या और कोटिज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्द परिधि अंशों में हो) या १६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं में हो) भाग देने पर लब्धि क्रम से भुजफल और कोटिफल होंगी। भुजफल जिस धनु की ज्या होगी उसे ही मन्दफल कहते हैं।
इसे सूत्रात्मक रूप में इस प्रकार भी समझ सकते हैं –

$$\textbf{भुज फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\textbf{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणों में ३६० उसी समय होगा जब कि मन्द परिधि अंशों में हो। यदि मन्द परिधि कलाओं में हो तो ३६० की जगह २१६०० रखना होगा।

मन्दफल की उपपत्ति –

ग्रह के मध्य और स्पष्ट स्थानों का अन्तर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गति से अनुलोम दिशा में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर जिसके मध्य में मध्यम ग्रह रहता है, विलोम दिशा में इस प्रकार चल रहा है कि जितने समय में मध्यम ग्रह अपनी कक्षा में (कक्षावृत्त में) पूरा परिक्रमा कर लेता है, उतने ही समय में स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर अपनी परिक्रमा पूरा कर लेता है। मन्द परिधि पर परिक्रमा करते हुए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखलाई पड़ता है, उसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। इसे आप निम्न क्षेत्र द्वारा समझ सकते हैं –
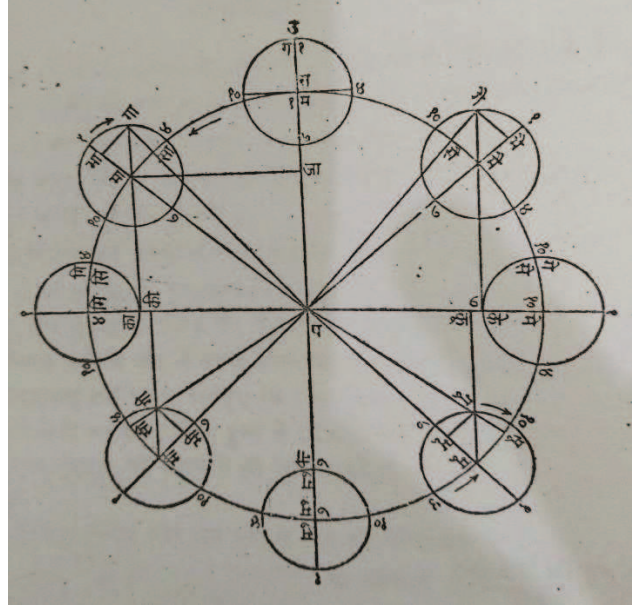
चित्र में प पृथ्वी का केन्द्र है। प को केन्द्र मानकर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत्त खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यम ग्रह अनुलोम दिशा में मध्यम गति से भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रह के आठ स्थान हैं। म वह स्थान है जहाँ मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अन्तर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशा में ग्रह का मन्दोच्च होता है। कक्षा वृत्त में इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं और इसी जगह से आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशा में तीन-तीन राशि के अन्तर पर चार पदों में बाँटा गया है। इसीलिए पहले पद के अन्त में ४, दूसरे पद के अन्त में ७ और तीसरे पद के अन्त में १० के अंक लिखे गये हैं। म,मा मि इत्यादि मध्यम ग्रह के स्थानों को मध्यम मानकर ग्रह की मन्द परिधि के मानानुसार जो छोटे-छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुट मन्द परिधि है। क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षावृत्त के विस्तार उसी अनुपात में नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपात में यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थों में दिये है। मन्द परिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियों के मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। पम, पमा, पमि इत्यादि रेखायें मन्द परिधि के दूर वाले बिन्दु पर जहाँ पहुँचती है वहाँ भी मन्द परिधि पर १ के अंक लिखे हुए हैं। यहाँ से आरम्भ करके मन्द परिधि पर तीन-तीन राशि या ९०-९० अंश के अन्तर पर विलोम दिशा में ४,७,१० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है। यही ग्रह के मन्दोच्च का स्थान है, इसलिए वहाँ उ भी लिखा हुआ है। जितने समय में मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंद परिधि पर

१ से गा तक जाता है, क्योंकि मध्यम ग्रह का कक्षावृत्त पर और स्पष्ट ग्रह का मंद वृत्त (मंद परिधि को मंदवृत्त भी कहते है) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखा के जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखा को मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वी के मध्य से स्पष्ट ग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षावृत्त को सा बिन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में सा बिन्दु पर ही देख पड़ता है। इसी बिन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते है। सा मा धनु अथवा सा प मा कोण को मंद फल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोण को मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते है, इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्र का अन्तर '**मन्दफल**' कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सूर्य एवं चन्द्रमा में कौन से संस्कार होते हैं?
   क. मन्दफल ख. शीघ्रफल ग. मन्दफल-शीघ्रफल घ. मन्दोच्च
2. भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार है?
   क. भूकेन्द्रिक ख. सूर्यकेन्द्रिक ग. चन्द्रकेन्द्रिक घ. मन्दकेन्द्रिक
3. मध्यम ग्रह में से उसका मन्दोच्च घटाने से क्या आता है?
   क. मन्द-केन्द्र ख. शीघ्रकेन्द्र ग. मन्दोच्च घ. शीघ्रोच्च
4. निम्न में मन्दफल का पर्याय है?
   क. कोटिफल ख. भुजफल ग. शीघ्रफल घ. केन्द्रफल
5. मन्द-केन्द्र यदि मेषादि ६ राशियों तक हो तो मन्दफल होता है।
   क. ऋण ख. धन ग. धन-ऋण घ. कोई नहीं
6. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?
   क. ग्रहस्पष्टीकरण के लिए ख. सूर्य-चन्द्र की स्थिति जानने के लिए ग. ग्रहों के वास्तविक व आभाषिक अन्तर जानने के लिए घ. उपयुक्त सभी।
7. प्राचीन रीति के अनुसार चन्द्रमा का परम मन्दफल कितना अंश होता है।
   क. ५ अंश ख.१० अंश ग. १५ अंश घ. २० अंश
8. ९ राशि में कितना अंश होता है?
   क. ३५० अंश ख. ३६० अंश ग. २७० अंश घ. १०८ अंश
9. सूर्य की सबसे छोटी गति कब होती है?
   क. १ दिसम्बर को ख. १ जुलाई को ग. २३ जून को घ. २१ सितम्बर को

शीघ्रफल –

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवाप्तः कर्क्यादौ कोटिजं फलम्।।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।
त्रिज्याऽभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम्।।
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्रमिदं स्मृतम्।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि।।

अर्थात् यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

मन्दफल और शीघ्रफल को इस प्रकार भी समझा जा सकता है –

मध्यमग्रह द्वारा स्पष्टग्रह लाने की रीति की उपपत्ति हमारे ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में परिलेख अर्थात् क्षेत्र द्वारा बतलायी गयी है। ग्रह के मध्यम स्थान और स्पष्ट स्थान में अन्तर पड़ने के कारणों से सम्बन्धी हमारे ज्योतिषियों की कल्पनाओं का ज्ञान होने के लिए उसे यहाँ लिखते हैं। पृथ्वी के मध्य को केन्द्र मानकर ग्रहकक्षावृत्त का निर्माण करते है। भूमध्य के बाहर एक बिन्दु को केन्द्र मानकर दूसरा समरूप वृत्त बनाते है। इस वृत्त का नाम 'प्रतिवृत्त' है। यही मध्यमग्रह का भ्रमणमार्ग माना जाता है। मध्यमग्रह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देगा वहीं उसका स्पष्टस्थान होता है।
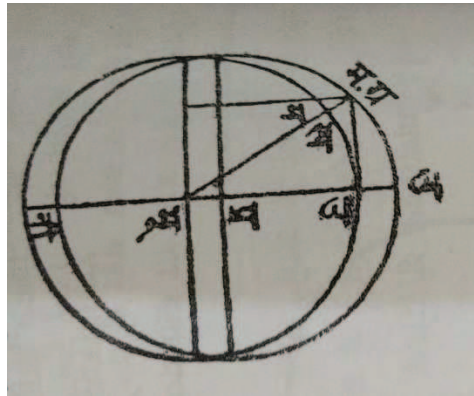
इस क्षेत्र में भूकेन्द्रवाला वृत्त कक्षावृत्त और प्र- केन्द्रवाला प्रतिवृत्त है। मग मध्यमग्रह है और तदनुसार कक्षावृत्त में भी म उसका स्थान है। प्रतिवृत्तीय म.ग्र से भू पर्यन्त जानेवाली रेखा में भूमि पर स्थिति द्रष्टा को ग्रह दिखाई देता है। इस रेखा को कर्ण कहते है। यह कर्ण कक्षावृत्त में स्पष्टस्थान में लगता है। कक्षावृत्त में यही स्पष्टग्रह दिखाई देता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रह के अन्तर म.स्प को फलसंस्कार कहते हैं। इस फल का अनुभूत परमाधिक मान परमफल या अन्त्यफल कहलाता है। प्रतिवृत्त का केन्द्र भूकेन्द्र से अन्त्यफल की भुजज्या तुल्य अन्तर पर रहता है। इस फल को '**मन्दफल**' कहते है। मध्यमग्रह में इस मन्दफल का संस्कार करने से मन्दस्पष्ट होता ग्रह आता है। सूर्य और चन्द्रमा में इस एक ही फल का संस्कार करने से वे स्पष्ट हो जाते है, परन्तु अन्य पाँच ग्रह इस प्रकार लायी हुई मन्दस्पष्ट स्थिति के अनुसार भूस्थित द्रष्टा को नहीं दिखाई देते आधुनिक सिद्धान्तानुसार यह कहना चाहिये कि सूर्यस्थित द्रष्टा को उनकी यह स्थिति दिखाई देगी। उनमें एक और शीघ्रफल नामक संस्कार करने से जो स्थिति आती है उसके अनुसार वे पृथ्वी स्थित द्रष्टा को दिखाई देते हैं। शीघ्रफल लाने के लिए शीघ्रप्रतिवृत्त की कल्पना करनी पड़ती है और मन्दस्पष्ट ग्रह को मध्यमग्रह मानकर शीघ्रफल लाया जाता है। मन्दफल और शीघ्रफल लाने की क्रियाओं को क्रमश: मन्दकर्म और शीघ्रकर्म कहते हैं।

शीघ्रकर्म का स्वरूप यह है –

मन्दकर्म में जिसे कक्षावृत्त कहते हैं उसी को शीघ्रकर्म में शीघ्रप्रतिवृत्त मानते हैं और उसके केन्द्र से परमशीघ्रफलज्या तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर दूसरा कक्षावृत्त बनाते हैं। इस शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त के मध्य में पृथ्वी को ही मानते हैं। शीघ्रप्रतिवृत्त में अपनी गति से भ्रमण करता हुआ मन्दस्पष्ट ग्रह इस शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका शीघ्रस्पष्ट स्थान होता है। पृथ्वी स्थित द्रष्टा को ग्रह यहीं दिखाई देता है। कोई-कोई मन्दकक्षावृत्त को ही शीघ्रकक्षावृत्त मानकर उसके केन्द्र से शीघ्रान्त्यफलज्या तुल्य अन्तर पर कक्षावृत्ततुल्य ही शीघ्रप्रतिवृत्त बनाते हैं और मन्दकक्षावृत्त में प्रथम कृति द्वारा आये हुए मन्दस्पष्ट ग्रह को शीघ्रप्रतिवृत्त में ले जाने पर वह कक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देता है वहीं उसका स्पष्ट स्थान मानते हैं। दोनों विधियों का परिणाम समान ही होता है।

उपयुक्त क्षेत्र से यह ज्ञात होता है कि प्रतिवृत्त में भ्रमण करनेवाले ग्रह का पृथ्वी से सर्वत्र समान अन्तर नहीं रहता। ग्रह जिस समय उ बिन्दु में अर्थात् उच्च में रहता है उस समय उसका अन्तर महत्तम और नी बिन्दु अर्थात् नीच में रहने पर लघुतम होता है। यह प्रकार ग्रहों की कक्षा दीर्घवृत्ताकार मानने जैसा ही हुआ। भू इस दीर्घवृत्त का एक केन्द्र है।

परमेश्वर का मन्दशीघ्रफल सम्बन्धी परिलेख सुबोध है। क्षेत्र निर्माण के लिए इसका अध्ययन किया जा सकता है –

मूल श्लोक -

त्रिज्याकृतं कुमध्यं कक्षावृत्तं भवेत्तु तच्छैघ्रयम्।
शीघ्रदिशि तस्य केन्द्रात् शीघ्रान्त्यफलान्तरे पुन: केन्द्रम्।।
कृत्वा विलिखेद् वृत्तं शीघ्रप्रतिमण्डलाख्यमुदितमिदम्।
इदमेव भवेन्मान्दे कक्षावृत्तं पुनस्तु तत्केन्द्रात्।।
केन्द्रं कृत्वा मन्दात्यफलान्तरे वृत्तमपि च मन्ददिशि।
कुर्यात् प्रतिमण्डलमिदमुदितं मान्दं शनीज्यभूपुत्रा:।।
मान्दप्रतिमण्डलगास्तत्कक्षायां तु यत्र लक्ष्यन्ते।
तत्र हि तेषां मन्दस्फुटा: प्रदिष्टास्तथैव शैघ्रे ते।।
प्रतिमण्डले स्थिता: स्युस्ते लक्ष्यन्ते पुनस्तु शैघ्राख्ये।
कक्षावृत्ते यस्मिन् भागे तत्र स्फुटग्रहास्ते स्यु:।।
मान्दं कक्षावृत्तं प्रथमं बुधशुक्रयो: कुमध्यं स्यात्।
तत्केन्द्रान्मन्द दिशि मन्दान्त्यफलान्तरे तु मध्यं स्यात्।।
मान्दप्रतिमण्डलस्य तस्मिन् यत्र स्थितो रविस्तत्र।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं शैघ्रस्य तस्य मानमपि च गदितम्।।
शीघ्रस्ववृत्ततुल्यं तस्मिंचरत: सदा ज्ञशुक्रौ च।

अर्थात् पृथ्वी को मध्य और त्रिज्या को व्यासार्ध मानकर बनाया हुआ कक्षावृत्त ही शैघ्र (शीघ्रकर्मसम्बन्धी कक्षावृत्त) है।

इसके केन्द्र से शीघ्रदिशा में शीघ्रान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर पुन: एक वृत्त का निर्माण करें। इसे शीघ्रप्रतिमण्डल कहेंगे। मन्दकर्म में यही कक्षावृत्त होता है। इसके केन्द्र से मन्ददिशा मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर केन्द्र मानकर फिर एक वृत्त बनायें। इसे मन्दप्रतिवृत्त कहते हैं। शनि, गुरु और मंगल मन्दप्रतिवृत्त में गमन करते समय मन्दकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहीं उनके मन्दस्पष्ट बताये गये हैं (वे मन्दस्पष्ट शनि, गुरु और भौम के स्थान हैं)। इसी प्रकार शीघ्रप्रतिवृत्त में भी जानना चाहिये। वे शीघ्रकक्षावृत्त में जहाँ दिखाई देते हैं वहाँ उनका स्पष्टस्थान जानना चाहिये। बुध, शुक्र के मन्दकक्षावृत्तों का मध्य पृथ्वी है। उनके केन्द्रों से मन्दान्त्यफल तुल्य अन्तर पर मन्दप्रतिमण्डल का मध्य होता है। उसमें जहाँ सूर्य हो वहाँ शीघ्रप्रतिमण्डल का मध्य समझना चाहिये।

उसका (शीघ्रप्रतिवृत्त का) मान शीघ्रस्ववृत्त में तुल्य बताया है। बुध शुक्र सदैव उसी वृत्त में घूमते रहते हैं। नीचोच्चवृत्त नामक एक वृत्त के आधार पर फलसंस्कार की उपपत्ति की एक और रीति है। भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि के छेद्यकाधिकार में उसके विषय में लिखा है –

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्।।
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुंगमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ् नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम्।।
नीचोच्चवृत्ते भगणांकितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या।।
शैघ्र्येऽनुलोमं भ्रमति स्वतुंगादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात्।
अतो यथोक्तं मदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद् द्युचरस्तदग्रे।।

कक्षास्थित मध्यमग्रह को केन्द्र मानकर अन्त्यफलज्या तुल्य व्यासार्ध का एक वृत्त बनायें। इसे नीचोच्चवृत्त कहते हैं। भूमध्य और मध्यमग्रह में जाती हुई एक रेखा खीचींये। वह भूमध्य से अत्यधिक दूरी पर (नीचोच्च वृत्तपरिधि में) जहाँ लगे उसे उच्च और अत्यल्प दूरी पर जहाँ लगे उसे नीच जानना चाहिये। नीचोच्च के मध्य में एक तिर्यक् रेखा खीचें। नीचोच्चवृत्त की परिधि में राशि-अंशों को अंकित कर लें। मध्यमग्रह अपने-अपने उच्च से आरम्भ कर अपनी-अपनी मन्द या शीघ्र केन्द्रगति से मन्दनीचोच्चवृत्त में विलोम और शीघ्रनीचोच्चवृत्त में अनुलोम भ्रमण करते हैं, अत: उसके अनुसार अपने-अपने मन्दशीघ्र उच्च से मन्दशीघ्रकेन्द्र दो उसके आगे मन्द के आगे मन्दस्पष्ट और शीघ्र के आगे शीघ्रस्पष्ट ग्रह दिखाई देता है।

2.4 प्राचीन रीति से चन्द्रमा और सूर्य के स्पष्ट स्थान -

चन्द्रमा की सबसे कम गति वहाँ पर होती है जहाँ पर वह पृथ्वी से सबसे दूर होता है। उस स्थान को चन्द्रमा का '**मन्दोच्च**' कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा की गति जहाँ सबसे अधिक होती है, उसे '**मन्द नीच**' कहते है। मन्दोच्च से मन्दनीच तक आने में चन्द्रमा को आधे मन्द केन्द्रीय मास का समय लगता है। मन्दोच्च भी चन्द्रमा की दिशा में ही चलता है और उसके एक बार से दूसरी बार तक मन्दोच्च पर पहुँचने में जो समय लगता है उसे मन्दोच्च मास या भारतीय पद्धति में मन्दकेन्द्रीय मास कहते हैं। एक मन्दोच्च मास २७.५५४५५ दिनों का होता है। इसलिए आधे मन्दोच्च मास में १३.७७७२८ दिन हुए। मन्दोच्च पर चन्द्रमा की गति ११°। ६/३५ और मन्दनीच पर १५°। १४/३५ उपलब्ध की गई थी। अत: दोनों गतियों के अन्तर को १३.७७७ दिनों में विभक्त कर मन्दोच्च पर की चन्द्रगति में प्रतिदिन जोड़कर मन्दनीच तक की गति की गणना की जाती थी। इस प्रकार भी चन्द्रमा

की मध्यम गति १३°।१०।३५ ही प्राप्त थी। गणना करने से यह भी ज्ञात था कि मन्दोच्च मास का चौथाई अर्थात् ९० अंश तुल्य मन्दोच्च की दूरी पर चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान मध्यम चन्द्रमा से ५ अंश पीछे और मन्दोच्च से २७० अंश की दूरी पर ५ अंश आगे रहता था, इसलिए इस ५ अंश को **चन्द्रमा का परम मन्दफल** कहा जाता था।

सूर्य की भी स्पष्ट स्थिति का निर्धारण चन्द्रमा के समान ही किया गया था। सूर्य की गति जहाँ सबसे कम होती है वह स्थान (मन्दोच्च) आकाश में अत्यन्त मन्दगति से चलता है। इसलिए उसके एक बार मन्दोच्च पर पहुँचकर दूसरी बार फिर उस पर जाने के मध्य का समय लगभग एक सौर वर्ष के तुल्य ही है। फलत: सहस्रों वर्षों तक सूर्य की सबसे कम और सबसे अधिक गति आकाश में एक ही स्थान पर देखी जाती है। ३० जून या १ जुलाई को सूर्य पृथ्वी से अधिकतम ऊँचाई पर और २९-३० दिसम्बर को सबसे कम दूरी पर होता है। इसलिए १ जुलाई को सूर्य की गति सबसे छोटी और ३१ दिसम्बर को सबसे बड़ी होती है। ३०-३१ सितम्बर को इसकी गति मध्यम गति के तुल्य होगी। इसलिए १ जुलाई से ३० दिसम्बर तक सूर्य की गति प्रतिदिन बढ़ती रहती है। ३१ दिसम्बर से ३० जून तक प्रतिदिन घटती ही जाती है। वैसे फिर घटते-घटते ३१ मार्च या १ अप्रैल को मध्यम गति के बराबर हो जाती है। फलत: ३१ सितम्बर को दृश्य सूर्य मध्यम सूर्य से लगभग २ अंश पीछे तथा १ अप्रैल को मध्यम सूर्य से २ अंश आगे रहता था। सूर्य की इस स्थिति का पता लगाने के लिए ठीक आधी रात के समय दक्षिणोत्तर वृत्त पर तारों की स्थिति में १८० अंश जोड़ना होता था। गणना का आधार चित्रा का चमकीला तारा था, जो क्रान्ति वृत्त से थोड़े ही अन्तर पर था। चित्रा से १८० अंश की दूरी पर आरम्भ बिन्दु माना गया था। क्योंकि उस समय वसन्तसम्पात इस आरम्भ बिन्दु से थोड़े ही आगे था। चीन में तो चित्रा को ही गणना का आरम्भ बिन्दु माना गया था।

सूर्य की मध्यम गति हमारे वर्ष दिन संख्या ३६५.२५६३ से ३६० में भाग देने पर ५९।८।१० ज्ञात थी। सूर्य की मन्दकेन्द्र गति भी इतनी ही थी। क्योंकि रवि मन्दोच्च की वार्षिक गति भी अत्यन्त स्वल्प है। इसलिए मध्यम और स्पष्ट सूर्य के सर्वाधिक अन्तर २ अंश को वर्ष के चौथाई दिन संख्या ९१.३ से भाग देकर मध्यम सूर्य के दैनिक ह्रास-वृद्धि की एक समान संख्या प्राप्त कर ली गई। अपने मन्दोच्च स्थान के मध्यम सूर्य में प्रतिदिन इस संख्या के एक गुने, दुगुने आदि को घटाते या जोड़े जाने पर स्पष्टसूर्य बना लिया जाता था। इस विधि को चन्द्रमा में प्रयुक्त करके चन्द्रमा की स्पष्ट स्थिति बतायी जा सकती हैं। मकरन्द सारिणी आदि में इस विधि का प्रयोग हुआ है और एक बड़ी मात्रा में भारतीय पंचांग आज भी इसी विधि से बनाये जाते है। इस विधि से बने पंचांगों की तिथि नक्षत्रादि में अधिक से अधिक एक घटी का अन्तर प्राचीन रीति से साधित स्पष्ट रवि चन्द्रमा से बनाई तिथियों

और नक्षत्रों में होता है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मानव पृथ्वी पर वास करते हैं। अत: वे ग्रहस्पष्टीकरण स्वस्थानाभिप्रायिक अर्थात् भू (भूकेन्द्रिक) सापेक्ष करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मन्दस्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वी की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एक ही संस्कार (मन्दफल) किया जाता है। और चूँकि उनका यह संस्कार भूकेन्द्रिक है, अत: इसके होते ही उनका भूकेन्द्रिक स्पष्टीकरण हो जाता है, पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनों की ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं - 1. मन्दफल 2. शीघ्रफल। भौमादि पंचताराग्रहों का मन्दफल संस्कार सूर्यकेन्द्रिक हैं अत: उनकी मन्दस्पष्ट स्थिति भूकेन्द्रिक न होकर केवल सूर्यकेन्द्रिक है। इनकी स्थिति को भूकेन्द्रिक बनाने के लिये हमें इनकी मन्दस्पष्ट स्थिति में इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रिक संस्कार करना पड़ता है। सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं में एक बिन्दु पृथ्वी से दूरतम और दूसरा उससे निकटतम है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओं के ठीक केन्द्र में न होकर उससे कुछ अलग हटकर है। वस्तुत: चन्द्र-सूर्य की कक्षायें अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभि में पृथ्वी है। इसी प्रकार भौमादि पंचताराओं की कक्षायें भी अण्डाकार वृत्त हैं। जिनकी एक नाभि में सूर्य है। इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानों से युगपत् देखने पर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्दनीच पर न हो तो, स्वकक्षा में भिन्न स्थानों पर दिख पड़ता है। इन स्थानों के प्रतीयमान अन्तर का नाम **'मन्दफल'** है।

यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के उपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्रकेन्द्र ३ राशि के उपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटाने पर जो लब्धि आती है, उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ देने पर और योगफल का वर्गमूल निकाले पर जो प्राप्त होता है वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पाँच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

स्थानाभिप्रायिक – स्वस्थान के सापेक्ष

भूकेन्द्रिक – पृथ्वी को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

सूर्यकेन्द्रिक – सूर्य को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना

मन्दफल – भुजफल जिस अंश की ज्या हो वही **मन्दफल** कहलाता है।

शीघ्रफल – त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दने पर लब्धि जिस धनु कोण की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है।

आभाषिक – देखने में लगने की स्थिति

बिम्ब – वस्तु

वेधोपलब्ध – वेध-यन्त्रों द्वारा प्राप्त।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ख
5. क
6. घ
7. क
8. ग
9. ख

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मन्दफल किसे कहते है?

2. प्राचीन रीति से सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति कैसे बतलायी जाती थी?

3. मन्दफल साधन क्यों किया जाता है?

4. शीघ्रफल क्या है?

5. भौमादि पंचताराग्रहों में मन्दफल-शीघ्रफल संस्कार कैसे किया जाता है?

6. मन्दफल साधन की उपपत्ति बतलाइये।

इकाई - 3   उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है-उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यमग्रह, मन्दफल तथा शीघ्रफल को जान लिया है। अब आप सिद्धान्त ज्योतिष में ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

उदयो: अन्तरं उदयान्तरम्। नाड़ीदेशीयस्वदेशीयोरन्तरं नाम उदयान्तरम्। लंकादेश से स्वदेशीय अन्तर का नाम देशान्तर है। इसी प्रकार भुजान्तर भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्।

ग्रहानयन में तथा गोल में उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर को बतलाया गया है। आइए इस इकाई में हम इन सभी का अध्ययन कर जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- उदयान्तर को बता सकेंगे।
- देशान्तर एवं भुजान्तर को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहानयन में उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर की भूमिका को स्पष्ट कर पायेगें।
- गोलीय रीति से भी उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 उदयान्तर परिचय

अहर्गण एवं अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल साधन के पश्चात् उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार ग्रहों के स्पष्टीकरण में किये जाने वाले संस्कार है। उदयो: अन्तरं नाम उदयान्तरम्। सामान्यतया दो उदय (नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त में स्थित कल्पितार्क एवं मध्यमार्क) का अन्तर उदयान्तर कहलाता है। 'उदयान्तर' भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद आचार्य भास्कराचार्य जी का नवीन परिष्कृत अनुसन्धान है। उदयान्तर का उल्लेख भास्कराचार्य जी से पूर्व 'सिद्धान्तशेखर' के प्रणेता आचार्य श्रीपति ने की थी। किन्तु कालान्तर में स्पष्ट रूप से भास्कराचार्य जी ने इसका परिष्कार कर ग्रहसाधन में इसका उपयोग किया। उदयान्तर संस्कार सूर्य के क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त में स्थिति के अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

सिद्धान्तशिरोमणि नामक सिद्धान्त ग्रन्थ में आचार्य का कथन है –

युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य भुक्तासवोऽर्कस्य निरक्षदेशे।
मेषादिभुक्तोदयसंयुता ये यश्चापनांशान्वितमध्यभानो:।।
लिप्तागणस्तद्विवरेण निघ्नी गतिर्ग्रहस्य द्युनिशासुभक्ता।

स्वर्णं ग्रहे चेदसवोऽधिकोना इदं ग्रहणामुदयान्तराख्यम्।।

अर्थात् मध्यमरवि को सावन बनाकर उसकी राशि के भुक्तांशों के निरक्ष देश पर भुक्त असु ज्ञात करके उनमें मेष से आरम्भ करके सूर्य की पिछली भुक्त राशियों के निरक्षोदय असु मान युक्त देने से मेष से लेकर सूर्य की भुक्त राशि अंश तक के उदय असु प्राप्त होंगे। फिर सायन रवि की कला बनावें तथा इन दोनों फलों के अन्तर को ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करके लब्धि उदयान्तर कला फल को ग्रह में यदि कला से असु अधिक हो तो युक्त करे और यदि अल्प हो तो ऋण करें। अर्थात् रवि विषम पद में हो तो ऋण तथा सम पद में हो धन करे।

3.3.1 उदयान्तर का प्रयोजन

ज्योतिषशास्त्र की सार्थकता सिद्धि में अहर्गण द्वारा अनुपात सिद्ध लंकादेशीयक्षितिजासन्न ग्रह को स्वदेशीयक्षितिजगत करने हेतु मध्यम सावन से स्फुटसावन साधन की क्रिया में उदयान्तर संस्कार की आवश्यकता होती है। अब प्रश्न उठता है कि उदयान्तर किसका नाम है? तो इसका उत्तर है कि - उदययोरन्तरमुदयान्तरम्। अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार गोलीय रीति के अनुसार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी '**उदयान्तर**' है।
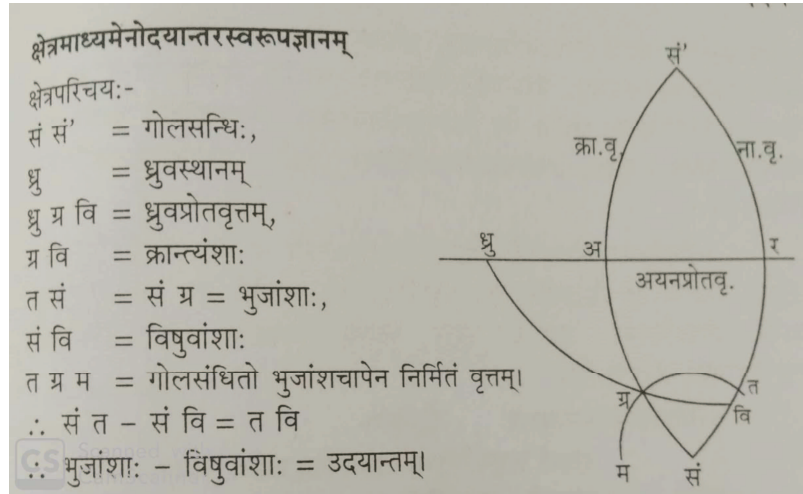
क्षेत्र द्वारा उदयान्तर बोध

उदयान्तर का सूत्र –

$$\pm \frac{(\text{रवि निरक्षोदयासु} - \text{रविउदय कला}) \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{२१६५९}$$

उदयान्तर की उपपत्ति –

अहर्गण से उत्पन्न ग्रह मध्यम सावन मान से लिया जाता है जो स्फुट सावनमान से चलता है, अत: यहाँ अन्तर उत्पन्न होता है। रवि की मध्यम गति की कला तुल्य असु को नाक्षत्र काल में युक्त करने से ६० घटी होता है। ६०/५९/८ यह मध्यम सूर्य सावन है। नाक्षत्र दिन २१६०० असु तुल्य होता है, (२३ घं. ५६ मिनट) और सावन दिन २४ घण्टे का होता है जो २१६५९असु तुल्य होता है। अत: इनका अन्तर ५९ असु लगभग (४ मिनट) होता है। सूर्य की मध्यम सावन दिनगति ५९१८ कलादि के तुल्य होती है जो ६० घटी में होती है। इस प्रकार प्रतिदिन गति में इतना अन्तर पड़ने से प्रतिमास राशि उदय अन्य समय पर होता है। उतना अन्तर अहर्गण से साधित करने से मध्यम ग्रह करने में नहीं आता जिससे सूर्योदयकालिक ग्रह प्राप्त नहीं होते, कभी सूर्योदय से कुछ आगे अथवा कभी कुछ पीछे ग्रह में अन्तर होता है। इसलिए आचार्य ने कहा है कि –

''दशशिर: पुरि मध्यम भास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यम:।।''

अब स्फुट और मध्यम अहर्गण से प्राप्त ग्रह में अन्तर का आनयन बताते हैं। मेष से आरम्भ करके सूर्य जो राशियाँ भुक्त करता है उनके उदय असु का योग कर लेते हैं। उस असुवात्मक काल में दिनात्मक अहर्गण उत्पन्न होता है। फिर मेषादि से भुक्त कला तुल्य अन्तर ज्ञात करते हैं। इन असु और कला में जितना असु अन्तर होता है उतना ही असु अन्तर अहर्गण में पड़ता है। यदि अहोरात्र असु में इतनी गति प्राप्त होती है तो उन अन्तर असु में कितनी होगी? प्राप्तफल ग्रह में असु अधिक होने पर योग करते है अन्यथा ऋण करते हैं।

हमने ग्रह की स्थिति में सूर्यस्पष्ट तथा विषुवांश के अन्तर से उत्पन्न संस्कार को भुजान्तर के नाम से किया है। दूसरा यह संस्कार उदयान्तर के नाम से किया जाता है। यह संस्कार नाड़ीवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त तिर्यक् स्थिति के कारण उत्पन्न होता है। श्रीपति तथा भास्कराचार्य के परवर्ती आचार्यों ने इस संस्कार को अपने ग्रन्थों में कहा है।

उदयान्तर की अन्य प्रकार से व्याख्या –

चेत् स्वोदयै: स्फुटरवेरसव: कृतास्ते
विश्लेषिताश्च यदि मध्यरवे: कलाभि:।
बाह्वन्तराख्यमुदयान्तरकं चराख्यं
कर्मत्रयं विहितमौदयिके तदा स्यात्।।

अर्थात् यदि हम स्फुट रवि के स्वस्थान के स्वोदय मान असु प्राप्त करने के लिए मेषादि से सावन स्फुट रवि के भुक्तासुओं का योग करें और उनका अन्तर मध्यम सूर्य कला से करके उनके अन्तर को

ग्रहभुक्ति (गति) से गुणा करके अहोरात्र असु से विभक्त करें। ये फल यदि अधिक हो तो ग्रह में युक्त करे अन्यथा ऋण करे। इस संस्कारसहित भुजान्तर, उदयान्तर तथा चरान्तर तीनों कर्मों से युक्त स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष – हम मध्यम सावन की अहर्गण की गणना करते हैं स्फुट सावन अहर्गण की नहीं करते। जब हम यह कहते हैं कि मध्यम सूर्योदय तक अमुक अहर्गण दिवस गत हो चुके हैं उस समय तक वास्तव में अमुक अहर्गण से कुछ अधिक भिन्न तुल्य समय व्यतीत हो चुका होता है जो स्फुट सावन अहर्गण होता है। इस 'अधिक भिन्न' संख्या के मान तुल्य यह उदयान्तर संस्कार किया जाता है।

और भी –

अहर्गणो मध्यमसावनेन कृतश्चलत्वात् स्फुटसावनस्य।
तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेनोनयुता: फलेन।।
लंकोदये स्युर्न कृतास्तथाद्यैर्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकं च।।

जो अहर्गण साधन किया जाता है वह मध्यम मानीय सावन अहर्गण होता है क्योंकि स्फुट सावन दिन चलायमान होते हैं। अत: उनको अनुपात विधि के द्वारा साधित (स्फुट) नहीं कर सकते। युगारम्भ से वर्तमान वर्षादि के पूर्व तक जो अहर्गण के मध्यम सावन दिन हैं वे स्फुट सावन होते हैं, किन्तु वर्तमान रवि वर्षादि के आगे के जितने सावन दिन हैं वे स्फुट नहीं होते। अत: मध्यम सावन अहर्गण से उत्पन्न साधित ग्रहों में मध्यम तथा स्पष्ट सावन दिनों के अन्तर से प्राप्त (साधित) ग्रहों की अल्प चाल ऊन युक्त करने से वे लंका पर सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं। लंका पर सूर्य मध्यम होता है।

उदयान्तरकर्म –

मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमाना:।
तदन्तरं यत् स्फुटमध्ययोस्तद्द्युपिण्डयो: स्याद्विवरं गतिघ्नम्।।
हृतं द्युरात्रासुभिराप्तलिप्ताहीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पका: स्यु:।
तदन्यथाढयास्तु निजोदयैश्चेत् भुक्तासुपूर्वं विहितं तदानीम्।।
कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम्।।

अर्थात् सायन सूर्य के मेषादि से आरम्भ राश्यादि के भुक्त असुओं के निरक्षोदय मानों १६७०, १७९५, १९३५ आदि का योग करके उनमें सूर्य की वर्तमान राशि के भुक्त अंशादि को उस राशि के उदयमानों से गुणा करके ३० से विभक्त करके प्राप्तफल को युक्त करने से मध्यम सूर्य के भुक्त असु होते हैं। नक्षत्र दिनान्त मान के पश्चात् इतने असु पश्चात् लंका में मध्यमसूर्योदय होता है और इसी सूर्योदयकालिक ग्रहों का साधन किया जाता है तथा अहर्गण आनयन के सिद्धान्त से साधित अहर्गण

मध्यम सूर्य कला तुल्य असुकाल तक के नक्षत्र दिनान्त के आगे तक का होता है। अत: असु तथा कला मानों में जितना अन्तर होता है उतना सूर्योदय में अन्तर होता है। अत: इसको उदयान्तर काल कर्म कहते हैं।

इन उदयान्तर असुओं को ग्रहगति से गुणा करके सूर्य के सावन अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि कला को ग्रह में यदि कला से असु अल्प हो तो ऋण करे तथा अधिक हो तो धन करे। इस प्रकार करने से ग्रह निरक्ष देश में स्पष्ट होते हैं। यदि स्वदेश के लिए अर्थात् निरक्ष देश के अनन्तर किसी अन्य स्थान के ग्रह स्पष्ट करें तो वे स्वदेश के राशि उदयमानों द्वारा पूर्ववत करें तथा इस प्रकार क्रिया करने से प्राप्त ग्रह स्पष्ट चर कर्म युक्त ही प्राप्त होते हैं स्पष्ट सूर्य के लिए भुक्त असु, स्वोदय असु लिए गये हैं तथा पूर्वोक्त कर्म किये गये हैं तो वह सूर्य (ग्रह) स्पष्ट उदयान्तर, भुजान्तर तथा चर कर्म तीनों कर्मों से युक्त होता है।

उदयान्तर कर्म जो यहाँ कहा गया है वह यदि नहीं किया जावे तो जितना उसका अन्तर एक पाद के मध्य में पड़ता है वह एक पाद अन्त में विपरीत अल्प होकर शून्य हो जाता है अर्थात् वर्ष के एक चरण अर्थात् ३ माह के अन्त में घटते-घटते शून्य हो जाता है। यह ३ मास (एक पाद) के मध्य तक बढ़कर परम हो जाता है तथा उसके पश्चात् घटते हुए ३ मास के अन्त में पुन: शून्य हो जाता है। क्योंकि सूर्य एक मास में एक राशि चलता है अत: तीन मास में तीन उदित राशियों के उदय असुमानों का योग १६७० + १७९५ + १९३५ = ५४०० होता है तथा तीन राशियों की उदयकला ३ × ६० × ३० = ५४०० होती है। अत: प्रत्येक पदान्त में उदयान्तर काल शून्य हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. उदययोरन्तरम् नाम किम ?
   क. भुजान्तर ख. उदयान्तर ग. देशान्तर घ. क्रान्ति
2. भुजांश एवं विषुवांश का अन्तर क्या होता है?
   क. स्पष्ट ग्रह ख. मध्यम ग्रह ग. उदयान्तर घ. चर
3. नाक्षत्र दिन कितना असु तुल्य होता है?
   क. ६० असु ख. २१६०० असु ग. ४३२००० घ. ५०० असु
4. उदयान्तर संस्कार की आवश्कता होती है?
   क. ग्रहसाधन में ख. मन्दफल साधन में ग. चर साधन में घ. कोई नहीं
5. उदयान्तर संस्कार का वर्णन भास्कराचार्य से पूर्व किसने किया था?
   क. श्रीपति ने ख. लगध ने ग. लल्ल ने घ. आर्यभट्ट ने

3.3.2 देशान्तर परिचय व साधन

गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन-उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है। यह देशान्तर सदैव पूर्व में धन तथा पश्चिम में ऋण होता है, ऐसा जानना चाहिये। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश एक ही दिशा के (पूर्वी रेखांश अथवा पश्चिमी रेखांश) के होंगे तो प्राप्त अन्तर ही देशान्तर कहलायेगा। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश भिन्न दिशा में स्थित होंगे तो उनका योग करके 4 से गुणा करने पर प्राप्त घण्टा मिनटादि देशान्तर होगा।

जैसे भारत का नियामक रेखांश पूर्वदिशा में $82^{\circ}/30$ एवं अमेरिका का नियामक रेखांश पश्चिम दिशा में $75^{0}/00$ है। अत: यहाँ पर $82^{0}/30 + 75^{0}/00 = 157^{0}/30$ हुआ। 4 से गुणा करने पर $157^{0}/30 \times 4 = 628$ मि./ 120 सै. = 630 मिनट = 10 घं./30 मि. भारत अमेरिका दोनों देशों का देशान्तर सिद्ध हुआ। अमेरिका की घड़ियों में 10 घ./30 मि. जोड़ने पर भारत का स्टैण्डर्ड समय ज्ञात होगा। भारत के समय में 10 घ./ 30 मि. घटाने पर अमेरिका का समय ज्ञात होगा।

1 अंश = 4 मिनट के हिसाब से प्रत्येक देश के नियामक रेखांशों को 4 से गुणा कर जो घण्टा-मिनट सैकेण्ड प्राप्त हो, उतना ही ग्रीनविच स्थान की घड़ियों से समय का अन्तर प्राप्त किया जाता है। पूर्वी रेखांशों में यह अन्तर ग्रीनवीच से पहले का एवं पश्चिमी रेखांशों का समय ग्रीनविच से बाद का होता है। दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर का 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टे मिनटादि को सम्बन्धित देशों का **देशान्तर** कहते हैं। जैसे भारतवर्ष का पूर्वी नियामक रेखांश 82^{0}-30 है एवं जापान का पूर्वी नियामक रेखांश $135^{0}/00$ है। $135 \times 4 = 540$ मिनट = 4 घण्टे ग्रीनविच से आगे है तथा भारत का पूर्वी रेखांश 82^{0}-30 × 4 = 328 -120 =330 मिनट = 5 घण्टे 30 मिनट आगे है। ग्रीनविच से जापान का देशान्तर 9 घण्टे एवं भारत का ग्रीनविच से देशान्तर 5 घण्टे 30 मिनट है। 9 घण्टे -5 घ. – 30 मिनट = 3 घण्टे – 30 मिनट जापान और भारत का देशान्तर है। इसको इस प्रकार समझ सकते हैं। जापान का मानक रेखांश पूर्वी 135^{0}-00। भारत मानक रेखांश 82^{0}-30। दोनों का अन्तर 135 -82^{0}= 30। = $52^{0}/30$ आया। इसे 4 से गुणा करने पर 52^{0} -30 ×4= 208-120 =210 मिनट.= 3 घण्टे 30 मिनट जापान एवं भारत का देशान्तर है। भारत एवं जापान दोनों देशों के नियामक रेखांश पूर्वी है। अत: दो देशों के मानक रेखांश एक दिशा में होने से दो देशों के मानक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणा करके देशान्तर की जानकारी होती है। भिन्न दिशा के मानक रेखांशों के योग को 4 से गुणा करके प्राप्त घण्टा मिनटादि **दो देशों का देशान्तर** होता है। जैसे पेरु देश का पश्चिमी नियामक रेखांश 75° है। भारत का पूर्वी नियामक रेखांश 82-30 है। भिन्न दिशा में दो

देशोंका मानक रेखांशों का योग किया 75°+ 82°-30 = 157°-30 इसको 4 से गुणा करने पर 157° – 30 × 4 = 628 -120 = 630 मिनट = 10 घं. 30 मिनट पेरु तथा भारत के बीच देशान्तर सिद्ध हुआ। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है। पेरु ग्रीनविच से पश्चिमी रेखांश $75^0 \times 4 = 300$ मिनट = 5 घण्टे एवं ग्रीनविच से भारत पूर्वी रेखांश 82°-30 = 5घं.-30 मि. दोनों का योग करके 5 + 5-30 = 10 घा. 30 मि. पेरु एवं भारत का देशान्तर होगा। जिस समय पेरु में घड़ियाँ प्रात: 6 बजायेंगी उस समय भारतीय यान्त्रिक घड़ियों में 10 घं. 30 मि. आगे अर्थात् शाम के 4 बजकर 30 मि. का समय होगा। दो देशों के अन्तर को देशान्तर कहते हैं।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित देशान्तर संस्कार –

येऽनेन लंकोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्यु:।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद्याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम्।।

उदयान्तर कर्म के द्वारा जैसे ग्रह लंका में सूर्योदयकालिक होते हैं वैसे ही देशान्तर कर्म के द्वारा ग्रह स्वस्थान के क्षितिज पर सूर्योदयकालिक होते हैं। देशान्तर दो तरह का होता है एक पूर्वापर जिसको यहाँ देशान्तर कहा गया है तथा दूसरा याम्योत्तर होता है, यह चर संज्ञक होता है (इसका वर्णन आगे की इकाई में किया गया है।)

पूर्वापर देशान्तर –

यलंकोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुव:।।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषये पश्चाद्धि रेखोदयात्।
स्यात् तस्मात् क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम्।।

इसका अर्थ यह है कि जो लंका, उज्जयनि के उपर से होते हुए कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरू स्थान तक जाता है, उसको भुव की मध्य रेखा कहते हैं। इस रेखास्थ देशों में सूर्योदयास्त से पूर्व दिशा में स्थित देशों में सूर्य का उदय तथा अस्त पहले होता है तथा पश्चिम में स्थित देशों में बाद में होता है। इनके सूर्योदयास्तों का काल उनके, मध्य रेखा से अन्तर योजन स्पष्ट भूवेष्ट के अनुपात द्वारा ज्ञात कर लेते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ६० घटियाँ प्राप्त होती हैं तो मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य योजन अन्तर में कितनी होगी –

$$\frac{\text{६० × मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य}}{\text{स्फुट परिधि योजन}} = \text{प्राप्त कला फल}$$

यदि इष्ट स्थान पूर्व में हो ग्रह में ऋण तथा पश्चिम में हो तो धन संस्कार करना चाहिये। इस प्रकार उस

स्थान पर, मध्य रेखा पर सूर्योदय के पश्चात् सूर्योदयकालिक ग्रह होते हैं।

भूपरिधि से देशान्तर ज्ञान के लिए और भी कहा है –

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्य: पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनै:।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद् ग्रहे।।

अर्थात् मध्य रेखा से स्वस्थान के अक्षांश पर जितने पल तुल्य योजन दूरी हो उतने देशान्तर योजन पल को ग्रहगतिकला से गुणा करके स्वदेशीय स्पष्टपरिधि से भाग देने से प्राप्त कलादिफल को मध्य रेखा देश से पूर्व में स्वस्थान स्थित हो तो घटाने पर तथा पश्चिम में हो तो जोड़ने पर स्वस्थान के मध्यम ग्रह होते है।

विशेष – स्फुट परिधि पर एक ही अक्षांश पर स्थित दो प्रदेशों के बीच की पूर्वापर दूरी को देशान्तर कहते हैं। देशान्तर योजन को ६० से गुणा करके स्पष्ट भूपरिधि से भाग देने पर घटी आदि देशान्तर समय होता है।

चन्द्रग्रहण में देशान्तर संस्कार –

प्राग्भूविभागे गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं विधो: स्यात्।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या भवन्ति देशान्तरनाडिकास्ता:।।
तद्घ्नं स्फुटं षष्टिहृतं कुवृत्तं भवन्ति देशान्तरयोजनानि।
घटीगुणा षष्टिहृता द्युभुक्ति: स्वर्णं ग्रहे चोक्तवदेव कार्यम्।।
अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभि: प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्ति:।
उर्ध्वं तथाधश्चरनाडिकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलयाते।।

अर्थात् पूर्णग्रास चन्द्रग्रहण के दिन स्वस्थान में, यदि चन्द्रमा के मध्य रेखा स्थान पर गणितागत उन्मीलन काल के बाद (वेध सिद्ध) उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा देश से पूर्व में स्थित समझना चाहिये और यदि गणितागत काल से पहले ही उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित जानना चाहिये अर्थात् मध्य रेखा पर किसी पूर्ण ग्रास चन्द्रग्रहण के समय की गणित से गणना करना चाहिये। उसी चन्द्रग्रहण का स्पर्श काल स्वस्थान पर भी वेध से देखे यदि स्वस्थान पर चन्द्रग्रहण का स्पर्श काल स्वस्थान पर भी वेध से देखे यदि स्वस्थान पर चन्दग्रहण स्पर्श मध्य रेखा पर गणित द्वारा ज्ञात चन्द्रग्रहण स्पर्श से पूर्व में हो तो स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित होता है। (यदि उन्मीलन पहले हो तो पश्चिम में स्थित होता है।) इसके विपरीत होने पर पश्चिम में स्थित होता है। इन दोनों कालों का (स्वस्थान पर तथा मध्य रेखा दोनों पर स्पर्श या दोनों पर उन्मीलन काल का) अन्तर देशान्तर काल होता है।

नीचे भूगोल के आधे गोले के पृष्ठ का चित्र हैं जिसमें उत्तर गोल के सी, अ, स, सा स्थानों के अक्षांश एक ही हैं इसलिए इन चारों स्थानों की स्फुट परिधि भी एक ही है। इन स्थानों की उत्तर-दक्षिण रेखा क्रम से उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं। यदि उ अ ल द रेखा पर अ अवन्ती (उज्जैन) और ल लंका के स्थान हों तो इसको भारतवर्ष की मध्य रेखा कहेंगे, जैसे आजकल ग्रीनविच से जाने वाली उत्तर दक्षिण रेखा यूरोप और अमेरिका वालों की भूमध्य रेखा कही जाती है। किसी स्थान की स्फुट परिधि का वह खण्ड जो उस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखा और मध्य रेखा के बीच में पड़ जाता है **उस स्थान का देशान्तर (योजनों में) कहलाता है**, जैसे क्षेत्रानुसार स का देशान्तर सअ, सा का देशान्तर सा अ और सी का देशान्तर सीअ हुए। इसी तरह प का देशान्तर प ल, पा का देशान्तर पा ल और पी का देशान्तर पी ल हुए। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर है तथापि प, स के देशान्तर योजनों में समान नहीं है क्योंकि स की स्फुट परिधि प की स्फुट परिधि (भूपरिधि) से छोटी है। यदि इसी रेखा पर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का (योजनों में) और भी छोटा होगा।

चित्र ११
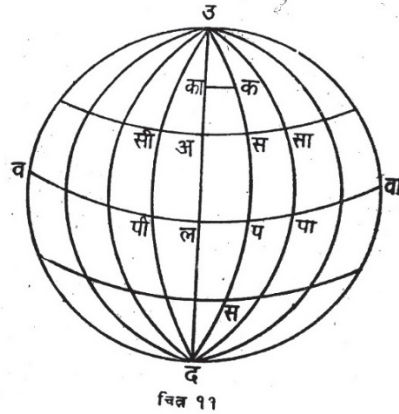
3.4 भुजान्तर परिचय

भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुपात द्वारा अहर्गण से साधित समस्त ग्रह लंकाक्षितिज में मध्यमार्क वा लंकार्धरात्रिकालिक होते हैं। उसी को स्पष्टोदय में स्फुटार्क करणार्थ तथा मध्यरात्रिकालिकस्फुटकरणार्थ भुजान्तर संस्कार करते है।

मूल श्लोक –

भानो: फलं गुणितमर्कयुतस्य राशेर्व्यक्षोदयेन खखनागमही १८०० विभक्तम्।

गत्या ग्रहस्य गुणितं द्युनिशासुभक्तं स्वर्णं ग्रहेऽर्कवदिदं तु भुजान्तराख्यम्।।

अर्थात् सूर्य के भुजफल को जिस राशि में सूर्य हो उस राशि के निरक्षोदय काल से गुणा करके एक राशि कला मान १८०० से विभक्त करने से प्राप्तफल को पुन: ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उस ग्रह में सूर्य के भुजफल के धन ऋण के अनुसार धन-ऋण करना चाहिये।

सूत्र रूप में भुजान्तर संस्कार –

$$\pm \frac{\text{सू.भुजफल} \times \text{सूर्य स्थित राशि निरक्षोदय असु} \times \text{दैनिक ग्रहगति}}{१८०० \times २१६५९}$$

अब यहाँ भुजान्तर संस्कार करके सूर्योदय कालिक ग्रह को स्फुट सूर्योदय कालिक किया जाता है। मध्यम तथा स्फुट सूर्य का अन्तर सूर्य का भुजान्तर होता है। यहाँ सूर्य के मन्दफल को असु में बनाने के लिए अनुपात किया कि यदि एक राशि कला १८०० उदित होने में निरक्ष देश में इतने असु लगते हैं तो फल कला में कितने लगेंगे? लब्धि फल असु में होता है। फिर दूसरा अनुपात किया कि यदि अहोरात्र असु में इतनी ग्रह गतिकला होती है तो अभीष्ट मंद भुजफल कला असु में कितनी होगी? ये कला मध्य सूर्य से पूर्व स्फुट सूर्य होने पर ऋण तथा बाद में होने पर धन करना चाहिये।

सूर्यसिद्धान्तोक्त भुजान्तर संस्कार –

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता: कार्या ग्रहेऽर्कवत्।।

सूर्य के भुजफल (मन्दफल) को ग्रहगतिकला से गुणाकर गुणनफल को भचक्रकला (२१६०० कला) से भाग देने पर जो कलात्मक लब्धि हो उसे भुजान्तर संस्कार कहते हैं। उसका संस्कार अभीष्ट ग्रह में सूर्य मन्दफल के अनुसार करना चाहिये। अर्थात् सूर्यमन्दफल धन हो तो ग्रह में लब्धि जोड़ने से मन्दफल ऋण हो तो ग्रह से लब्धि को घटाने से अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट ग्रह होता है।

जैसे मध्यमार्क एवं स्फुटार्क का अन्तर मन्दफल होता है, वैसे ही मध्यरात्रिकालिकस्फुटार्क एवं मध्यरात्रिकालिक ग्रह के अन्तर का नाम **भुजान्तर** है।

यहाँ इस प्रकार अनुपात बनता है कि यदि भचक्रकलासु में ग्रहगतिकला मिलता है तो मन्दफलकलाअसु में क्या? फल भुजान्तरकला के रूप में आता है।

सूत्र -

$$\frac{\text{ग्रहगतिकला} \times \text{मन्दफलकलासु}}{\text{भचक्रकलासु}} = \text{भुजान्तरकला।}$$

अभ्यास प्रश्न – 2

1. दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट को क्या कहते हैं?

क. उदयान्तर ख. भुजान्तर ग. देशान्तर घ. चरान्तर

2. 1 अंश कितने समय के बराबर होता है?

क. 1 मिनट ख. 2 मिनट ग. 3 मिनट घ. 4 मिनट

3. मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम क्या है?

क. चर ख. भुजान्तर ग. देशान्तर घ. क्रान्ति

4. सूर्य किस वृत्त में भ्रमण करता है?

क. क्रान्ति ख. नाड़ी ग. कदम्ब घ. दृगवृत्त

5. भचक्र कला का मान कितना होता है?

क. ५०० ख.६० ग.२१६०० घ. १६००

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि अहर्गण एवं अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल एवं शीघ्रफल साधन के पश्चात् उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर संस्कार ग्रहों के स्पष्टीकरण में किये जाने वाले संस्कार है। उदयो: अन्तरं नाम उदयान्तरम्। सामान्यतया दो उदय (नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्त में स्थित कल्पितार्क एवं मध्यमार्क) का अन्तर उदयान्तर कहलाता है। 'उदयान्तर' भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद आचार्य भास्कराचार्य जी का नवीन परिष्कृत अनुसन्धान है। उदयान्तर का उल्लेख भास्कराचार्य जी से पूर्व 'सिद्धान्तशेखर' के प्रणेता आचार्य श्रीपति ने की थी। किन्तु कालान्तर में स्पष्ट रूप से भास्कराचार्य जी ने इसका परिष्कार कर ग्रहसाधन में इसका उपयोग किया। उदयान्तर संस्कार सूर्य के क्रान्तिवृत्त तथा नाड़ीवृत्त में स्थिति के अन्तर के कारण उत्पन्न होता है। ज्योतिषशास्त्र की सार्थकता सिद्धि में अहर्गण द्वारा अनुपात सिद्ध लंकादेशीयक्षितिजासन्न ग्रह को स्वदेशीयक्षितिजगत करने हेतु मध्यम सावन से स्फुटसावन साधन की क्रिया में उदयान्तर संस्कार की आवश्यकता होती है। अब प्रश्न उठता है कि उदयान्तर किसका नाम है? तो इसका उत्तर है कि - उदययोरन्तरमुदयान्तरम्। अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार गोलीय रीति के अनुसार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी '**उदयान्तर**' है।

गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है। यह देशान्तर सदैव पूर्व में धन तथा पश्चिम में ऋण होता है, ऐसा जानना चाहिये। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश एक ही दिशा के (पूर्वी रेखांश अथवा पश्चिमी रेखांश) के होंगे तो प्राप्त अन्तर ही देशान्तर कहलायेगा। यदि दोनों देशों के नियामक रेखांश भिन्न दिशा में स्थित होंगे तो उनका योग करके 4 से गुणा करने पर प्राप्त घण्टा मिनटादि देशान्तर होगा। भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अनुपात द्वारा अहर्गण से साधित समस्त ग्रह लंकाक्षितिज में मध्यमार्क वा लंकार्धरात्रिकालिक होते हैं। उसी को स्पष्टोदय में स्फुटार्क करणार्थ तथा मध्यरात्रिकालिकस्फुटकरणार्थ भुजान्तर संस्कार करते है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

देशान्तर – गणित ज्योतिष के दृष्टिकोण से दो देशों के नियामक रेखांशों के अन्तर को 4 से गुणाकर प्राप्त घण्टा मिनट ही उन दोनों देशों का देशान्तर कहलाता है।

उदयान्तर – अर्थात् नाड़ीवृत्तीय कल्पितार्क एवं क्रान्तिवृत्तीय मध्यमार्कोदयान्तर का नाम उदयान्तर है। इसी प्रकार विषुवांश और भुजांश का अन्तर और मध्यम और स्फुट सावन का अन्तर का नाम भी 'उदयान्तर' है।

भुजान्तर – भुजयोरन्तरं नाम भुजान्तरम्। अर्थात् मध्यम एवं स्पष्टग्रह भुज के अन्तर का नाम भुजान्तर है।

मध्मार्क – मध्यम सूर्य

स्फुटार्क – स्पष्ट सूर्य

नाड़ीवृत्त – ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम नाड़ीवृत्त है।

क्रान्तिवृत्त – कदम्ब स्थान से ९० अंश की त्रिज्या से निर्मित वृत्त का नाम क्रान्तिवृत्त है।

लंकार्धरात्रिकालिक – लंका की अर्धरात्रि कालिक समय।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्तज्योतिषमंजूषा – प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ख
4. क
5. क

अभ्यास प्रश्न -2 के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ख
4. क
5. ग

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदयान्तर किसे कहते है? लिखिये।
2. उदयान्तर का महत्व प्रतिपादित करते हुए क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये?
3. देशान्तर से आप क्या समझते है?
4. देशान्तर साधन कीजिये ?
5. भुजान्तर संस्कार क्या है?
6. भुजान्तर का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसके साधन विधि बतलाइये।

इकाई - 4 क्रान्ति एवं चरान्तर विवेचन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के चतुर्थ खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - क्रान्ति एवं चरान्तर विवेचन। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने गणित ज्योतिष के प्रमुख विषय अहर्गण एवं मध्यमग्रह, मन्दफल, शीघ्रफल, उदयान्तर, देशान्तर एवं भुजान्तर आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रस्तुत इकाई में क्रान्ति एवं चरान्तर के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

सूर्य की स्थिति जानने के लिए क्रान्ति का साधन किया जाता है तथा अहोरात्र वृत्त में स्थित चरान्तर का ज्ञान ग्रहसाधन हेतु होता है।

गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं चरान्तर का ज्ञान परमावश्यक है। अत: आइए इस इकाई में क्रान्ति एवं चरान्तर के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- क्रान्ति को बता सकेगें।
- क्रान्ति साधन में समर्थ होगें।
- चरान्तर का विवेचन कर सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण में क्रान्ति एवं चरान्तर के महत्व को समझा सकेंगे।

4.3 क्रान्ति एवं चर परिचय

सैद्धान्तिक दृष्टि से क्रान्ति का सम्बन्ध सूर्य से है। नाड़ीवृत्त से सूर्य कितना उत्तर या दक्षिण भाग में स्थित है? इस ज्ञान को जानने या समझने का नाम ‘क्रान्ति’ है। हमारे ग्रन्थों में सूर्य की परमक्रान्ति २४ अंश मानी जाती है। क्रान्तिवृत्त का इतना तिर्यकत्व शकपूर्व २४०० वर्ष के लगभग था। वह क्रमश: न्यून होता जा रहा है। शक १८१८ के आरम्भ का उसका मान २३/२७/१० है अर्थात् सम्प्रति हमारे ग्रन्थों की क्रान्ति में ३२ अंश ५० कला अशुद्धि है। शक ४०० के आसन्न तिर्यकत्व लगभग २३/३९ था।

भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी

वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है।

जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

पुनरावृत्ति के रूप में आप इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं-

सायन मेष प्रवेश (21 मार्च के लगभग) काल पर (नाड़ी वृत्त पर) सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। 21

मार्च से सायन मेष, वृष, मिथुन राशि में सूर्य निरन्तर उत्तर दिशा में बढ़ता हुआ नाडी वृत्त से उत्तर की ओर जितना हटता है, उतनी ही उत्तराक्रान्ति बढ़ती रहती है। सायनमिथुनराशि के अन्त (21 जून के लगभग) में सूर्य अधिकतम 32^0/27। के लगभग नाडीवृत से उत्तर जाता है। पुनः सायन कर्क प्रवेश काल (22 जून) से वापिस लौटकर धीरे धीरे 22 सितम्बर (सायन कन्या राशि की समाप्ति) तक नाड़ी वृत्त पर आ जाता है। तुलाराशि के प्रारम्भ (23 सितम्बर) को क्रान्ति शून्य होकर सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश कर जाता है। उत्तर की भांति सायन-तुला-वृश्चिक एवं धनुराशि में (23 सितबर से 21 दिसम्बर तक) सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति अधिकतम 23^0/27। तक होती है। सायन मकर प्रवेश से सायन कन्यान्त तक (22 दिसम्बर से 20 मार्च तक) दक्षिणाक्रान्ति घटती रहती है। सायन तुलाप्रवेश (21 मार्च) को क्रान्ति पुनः शून्य हो जाती है। पूरे वर्ष यह क्रम चलता ही रहता है -
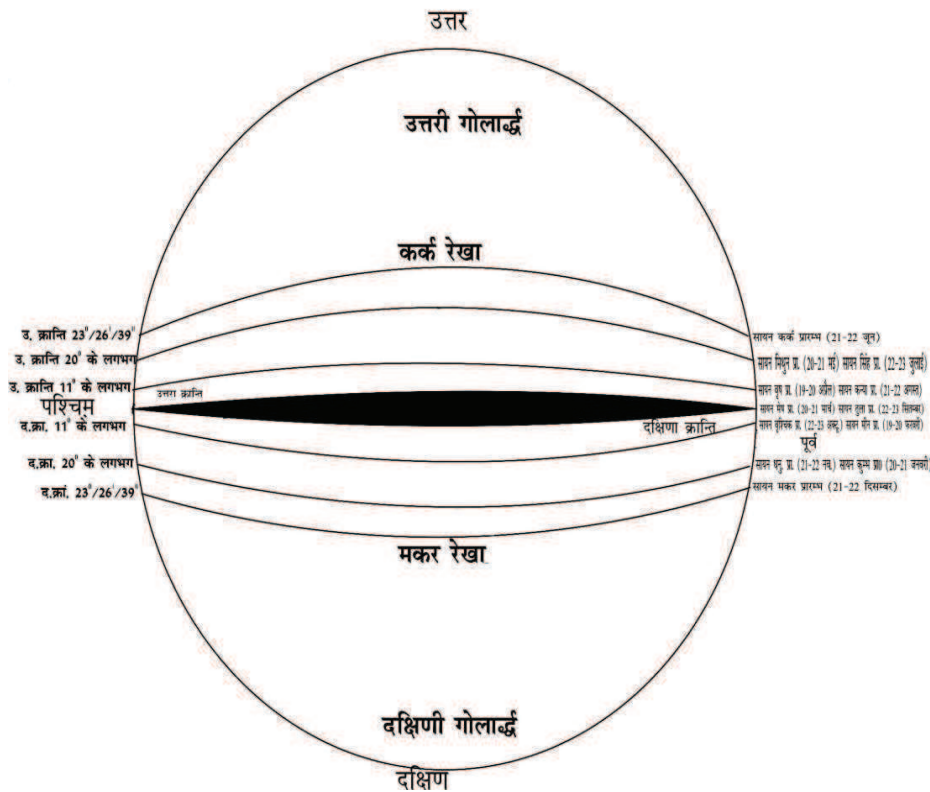
आप चित्र के माध्यम से क्रान्ति का बोध भली प्रकार कर सकते हैं। खगोल के मध्य पूर्व-पश्चिम में गया हुआ विषुवद् वृत्त आकाश मण्डल को उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्ध के रूप में दो भागों में विभाजित करता है। नाडीवृत्त (विषुवद् वृत्त) पर सूर्य प्रतिवर्ष सायन मेषएवं सायनतुलाराशि प्रवेश के समय (21-22मार्च एवं 22-23 सितम्बर को) आता है। नाडीवृत्त पर सूर्य की क्रान्ति 0 शून्य रहती है। 21 मार्च से प्रतिदिन उत्तरदिशा की ओर अग्रसर होता हुआ सूर्य विषुवद वृत्त से जितना हटता जायगा, उतने ही अंश-कला उत्तरा क्रान्ति में वृद्धि होती जायगी। 21 जून को यह सर्वाधिक दूरी विषुवद् से बनाता है। 21 जून को कर्क रेखा को स्पर्श करते हुए सूर्य की परम क्रान्ति $23^0/26/39$ होती है। (प्राचीन काल में यह परम क्रान्ति 24^0 अंश मानी गई थी) ज्योतिषशास्त्र के प्रायः सभी मानकग्रन्थों में परमक्रान्ति के 24^0 होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु आजकल वेधद्वारा सूर्य की परमक्रान्ति $23^0/26/39$ उपलब्ध है। सूर्य 21 जून से नाडी वृत्त की ओर लौटना प्रारम्भ करते हुए 22-23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त पर आने के साथ क्रान्ति 0 शून्य हो जाती है। 23 सितम्बर से सूर्य दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके दक्षिण दिशा मे अग्रसर होता हुआ 21 दिसम्बर के लगभग मकर रेखा को स्पर्श करता है। तब भी सूर्य की परमाधिक दक्षिणाक्रान्ति $23^0/26/39$ होती है। (प्राचीनकाल में यह भी 24^0 अंश थी) 22 दिसम्बर से सूर्य की दक्षिणाक्रान्ति में ह्रास प्रारम्भ होता है, 21 मार्च को नाडीवृत्त पर सूर्य के स्पर्श करने के कारण क्रान्ति पुनः 0 अंश पर आजाती है। यह क्रम पूरे वर्ष इसी तरह चलता रहता है।

संक्षेप में 21 मार्च से 21 जून तक क्रमशः 0 से $23^0/26/39$ तक उत्तरा क्रान्ति उपचीयमान होती है। 21 जून को कर्क रेखा से सूर्य दक्षिणामुखी होकर अपचीयमान उत्तरा क्रान्ति के साथ 23 सितम्बर को विषुवद् वृत्त के स्पर्श करते ही 0 शून्य क्रान्ति पर आ जाता है। 23 सितम्बर से दक्षिणगोलार्द्ध में प्रवेश करके उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ 21 दिसम्बर तक मकर रेखा को स्पर्श करते ही परमक्रान्ति $23^0/26/39$ प्राप्त कर लेता है। मकर रेखा को स्पर्श करने के पश्चात् सूर्य उत्तराभिमुखी होकर अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति के साथ पुनः 21 मार्च को नाडी वृत्त पर आ जाता है।

- 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य उत्तगोल में रहता है।
- 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य दक्षिण गोल में रहता है।
- 21 मार्च से 20 जून तक उपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 21 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति होती है।
- 23 सितम्बर से 21 दिसम्बर तक उपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

- 22 दिसम्बर से 20 मार्च तक अपचीयमान दक्षिणाक्रान्ति होती है।

सूर्य 21 जून से दक्षिणायन (कर्क रेखा से लौटने पर) एवं 22 दिसम्बर से (मकर रेखा से लौटने पर) उत्तरायण प्रारम्भ हो जाता है।

चर की स्थिति -

आचार्य भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में चर की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि –

उन्मण्डलक्ष्मा वलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकाल:।
तज्याऽत्र कुज्या चर शिञ्जनि स्यात् व्यासार्ध वृत्ते परिणामिता सा।।

अर्थात् सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से चरखण्ड सदैव द्युरात्रवृत्त में अर्थात् अहोरात्र वृत्त में स्थित होता है।

4.4 क्रान्ति एवं चर साधन

गणितीय प्रक्रिया द्वारा सूक्ष्म क्रान्ति का साधन त्रिकोणमिति की सहायता से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ - 6 जुलाई 2012 शुक्रवार को विद्यापीठ पंचांग में स्पष्ट सूर्य = $2/20^0/20/20$ तथा केतकी अयनांश = $24^0/00/53$ है। स्पष्ट सूर्य में अयनांश जोड़ने पर सायन सूर्य = राश्यादि सूर्य

$2/20^0/20/20$

अंशादि $+ \underline{24^0/00/53}$

3-14-21-13

राश्यादि सायन सूर्य

राशि संख्या को 30 से गुणा कर अंशादि सायन सूर्य = $104^0/21/13$ सुविधा की दृष्टि से अंशादि को दशमलव में परिणत करने पर = 104^0, 3537 = अंशादि सायन सूर्य हुआ। साइन्टिपिफक कैलुकेलेटर (संगणक) की सहायता से, सूक्ष्मक्रान्ति का साधन अनुपात द्वारा किया जाता है- 90^0 अंशकी ज्या अर्थात् त्रिज्या (नोट-यहाँ पर त्रिज्या का मान 1 होता है) में परमक्रान्तिज्या (ज्या 23.4442) प्राप्त होती है। तो अभीष्ट सायन सूर्य की ज्या (ज्या $104^0.3537$) में क्या?

$$= \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{सायनसूर्यभुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} = \text{ज्या}\ (23.4442) \times \text{ज्या}\ (104.3537)}{1}$$

= .385436219 = अभीष्ट क्रान्तिज्या। कैलकुलेटर द्वारा चाप लेने पर = 220.6708 = 220 अंश

40। कला अभीष्ट क्रान्ति। क्रान्तिसारिणी में 6 जुलाई को क्रान्ति 260/40 लिखी हुई है। त्रिकोणमिति से परिचित लोग बगैर सारिणी के कैलकुलेटर (संगणक) की सहायता से सूक्ष्म क्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यलोग क्रान्तिसारिणी में अभीष्ट दिनाङ्क की क्रान्ति लेकर आगे चर साधन की प्रक्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। जैसा कि आप जान चुके हैं क्षितिज के ऊपर स्थित सूर्यादि ग्रहों के बिम्बो का दर्शन होता है। क्षितिज के नीचे स्थित बिम्बों का दर्शन नहीं होता। प्रत्येक स्थान का क्षितिज भिन्न-भिन्न होने के कारण एक समय पर सभी बिम्ब सभी स्थानों पर दिखलाई नहीं दे सकते हैं। जितने समय सूर्य का दर्शन होता रहे उतने समय का दिन, सूर्य के दिखलाई न देने पर रात्रि की परिभाषा भी आपलोग जानते ही हैं। किसी भी वृत्त (गोल) के आधे भाग में 180^0 अंश अथवा 30 घटी अर्थात् 12 घण्टे होते हैं। चित्र के माध्यम से स्पष्ट दिखलाई दे रहा है, कि विषुवद् वृत्त पर सूर्य रहने की स्थिति में (21 मार्च और 23 सितम्बर को) उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज अथवा दक्षिणी अक्षांश वालों के क्षितिज में ठीक आधे भाग में अर्थात् 12 घण्टे सूर्य के दर्शन होने से 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। निरक्षदेशीय क्षितिज में प्रतिदिन 12 घण्टे का दिन एवं 12 घण्टे की रात्रि होती है। उत्तर एवं दक्षिणी क्षितिज के अन्दर उससे या कम समय सूर्य के दिखलाई देने पर दिनरात्रिमान में ह्रास वृद्धि दिखलाई देगी। 21 मार्च से 22 सितम्बर तक सूर्य के उत्तरी गोलार्द्ध में रहने

क्रान्ति- सारिणी

दिनाङ्क → माह ↓	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31
जनवरी +	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18	17	17
	4	59	54	48	42	36	28	21	13	4	16	47	37	27	16	05	54	12	30	18	5	51	38	24	10	55	40	24	9	53	36
फरवरी +	17	17	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	10	9	9	9	8	8	07	x	x
	20	02	45	28	10	52	33	15	56	37	17	57	37	17	57	36	16	55	34	13	51	29	07	45	23	1	39	16	53	x	x
मार्च +	07	07	6	6	5	5	5	4	4	4	3	3	2	2	2	1	1	0	0	+0	0	0	1	1	1	2	2	3	3	3	4
	30	07	45	22	58	35	12	49	25	02	38	14	51	27	03	40	16	52	29	05	−19	43	06	30	54	17	41	04	27	51	14
अप्रैल −	4	5	5	5	6	6	6	7	7	8	8	8	9	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14	14	14	x
	37	00	23	46	09	32	55	17	39	02	24	45	07	29	51	12	33	54	15	35	56	16	36	56	16	35	54	13	32	50	x
मई −	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	21	21	21
	09	27	44	03	19	36	52	09	25	41	56	12	27	41	55	09	23	36	49	02	14	26	38	49	00	10	20	30	39	48	57
जून −	22	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	x
	05	13	21	28	34	41	47	52	57	02	06	10	14	17	19	22	23	25	26	26	26	26	26	25	23	21	19	16	13	10	x
जुलाई −	23	23	22	22	22	22	22	22	22	22	22	21	21	21	21	21	21	20	20	20	20	20	20	19	19	19	19	18	18	18	18
	06	02	57	51	46	40	34	27	20	13	05	57	48	39	30	20	10	59	49	38	26	14	02	49	36	23	10	15	42	28	12
अगस्त −	17	17	17	17	16	16	16	16	15	15	15	14	14	14	13	13	13	13	12	12	12	11	11	11	10	10	9	9	9	8	8
	58	43	27	11	55	38	22	05	48	30	12	54	36	18	59	40	21	02	42	23	03	42	22	02	41	20	59	38	17	55	34
सितम्बर −	8	7	7	7	6	6	6	5	4	4	4	4	3	2	2	2	1	1	1	0	0	0	0	0	0	1	1	2	2	2	x
	12	50	28	06	44	22	00	37	14	52	29	06	43	20	57	34	11	47	4	01	37	−14	+09	33	56	19	43	06	29	53	x
अक्टूबर +	3	3	4	4	4	5	5	5	6	6	7	7	7	8	8	8	9	9	10	10	10	11	11	11	12	12	12	13	13	13	14
	16	39	02	26	49	12	35	58	20	43	06	28	51	13	35	59	19	42	03	25	46	07	28	49	10	30	51	11	31	51	10
नवम्बर +	14	14	15	15	15	16	16	16	16	17	17	17	18	18	18	18	19	19	19	19	19	20	20	20	20	20	21	21	21	21	x
	30	49	08	26	45	03	20	38	55	12	29	45	01	17	32	47	02	16	30	44	58	11	23	35	47	59	10	20	31	41	x
दिसम्बर +	21	21	22	22	22	22	22	22	22	22	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23	23
	50	59	08	16	24	31	38	44	50	56	01	06	10	14	17	20	22	24	25	26	26	26	26	25	24	22	19	17	13	10	05

नोट :- सूर्य की क्रान्ति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक उत्तरा (-) तथा 23 सितम्बर से 20 मार्च तक दक्षिणा (+) होती है। क्रान्ति अंश एवं कला में है।

की स्थिति में चित्र में उत्तरी अक्षांश वालों के क्षितिज में निरक्ष क्षितिज के आधेभाग + चर + चर। तुल्य सूर्य दर्शन होने से दिनमान में वृद्धि तथा रात्रिमान में ह्रास स्पष्ट दिखलाई दे रहा है। उसी समय (21 मार्च से 22 सितबर) दक्षिणक्षितिज वृत्त के अन्तर्गत द द। भाग में ही सूर्य का दक्षिण अक्षांश वालों को दर्शन हो रहा है। जो कि आधेवृत्त से बहुत कम है। अतः सिद्ध हुआ कि सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर दक्षिण अक्षांश वाले स्थानों पर दिन का मान 12 घण्टे से न्यून एव रात्रिमान 12 घण्टे से अधिक होता है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में (23 सितम्बर से 21 मार्च) सूर्य के जाने पर दक्षिणी अक्षांश पर चित्र में नीचे 12 घंटे +चर + चर। अर्थात् 12 घण्टे से अधिक समय का दिन एवं 12 घण्टे से कम समय की रात्रि स्पष्ट दिखलाई दे रही है। उसी समय (23 सितम्बर से 21 मार्च) उत्तर अक्षांश वाले स्थानों के क्षितिजवृत्त का अल्पभाग केवल स स। भाग पर ही सूर्य का दर्शन हो रहा है। अतः दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के क्षितिज काल में उत्तर – अक्षांश वाले स्थानों पर दिन में ह्रास एवं

चित्र सं.- 5
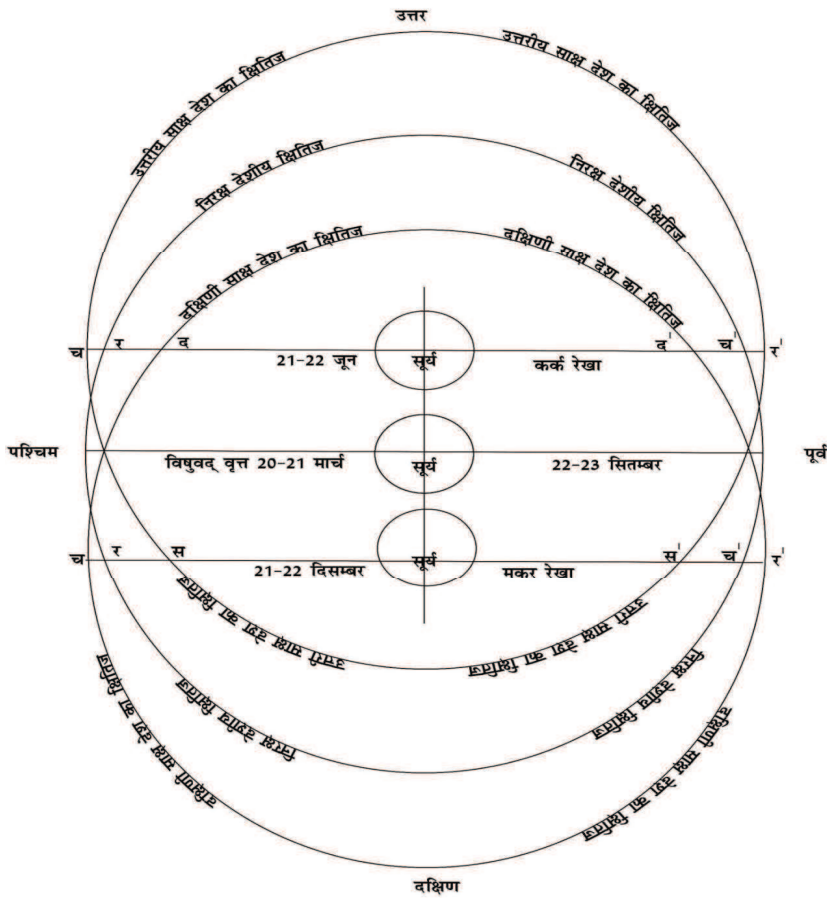
रात्रि मान में वृद्धि स्पष्ट दिखलाई दे रही है। आशा है आपलोग चित्र के माध्यम से दिनरात्रि के ह्रास-वृद्धिमान में चर की भूमिका से परिचित हो गये होंगे।

बोध प्रश्न –

1. सैद्धान्तिक दृष्टि से सूर्य का सम्बन्ध किससे है?
   क. चर से ख. क्रान्ति से ग. चरान्तर से घ. कदम्ब से
2. सूर्य की परमक्रान्ति का मान कितना है?
   क. २३ अंश ख. २५ अंश ग.२४ अंश घ. २६ अंश
3. सायन मेषराशि में प्रवेश के समय क्या है?
   क. २२ मार्च ख. २३ सितम्बर ग. २१ सितम्बर घ. २१ मार्च
4. जब सूर्य मेषादि छ: राशियों में होता है, तो कौन सा गोल होता है।
   क. दक्षिण गोल ख. उत्तर गोल ग. खगोल घ. भगोल
5. सूर्य जब कर्कादि छ: राशियों में होता है, तो कौन सा अयन होता है?
   क. उत्तरायण ख. दक्षिणायन ग. अयन घ. कोई नहीं
6. चरखण्ड सदैव किस वृत्त में होता है?
   क. क्रान्तिवृत्त ख. नाड़ीवृत्त ग. अहोरात्रवृत्त घ. दृगवृत्त
7. 23 सितम्बर से 20 मार्च तक सूर्य किस गोल में रहता है।
   क. दक्षिण ख. उत्तर ग. पूर्व घ. पश्चिम
8. ध्रुवस्थान से ९० अंश की त्रिज्या निर्मित वृत्त को क्या कहते हैं?
   क. नाड़ीवृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. पूर्वापर वृत्त घ. अहोरात्रवृत

चर ज्ञात करने की विधि-

प्रत्येक स्थान का क्षितिजवृत्त पृथक्-पृथक् होने से प्रत्येक स्थान पर सूर्योदय भिन्न-भिन्न समय पर होना अवश्यम्भावी है। सूर्योदय होने पर दिन का प्रारम्भ एवं सूर्यास्त होने पर दिन की समाप्ति तथा रात्रि का प्रारम्भ होकर पुनः दूसरे दिन सूर्योदय तक रात्रि की समाप्ति एवं द्वितीय दिन का प्रारम्भ होता है। भिन्न-भिन्न समय मे सूर्योदय होने से विभिन्न स्थानों पर धूप घड़ी का समय भी पृथक् पृथक् होता है ।

सामान्य रूप से जिस स्थान पर जब भी सूर्योदय होता है। उस स्थान पर धूप घड़ी (सूर्यघड़ी) का प्रातः 6.00 बजे का समय स्थूल मध्यममान से होता है। मध्याह्न (दिन के आधे भाग) में स्थानीय 12 बजे सूर्यास्त पर शाम के 6.00 बजे तथा रात्रिमान के आधे भाग पर रात्रि के 12 बजे माना जाता है। इस

समय को स्थानीय मध्यम समय (LMT) के नाम से जाना जाता है। किन्तु जैसा कि आप जान चुके हैं। किसी भी समयमान से साक्ष देशों में प्रतिदिन 6.00 बजे सूर्योदय नहीं होता। इसमें चर की प्रमुख भूमिका होती है। समस्त भारतवर्ष उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित होने से भारतवर्ष के प्रत्येक स्थान पर 31 मार्च से 22 सितम्बर तक दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती हैं। अतः इन दिनों 6.00बजे पूर्व सूर्योदय तथा सायं 6 बजे बाद सूर्यास्त होने पर ही दिन बड़ा और रात्रि छोटी हो सकती हैं। सामान्यतया मध्यमसूर्योदय प्रातः 6.00 बजे और मध्यम सूर्यास्त शाम 6.00 बजे के बिन्दु को चलायमान करने वाले इस समय संस्कार को ही चर (विचलित करने वाला) संस्कार कहते हैं।

इसका ज्ञान किसी भी स्थान के अक्षांश तथा उस दिन की क्रान्ति के जानने के बाद ही हो सकता है। किसी नगर का अक्षांश किसी नक्शे, एटलस, प्रमुख पंचांग आदि के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। चर बोधक सारिणी (आगे दी हुई है) में अभीष्ट अक्षांश एवं अभीष्ट क्रान्ति के कोष्टकों से चरमिनटादि प्राप्त होते हैं। सारिणी में निरवयव अक्षांश (केवल अंशमात्र) एवं निरवयव क्रान्त्यंश (केवल अंशमात्र) दिये गये हैं। अभीष्ट नगर का अक्षांश सावयव (अंश-कलात्मक) तथा अभीष्ट दिनाङ्क की सावयव क्रान्ति (अंश-कलात्मक) हो तो आगे पीछे के अक्षांश क्रान्ति के कोष्टकों से अनुपात द्वारा न्यूनाधिक करके सूक्ष्म मिनिट सैकिण्ड के रूप में चर प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा केवल निरवयव अक्षांश एवं क्रान्ति से सारिणी द्वारा प्राप्त चर मिनिट सैकिण्ड से भी काम चलाया जा सकता है, किन्तु यह चरमान कुछ स्थूल होगा।

त्रिकोणमिति की जानकारी हो तो संगणक (कैलुकेलेटर) की सहायता से सूक्ष्म चर की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अक्षांश की स्पर्शज्या × क्रान्ति स्पर्शज्या = चरज्या होती है। इसका चापांश बनाकर 4 से गुणा करने पर मिनिट सैकिण्डात्मक चर प्राप्त किया जा सकता है। यह सूक्ष्मतम चर होता है। संगणक का उपयोग न करने वाले लोग चर का ज्ञान निम्न प्रकार से भी कर सकते हैं।

$$\frac{\text{अक्षांश} \times \text{क्रान्ति} \times 2}{25} = \text{लब्धि} = \text{मिनिट सैकिण्डात्मक चर}$$ ।

जहां पर अक्षांश अंश कला में हो और क्रान्ति भी अंशकला मे हो तो सुविधा की दृष्टि से 30। कला के कम होने पर कलाकात्याग करके 30 से ऊपर होने पर अग्रिम अंश मानकर अथवा अक्षांश-क्रान्ति दोनों ही कलात्मक हों तो दोनों के कलामान को जोड़कर किसी एक में अंक वृद्धि कर ऊपर के नियम से चर की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह प्रकार स्थूल है। इस प्रकार से चर में 1-2 मिनट का नगण्य अन्तर आता है। अक्षांश एवं क्रान्ति अधिक होने पर अन्तर अधिक भी हो

सकता है। उदाहरण - दिनांक 16 जुलाई 2012 को हरिद्वार में चर ज्ञात करना अभीष्ट है। हरिद्वार का उत्तरी अक्षांश $29^0/56$ है। क्रान्ति सारिणी में 16 जुलाई को उत्तराक्रान्ति $21^0/20$ दी हुई है। क्रम से तीनों प्रकार से चरसाधन प्रदर्शित है-

(1) संगणक द्वारा - अक्षांशस्पर्शज्या × क्रान्तिस्पर्शज्या = चरज्या, चाप × 4 = चरमिनट सैकिण्ट = 0.575799907 × 0.390554085 = चरज्या (0.224881006) चाप बनाया चाप = 12.99588101, चाप को 4 से गुणा करने पर = 51.98352403 यह मिनटात्मक दशमलव में अभीष्ट चर प्राप्त हुआ । इसको मिनट-सैकिण्ड में संगणक की सहायता से परवर्तित करने पर 51 मिनट 59 सैकिण्ड अभीष्ट चर प्राप्त हुआ। यह सूक्ष्म है।

(2) इसी उदारण को वगैर संगणक के दिये हुए सूत्र के अनुसार देखें।

$$\frac{\text{अक्षांश} \times \text{क्रान्ति} \times 2}{25} = \frac{29^0/56 \times 21^0/20 \times 2}{25}$$

(यहां अक्षांश एक क्रान्ति दोनो ही अंश कला में हैं) अतः अक्षांश 290/56। के स्थान पर 300 अंश एवं क्रान्ति 21^0
$/20^0$ के स्थान पर केवल 21^0 अंश लेकर किया प्रदर्शित है -

$$\frac{30 \times 21 \times 2}{25} = \frac{6 \times 21 \times 2}{5} = \frac{252}{5}$$ = चर 50 मिनट 50 सेकेण्ड प्राप्त हुआ ।

यह कुछ स्थूल है, किन्तु अपनाया जा सकता है।

(3) सारिणी द्वारा अक्षांश 30^0 एवं क्रान्ति 21^0 के मध्य कोष्ठक मे चर 51 मि. 13 सै. है। यह भी स्थूल है।

अब सारिणी में अनुपात द्वारा सूक्ष्म चरसाधन का प्रयास प्रदर्शित है। अक्षांश में क्रान्ति की चरकला मिलाने पर अक्षांश की पूर्ण संख्या 30^0 मान ली। क्रान्ति 21^0-16 रह गई । 30^0 अक्षांश के सामने क्रान्ति 21^0 के नीचे चरमिनट 21 मि. 13 सै. 22^0 क्रान्ति कोष्ठक में 53मि. 57 सै. है। दोनों का अन्तर 53मि.-57सै. - 51मि.-13सै. = 2मि.-44सै. = 164सै. अब अनुपात किया 10 अंश अर्थात् 60 कला में 164 सै. की वृद्धि है तो 16 कला में क्या?

$$\frac{164 \times 16}{60} = \frac{656}{15}$$ = 44 सेकेण्ड

= 44 सै. 21^0 क्रान्ति से प्राप्त चर में जोड़ने पर 51मि.+ 13सै. + 0मि. - 44 सै. = 51मि. - 57सै. चर प्राप्त हो गया कैलकुलेटर द्वारा प्राप्त 51 मि. 59 सै. के लगभग तुल्य ही है।

अतः सारिणी के उपयोग से सामान्य जन सूक्ष्मासन्न चर प्राप्त कर सकते है। सारिणी उपलब्ध न होने की स्थिति मे स्थूल चर भी प्राप्त करके कार्य चलाया जा सकता है। यह अन्तर 1-2 मिनट तक नगण्य रहता है।

सूक्ष्म चर की जानकारी चर सारिणी द्वारा प्राप्त की जा सकती है। सारिणी द्वारा प्राप्त चर कैलुकेलेटर द्वारा चर प्राप्ति के तुल्य ही सिद्ध होता है। समस्त भारत वर्ष में चर (मिनिट सैकिण्डात्मक) को उत्तराक्रान्ति में 6 बजे में घटाने एवं दक्षिणा क्रान्ति में 6 बजे में जोड़ने पर स्थानीय मध्यममान से (धूप घड़ी का) सूर्योदय अभीष्टनगर का प्राप्त हो जाता है। किन्तु यह धूपघड़ी का भी स्थानीय मध्यम मान से प्राप्त होता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से क्रान्ति का सम्बन्ध सूर्य से है। नाड़ीवृत्त से सूर्य कितना उत्तर या दक्षिण भाग में स्थित है? इस ज्ञान को जानने या समझने का नाम ‘क्रान्ति’ है। हमारे ग्रन्थों में सूर्य की परमक्रान्ति २४ अंश मानी जाती है। क्रान्तिवृत्त का इतना तिर्यकत्व शकपूर्व २४०० वर्ष के लगभग था। वह क्रमश: न्यून होता जा रहा है। शक १८१८ के आरम्भ का उसका मान २३/२७/१० है अर्थात् सम्प्रति हमारे ग्रन्थों की क्रान्ति में ३२ अंश ५० कला अशुद्धि है। शक ४०० के आसन्न तिर्यकत्व लगभग २३/३९ था। भूमध्यरेखा (विषुवद् रेखा) से जिस प्रकार पृथिवी उत्तर-दक्षिण गोलार्द्ध में विभाजित है। आकाश में विषुवद् रेखा से ठीक ऊपर विषुवद् वृत्त (नाड़ी वृत्त) की कल्पना की गई है। नाड़ी वृत्त पर सूर्य सायन मेषादि एवं सायन तुलादि पर आता है। सायन मेषराशि में प्रवेश के समय (21 मार्च) रहता है। नाडी वृत्त पर क्रान्ति शून्य रहती है। नाडीवृत्त से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करके निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ता रहता है। नाडीवृत्त को अतिक्रान्तकर जितना उत्तर दिशा में सूर्य हटेगा। उतनी ही क्रान्ति होगी। सायन मेष प्रवेश काल से सायन मिथुनराशि के अन्त (21 मार्च से 21 जून तक) सूर्य उत्तर दिशा में बढ़ता जायगा। नाडी वृत्त से जितने अंश-कला दूर होगा। तत्तुल्य ही क्रान्ति होगी। 22 जून से (सायन कर्क प्रवेश काल से) उत्तर गोल में रहते हुए भी सूर्य लौटते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है। सायन कर्क से सायन कन्या राशि पर्यन्त रवि की क्रान्ति अपचीयमान होते हुए शून्य पर आ जाती है। 22 सितम्बर के बाद 23 सितम्बर से अर्थात् सायन तुलाराशि प्रवेश से सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में प्रवेश करके निरन्तर दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होता है। 23 सितम्बर से दक्षिणा क्रान्ति प्रारम्भ होकर धनु राशि के अन्त (21 दिसम्बर) तक निरन्तर दक्षिणा क्रान्ति सर्वाधिक होती है सायन मकरराशिप्रवेश अर्थात् 22 दिसम्बर से मीन राशि के अन्त तक यानि 20 मार्च तक

दक्षिणगोलस्थसूर्य की क्रान्ति अपचीयमान होकर शून्यतक आजाती है। 21 मार्च से पुनः सूर्य की क्रान्ति शून्य होकर उत्तरगोलार्द्ध की ओर सूर्य बढ़ता है। वहाँ से सूर्य की उत्तराक्रान्ति पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार 21 मार्च से 21 जून अधिकतम उत्तराक्रान्ति 22 जून से 22 सितम्बर तक अपचीयमान उत्तराक्रान्ति एवं 23 सितम्बर से दक्षिणाक्रान्ति का प्रारम्भ हो जाता है। क्रान्ति भेद से, अक्षांश की तरह सूर्योदय काल भी प्रभावित होता है। अक्षांश-क्रान्ति एक दिशा में होने से सूर्योदय जल्दी एवं दिनमान में वृद्धि तथा भिन्न दिशा में अक्षांश क्रान्ति होने से देर से सूर्योदय एवं दिनमान में ह्रास होता है। जिस प्रकार भूमध्य रेखा से विभाजित भूगोल उत्तर-दक्षिण भेद से दो भागों में विभाजित हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आकाश (खगोल) भी नाड़ीवृत्त से उत्तर, दक्षिण दिशा मे दो भागों में विभाजित है। भूमि पर उत्तर-दक्षिण दिशा के भेद से अक्षांशों की जानकारी पूर्व में दी जा चुकी है। आप अक्षांशों से पूर्णपरिचित हो चुके हैं। उत्तरी-दक्षिणी गोलार्द्धों में सूर्य की स्थिति के द्वारा आपलोग क्रान्ति से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।

मेषादि 12 राशियों में रहते हुए दीवाल घड़ी के पेण्डुलम की तरह सूर्य मेष से कन्याराशि तक 6 राशियों में नाडी वृत्त (विषुवद्वृत्त) से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़कर पुनः नाडीवृत्त पर लौटता है। यह स्थिति 21 मार्च से 22 सितम्बर तक रहती है। 23 सितम्बर से, मीन राशि पर्यन्त सूर्य क्रमशः दक्षिण दिशा में बढ़ता हुआ पुनः लौट कर 21 मार्च को नाड़ी वृत्त पर आ जाता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

क्रान्ति – नाड़ीवृत्त से सूर्य की याम्योत्तर स्थिति का नाम क्रान्ति है। यह दो प्रकार का होता है।

चर – गणितीय दृष्टि से द्युरात्रवृत्त में चरखण्ड होता है, चरखण्ड की ज्या को चरज्या कहते है। सामान्यतया मध्यमसूर्योदय प्रातः 6.00 बजे और मध्यम सूर्यास्त शाम 6.00 बजे के बिन्दु को चलायमान करने वाले समय संस्कार को ही चर (विचलित करने वाला) संस्कार कहते हैं।

अपम – क्रान्ति का दूसरा नाम अपम भी है।

परमक्रान्ति – सूर्य की परमक्रान्ति 24 अंश है।

सूक्ष्मासन्न – सूक्ष्म के नजदीक

आभाषिक – देखने में लगने वाली स्थिति

सूर्योदय – सूर्य का उदय सूर्योदय कहलाता है। सूर्य का चाक्षुषदृष्ट्या दर्शन सूर्योदय होता है।

सूर्यास्त – सूर्य का अदर्शन या अस्त हो जाना सूर्यास्त कहलाता है। अथवा सूर्य का क्षितिज के नीचे चले जाना सूर्यास्त कहलाता है।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. ख
5. ख
6. ग
7. क
8. क

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्रान्ति किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. चर से आप क्या समझते है?
3. सूक्ष्म क्रान्ति का साधन कैसे किया जाता है?
4. चर साधन कीजिये?
5. गणित ज्योतिष में क्रान्ति एवं चर की महत्ता बतलाइये?

इकाई - 5 ग्रहस्पष्टीकरण

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई–102 के चतुर्थ खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है - ग्रहस्पष्टीकरण। इससे पूर्व की ईकाइयों में आपने अहर्गण एवं मध्यम ग्रह, मन्दफल – शीघ्रफल, उदयान्तर, देशान्तर, भुजान्तर, क्रान्ति एवं चरान्तर आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब आप सिद्धान्त गणित ज्योतिष का मुख्य आधार ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। यह गणित ज्योतिष का मेरूदण्ड है। इसके ज्ञानाभाव में ज्योतिष शास्त्र में प्रवेश असम्भव है।

अत: आइए हम इस इकाई में ग्रहस्पष्टीकरण के बारे में जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? बता सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।
- ग्रहस्पष्टीकरण को उदाहरण द्वारा बतला सकेंगे।
- इसके महत्व का निरूपण कर सकेंगे।

5.3 ग्रहस्पष्टीकरण परिचय

ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदिन उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं। पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा

पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है।

भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है। यथा –

प्राङ्गमध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्।
तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये।।
द्राक्केन्द्रकेऽपि च विलोममतश्च शीघ्रम्।
सर्वं च तत्र विदधीत भवेत् स्फुटो ऽसौ।।

इन विधि से साधित ग्रह आधुनिक ग्रहों से थोड़े ही अन्तरित होते है। ग्रहसाधन की इस फल संस्कार प्रणाली से सिद्ध है कि ताराग्रहों के लिए पहले शीघ्रफल संस्कार करके ही भारतीयों ने मन्दफल संस्कार का आविष्कार किया था।

सूर्यसिद्धान्त में कहे गये भौमादि (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि) पंचतारा ग्रहस्पष्टीकरण –

मूलश्लोक -

मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोभौमादीनामथोच्यते।
शैघ्रयं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रयं चत्वार्यनुक्रमात्।।
मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेव च।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा मन्दफल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते है, परन्तु मंगल आदि पाँच ग्रहों में शीघ्रफल का एक संस्कार करने के पीछे मन्दफल के दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्रफल का संस्कार करना होता है।

मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटा कर शीघ्र केन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाल कर उस शीघ्रफल का आधा मध्यम ग्रह में जोड़े (यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशि से कम हो) और घटावे (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक हो) जोड़ने या घटाने से जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है। इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से घटाकर, शेष को मन्द केन्द्र समझ कर मन्दफल बनावे। इस मन्द फल का आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है। दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से फिर घटावे और शेष को दूसरा मन्दकेन्द्र मानकर दूसरा मंदफल बनाना चाहिये। इस मन्दफल को मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटने से जो आता है वही मन्दस्पष्ट ग्रह कहलाता है। मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्रकेन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफल को मन्दस्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो कुछ शेष आता है वही **'स्पष्टग्रह'** कहलाता है।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान जानने के लिए मन्दफल का संस्कार करने की रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तव में चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिण्ड है कि इस पर सभी ग्रहों का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गति में बहुत सी भिन्नतायें उत्पन्न हो जाती है। इसलिए आजकल छोटे-छोटे कोई ४० संस्कार करने से चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारों में पाँच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। **ग्रहस्पष्टीकरण नियम –**

शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है।

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = $\frac{\text{मध्यम ग्रह} \pm \text{शीघ्रफल प्रथम}}{२}$

मन्दोच्च – प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल है।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह –

$$= \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{मन्दफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{(प्रथम) शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{(प्रथम) मन्दफल}}{२}$$

मन्दोच्च – दूसरा संस्कारयुक्त मध्यम ग्रह = दूसरा संस्कृत मन्दकेन्द्र जिसका मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है।

मन्दस्पष्टग्रह = मध्यमग्रह ± दूसरा संस्कृत मन्दफल।

शीघ्रोच्च – मन्द स्पष्ट ग्रह = दूसरा शीघ्रकेन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्द स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्र फल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल

यह तो सूर्यसिद्धान्त के शब्दों में स्पष्ट ग्रह जानने की रीति हुई। परन्तु व्यवहार में यह जटिल है। अत: महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा बतायी गयी विधि सरल है जिसका यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ –

पहली परिभाषा मन्दोच्च – मध्यम ग्रह = मन्दकेन्द्र

दूसरी परिभाषा शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र से जो शीघ्रफल निकलता है वह पहला शीघ्रफल है। .... १ समीकरण

$$\text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \quad \text{............ २ समीकरण}$$

प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च - प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{(मध्यम ग्रह)} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$$

$$= \text{(मन्दोच्च - मध्यम ग्रह)} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}$$

$$= \text{मन्द केन्द्र} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \quad \text{............. ३ समीकरण}$$

इससे प्रकट होता है कि प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए समीकरण २ की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्दकेन्द्र में पहले शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ देने से ही काम चल जायेगा। इससे जो मन्दफल बनाया जायेगा वही पहला मन्दफल या प्रथम संस्कृत मन्दफल होगा।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}$$

= मध्यम ग्रह

$$= \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२} \quad \text{....... समीकरण ४}$$

दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र

= मन्दोच्च – दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मन्दोच्च (मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२})$$

(मन्दोच्च – मध्यम ग्रह)

$$= \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२})$$

$$= (\text{ मन्दकेन्द्र} \pm \frac{\text{प्रथम शीघ्रफल}}{२}) \pm \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्र} = \frac{\text{प्रथम मन्दफल}}{२} \quad \text{समीकरण ५}$$

जिससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे। इसलिए समीकरण ४ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मन्द केन्द्र से जो मन्दफल बनाया जायेगा वही दूसरा मन्दफल होगा।

मन्दस्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल .... समीकरण ६

दूसरा शीघ्र केन्द्र = शीघ्रोच्च – मन्दस्पष्ट ग्रह

= शीघ्रोच्च - (मध्यम ग्रह) ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल

= शीघ्रकेन्द्र ± दूसरा मन्दफल .... समीकरण ७

इससे यह सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्र केन्द्र जानने के लिए, शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण ६ की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल बनेगा वही दूसरा शीघ्र फल है।

स्पष्ट ग्रह = मन्दस्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मन्दफल ± दूसरा शीघ्रफल .... (८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रह में दूसरे मन्दफल को और दूसरे शीघ्रफल को बीजगणित के अनुसार योग करें अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़े और जो ऋणात्मक हो उसको घटायें। दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल समीकरण ५ और ७ से समझना चाहिए।

संक्षेप में आप इस प्रकार नियम को समझ सकते हैं –

1. शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर मन्दकेन्द्रों में (बीजगणित के अनुसार) जोड़ दे तो प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र आ जायेगा। इसी का मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल या पहला मन्दफल है।
2. प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्रों में पहले मन्दफल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दे तो दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र आ जोयगा। इसी का मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल या दूसरा मन्दफल है।
3. शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्दफल चिह्न उलट कर जोड़ दे तो संस्कृत शीघ्र केन्द्र आयेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।
4. मध्यम ग्रह में दूसरा मन्दफल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटें जोड़ने पर स्पष्ट ग्रह आ जाता है।

ग्रहलाघवीय रीति के अनुसार स्पष्ट मंगल ग्रह का साधन –

कल्पना किया कि मध्यम चन्द्रमा के अनुसार मध्यम मंगल के राश्यादि मान - ०२।०६।०६। ४८,
मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादि ग्रहलाघवीय श्लोक के अनुसार मंगल का शीघ्रफल यहाँ साधन करते हैं –

मध्यम सूर्य - ११।१९।२६।५८
मध्यम मंगल - - ०२।०६।०६।४८
०९।१३।०।१० मंगल का शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्र छ: राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से उसे घटाने पर –

१२।००।००।००
\- ०९।१३।२०।१०
०२।१६।३९।५०

इसे अंशादि बनाकर पन्द्रह सं भाग देकर लब्धांकतुल्य शीघ्रफल प्राप्त होता है।

१५) ७६। ३९।५० (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्क २७९ आया।

७५

१ ।३९।५० शेष।

लब्धशीघ्राङ्क से अग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ का अन्तर करने पर ४६ आया इसे शेष से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०१।३९।५० × ४६ = ७६।३२।२०

१५) ७६।३२।२० (०५

७५

०१ × ६० + ३२ = ९२

१५) ९२ । २० (०६

९०

०२ × ६० + २० = १४०

१५) १४० (०९

१३५

१५

२७९ । ००। ००

\+ ०५ ।०६।०९

२८४ । ०६ । ०९ शीघ्रफल

इसे १० से भाग देने पर - १०)२८४।०६।१९ (२८

२८०

०४ × ६० + ६ = २४६ । ०९

१०) २४६।०९ (२४

२४०

६ × ६० + ९ = ३६९

१०) ३६९ (३६ + १

३६०

यहाँ मंगल का शीघ्रफल २८।२४।३७ तथा शीघ्रफलार्द्ध १४।१२।१८ आया।

शीघ्रकेन्द्र का तुलादि छ: राशियों में होने के कारण ऋणं किया। अत: मध्यम मंगल में घटाने पर –

मध्यम मंगल का राश्यादिमान - ०२।०६।०६।४८

शीघ्रफलार्द्ध का राश्यादि मान - ००।१४।१२।२८

०१।२१।५४।३० शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल हुआ।

मंगल का मन्दफल साधन करते हैं –

मंगल का मन्दोच्चराश्यादि मान - ०४।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत मंगल - ०१।२१।५४।३०

०२।०८।०५।३० मन्दकेन्द्र।

इसे १५ से भाग देकर लब्धांकतुल्य मन्दांक ग्रहण करते है।

१५) ६८ ।०५ ३० (०४ लब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्क १०९ हुआ।

६०

०८।०५।३० - शेष

लब्ध मन्दांक से अग्रिम मन्दांक का अन्तर करने पर १२४ आया। शेष में १५ से गुणा कर १५ से भाग देने पर -

०८।०५।३० × १५ = १२१। २२।३० (०८

१५) १२१ ।२२।३० (०८

१२०

०१ × ६० + २२ = ८२

१५) ८२ ।३० (०५

७५

०७ × ६० + ३० = ४५०

१५) ४५० (३०

४५०

लब्धफल को जोड़ने पर –

१०९।००।००

\+ ०८।०५।३०

११७।०५।३० शीघ्रफल।

इसे १० से भाग देने पर

१०) ११७ ।०५।३० (४२

११०

०७ × ६० + ०५ = ४२५

१०) ४२५ ।३० (४२

४२०

०५ × ६० + ३० = ३३०

१०) ३३० (३३

३३०

मंगल का मन्दफल ११। ४२।३३। मन्दकेन्द्र मेषादिषड् राशियों में होने के कारण धन संस्कार किया

मध्यम मंगल राश्यादि - ०२।०६।०६।४८

मंगल का मन्दफल - ००। ११।४२।३३

०२।१७।४९।२१ मन्दस्पष्ट मंगल हुआ।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात् , अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।१३।२०।१०

मन्दफलराश्यादि: - ००।११।४२।३३

०९ । ०१।३७।३७ मंगल का द्वितीयशीघ्रकेन्द्र

द्वितीयशीघ्रकेन्द्र छ: राशि से अधिक होने के कारण चक्र में से घटाने पर -

१२।००।००।००

- ०९।०१।३७।३७

०२।२८।२२।२३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८८।२२।२३ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २७९ लब्धम्।

७५

१३।२२।२३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३२५ अनयोरन्तरं ४६ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१३।२२।२३ × ४६ = ६१५ ।०९।३८

१५) ६१५ ।०९।२३ (४१

६१५

०० × ६० + ०९ = ०९

१५) ०९ ।२३ (००

× ६० + २३ = ५६३

१५) ५६३ (३७ + १

५५५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२७९।००।००

+ ४१। ००।३८

३१०। ००।३८ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ३१० ।००।३८ (३१
 ३१०
 ०० × ६० + ०० = ००
१०) ०० ।३८ (००
 × ६० + ३८ = ३८
१०) ३८ (३ + १
 १०
 २८

यहाँ मंगल का द्वितीयशीघ्रफल ३१।००।०४। शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।
अत: मन्दस्पष्ट मंगल का राश्यादि मान = ०२। १७। ४९। २१
द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि = - ०१।०१।००।०४
०१।१६।४९।१७ स्पष्ट मंगल सिद्ध हुआ।

बोध प्रश्न –

1. ज्योतिष शास्त्र मुख्यतया किस पर आधारित है?
   क. नक्षत्रों पर ख. ग्रहों पर ग. राशियों पर घ. भूमण्डल पर
2. सूर्य एवं चन्द्र ग्रह के स्पष्टीकरण में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. शीघ्रफल की ग. मन्दफल-शीघ्रफल की घ. कोई नहीं
3. मध्यम ग्रह में मन्दोच्च घटाने पर क्या आता है?
   क. शीघ्रकेन्द्र ख. मन्दकेन्द्र ग. प्रतिवृत्त घ. कक्षावृत्त
4. आधुनिक मतानुसार ग्रह किस वृत्त में घूमते है?
   क. दीर्घवृत्त में ख. कक्षावृत्त में ग. क्रान्तिवृत्त में घ. प्रतिवृत्त में
5. ग्रहों की कितनी प्रकार की गति होती है।
   क. ५ ख.६ ग.७ घ.८
6. भास्कराचार्य जी ने ग्रहसाधन हेतु किसकी सारिणी का उपयोग करने के लिए कहा है?
   क. ब्रह्मगुप्त की ख. मकरन्द की ग. लोग सारिणी की घ. कोई नहीं
7. ज्या-चाप से रहित ग्रहसाधन की विधि किस ग्रन्थ में उद्धृत है।
   क. ग्रहलाघव ख. सिद्धान्तशिरोमणि ग. केतकीग्रहगणित घ. सूर्यसिद्धान्त
8. भौमादि पंचताराग्रह साधन में किसकी आवश्यकता होती है?
   क. मन्दफल की ख. मन्दफल-शीघ्रफल ग. शीघ्रफल घ.शीघ्रकेन्द्र

ग्रहलाघवीय रीति से स्पष्ट बुध ग्रह का साधन -

बुधकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १२९।२३।३५ (८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: २१२ लब्धम्।

१२०

०९।२३।३५ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं १९५ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०९।२३।३५ × १७ = १५९ ।३९।५५

१५) १५९ ।३९।५५ (१०

१५०

०९ × ६० + ३९ = ५७९

१५) ५७९ ।५५ (३८

५७०

९ × ६० + ५५ = ५९५

१५) ५९५ (३३ +

५९५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२ । ००। ००

१० । ३८ । ३३

२०१ । २१ । २७ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २०१ ।२१।२७ (२०

२००

०१ × ६० + २१ = ८१

१०) ८१ ।२७ (०८+१

८०

अतो बुधशीघ्र फलं २०।०८।०९। शीघ्रफलार्द्धं १० ।०४। ०४ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमबुधेयोज्यते तदा –

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।१०।०४।०४

११।२९।३१।०२ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: स्यात्।

बुधस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

बुधमन्दोच्चराश्यादि: - ०७।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ११।२९।३२।०२

०७।००।२८।५८ मन्दकेन्दम्

मन्दकेन्द्रस्य रसैर्विशोध्य: षड्भाल्पं क्रियते –

०७।००।२८।५८

०६।००।००।००

०१।००।२८।५८

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ६०।२८।५८ (०४ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २८ लब्धम्।

६०

०।२८।५८ परिशेषं।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३३ अनयोरन्तरं इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

००।२८।५८ × ५ = ०२ ।२४।५०

१५) २ ।२४।५० (००

× ६० + २४ = १४४

१५) १४४ ।५० (०९

१३५

९ × ६० + ५० = ५९०

१५) ५९० (३९

५८५

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

२८ । ००। ००

००। ०९ । ३९

२८ । ०९ । ३९ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) २८ ।०९।३९ (०२

२०

०८ × ६० + ९ =४८९

१०) ४८९ ।३९ (४८

४८०

०९ × ६० + ३९ = ४७९

१०) ४७९ (४७ + १

४७०

अतो बुधमन्दफलं ०२।४८।४८। मन्दकेन्द्रे तुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।

मध्यमबुधराश्यादि: - ११।१९।२६।५८

बुधमन्दफलं - ००।०२।४८।४८

११।१६।३८।१० मन्दस्पष्टबुध: स्यात् ।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।०९।२३।३५

मन्दफलराश्यादि: + ००।०३।१७।०२

४।१२।४०।३७ बुधस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १३२।४०।३७ (०८ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: २१२ लब्धम्।

१२०

१२।४०।३७ परिशेषं।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् १९५ अनयोरन्तरं १७ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१२।४०।३७ × १७ = २१५ ।३०।२९

१५) २१५ ।३०।२९ (१४

२१०

५ × ६० + ३० = ३३०

१५) ३३० ।२९ (२२

३३०

०० × ६० + २९ = २९

१५) २९ (१ + १

१५

१४

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

२१२ । ००। ००

१४ । २२ । ०२

१९७ । ३७ । ५८ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) १९७ ।३७।५८ (१९

१९०

०७ × ६० + ३७ =४५७

१०) ४५७ ।५८ (४५

४५०

०७ × ६० + ५८ = ४७८

१०) ४७८ (४७ + १

४७०

अतो बुध द्वितीयशीघ्रफलं १९।४५।४८ । शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मन्दस्पष्टबुधराश्यादि: - ११।१६।३८।१०

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००। १९।४५ ।४८

००। ०६। २३ । ५८ स्पष्टबुध: ।

स्पष्ट गुरु ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण गुरोशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८

मध्यमगुरू: - ०४।२१।४७।५१

०६।२७।३९।०७ गुरो: शीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००

०६।२७।३९।०७

०५।०२।२०।५३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १५२। २०।५३ (१० लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम् ।

१५०

२ ।२०।५३ परिशेषम् ।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं ३० इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते ।

०२।२०।५३ × ३० = ७०।२६।३०

१५) ७०।२६।३० (०४

६०

१० × ६० + २६ = ६२६

१५) ६२६ । ३० (४१

६१५

११ × ६० + ३० = ६९०

१५) ६९० (४६

६९०

६६ । ००। ००

- ०४ ।४१।४६

६१ । ११ । १४ शीघ्रफलम्

इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)६१।११।१४ (०६

६०

०१ × ६० + १८ = ७८ । १४

१०) ७८।१४ (०७

७०

८ × ६० + १४ = ४९४

१०) ४९४ (४९

४९०

अतो कुज शीघ्रफलं ०६।०७।४९ शीघ्रफलार्द्ध ०३।०३।५४

शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्। अतो मध्यमकुजाविशोध्यते तदा –

मध्यमगुरोराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१

शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०३।०३।५४

०४।१८।४३।५७ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतगुरू: स्यात्।

गुरोर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

गुरूमन्दोच्चराश्यादि: - ०६।००।००।००

शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतकुज: - ०४।१८।४३।५७

०१।११।१६।०३ मन्दकेन्दम्

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।

१५) ४१ ।१६। ०३ (०२ लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: २७ लब्धम्।

३०

११।१६।०३ परिशेषं

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं ३९ अनयोरन्तरं १२ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

११।१६।०३ × १२ = १३५। १२।३६

१५) १३५ ।२१।३६ (०९

१३५

००× ६० + १२ = १२

१५) १२ ।३६ (००

× ६० + ३६ = ७५६

१५) ७५६ (५०

७५०

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

२७।००।००

\+ ०९।००।५०

३६।००।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) ३६ ।००।५० (०३

३०

०६ × ६० + ०० = ३६०

१०) ३६० । ० (३६

३६०

०० × ६० + ५० = ५०

१०) ५० (०५

५०

अतो गुरोमन्दफलं ०३। ३६ । ०५ । मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमकुजराश्यादि: - ०४।२१।४७।५१

कुजमन्दफलं - ००। ०३।३६।०५

०४।२५।२३।५६ मन्दस्पष्टगुरू: स्यात्।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात्, अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०६।२७।३९।०७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०३।३६।०५

०६ । २४।०३।०२ गुरो द्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००
०६।२४।०३।०२
०५।०५।५६।५८
इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।
१५) १५५।५६।५८ (१० लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ६६ लब्धम्।
१५०
०५।५६।५८ परिशेषं।
लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ३६ अनयोरन्तरं २० इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।
०५।५६।५८ × २० = ११८ ।५९।२०
१५) ११८ ।५९।२० (०७
१०५
१३ × ६० + ५९ = ८३९
१५) ८३९ ।२० (५५
८२५
१४ × ६० + २० = ८६०
१५) ८६० (५७
८५५
लब्धफलं संयोज्यते तदा -
६६ । ००। ००
०७ । ५५ । ५७
५८ । ०४ । ०३ शीघ्रफलं।
इमां दशभिर्विभज्यते तदा –
१०) ५८ ।०४।०३ (०५
५०
०८ × ६० + ०४ = ४८४
१०) ४८४ ।०३ (४८
४८४
४ × ६० + ३ = २४३
१०) २४३ (२४
२४०
अतो गुरूद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४८।२३। शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्।
मन्दस्पष्टगुरूराश्यादि: - ०४। २५। २३। ५६

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४८।२४

०४।१९।३५।३२ स्पष्टगुरो: स्यात् ।

स्पष्ट शुक्र ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शुक्रस्य शीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३

इमां लवादि कृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) १४२।३७।३३ (९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ४६१ लब्धम्।

१३५

०७।३७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते लब्धफलं विशोध्यते तदा –

०७।३७।३३ × १८ = १३७।१५।५४

१५) १३७ ।१५।५४ (०९

१३५

०२ × ६० + १५ = १३५

१५) १३५ ।५४ (०९

१३५

०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १

४५

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ००। ००

०९ । ०९ । ०४

४५१ । ५० । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५१ ।५०।५६ (४५

४५०

०१ × ६० + ५० = ११०

१०) ११० । ५६ (०५+१

५०

अतो शुक्रशीघ्र फलं ४५।११।०६। शीघ्रफलार्द्धं २२।३५। ३३ जायते। शीघ्रकेन्द्रस्य मेषादि षड्भे त्वाद् धनं स्यात्। अतो मध्यमशुक्रेयोज्यते तदा –

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८
शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।२२।३५।३३
००।१२।०२।३१ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशुक्र: स्यात्।

शुक्रस्य मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

शुक्रमन्दोच्चराश्यादि: - ०३।००।००।००
शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतबुध: - ००।१२।३५।३३
०२।१७।२४।२७ मन्दकेन्दम्

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते ।

१५) ७७।२४।२७ (०५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं मन्दाङ्का: १५ लब्धम्।
७५
०२।२४।२७ परिशेषं।

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १५ अनयोरन्तरं ०० इत्यत्र मन्दाङ्का: १५ एव स्यात्। इमां दशभिर्विभज्यते

१०) १५ ।००।०० (०१
१०
५ × ६० + ०० = ३००

१५) ३०० । ०० (३० ।०
३००
अतो शुक्रमन्दफलं ०१।३०।०० मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमशुक्रराश्यादि: - ११।१९।२६।५८
शुक्रमन्दफलं - ०० ।०१।३०।००
११।२०।५६।५८ मन्दस्पष्टशुक्र: स्यात्।

द्वितीयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या संस्क्रियते। अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात्। यदि पूर्वं ऋणं तदा धनं स्यात्। यतो हि मन्दफलं पूर्वं ऋणं स्यात्। अतो इत्यत्र धनं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०४।२२।३७।३३
मन्दफलराश्यादि: + ००।०१।३०।००
४।२१।०७।३३ शुक्रस्यद्वितीयशीघ्रकेन्द्रं।

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते ।

१५) १४१।०७।३३ (०९ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्रांका: ४६१ लब्धम्।

१३५

०६।०७।३३ परिशेषं।

लब्धशीघ्रङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कम् ४४३ अनयोरन्तरं १८ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

०६।०७।३३ × १८ = ११० ।१५।५४

१५) ११० ।१५।५४ (०७

१०५

५ × ६० + १५ = ३१५

१५) ३१५ ।५४ (२१

३१५

०० × ६० + ५४ = ५४

१५) ५४ (३ + १

४५

०९

लब्धफलं विशोध्यते तदा -

४६१ । ००। ००

०७ । २१ । ०४

४५३ । ३८ । ५६ शीघ्रफलं।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ४५३ ।३८।५६ (४५

४५०

०३ × ६० + ३८ = २१८

१०) २१८ ।५६ (२१

२१०

०७८× ६० + ५६ = ५३६

१०) ५३६ (५३ + १

५३०

अतो शुक्र द्वितीयशीघ्रफलं ४५।२१।५४। शीघ्रकेन्द्रस्यमेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात्।

मन्दस्पष्टशुक्रराश्यादि: - ११।२०।५६।५८

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ०१। १५।२१ ।५४

०१। ०६। १८ । ५२ स्पष्टशुक्र:।

स्पष्ट शनि ग्रह का साधन -

'भौमार्किज्यविहीनमध्यमरवि: स्यात्स्वाशुकेन्द्रं तु विद्' इत्यादिग्रहलाघवीय श्लोकानुसारेण शनिशीघ्रफलं साध्यते तद्यथा –

मध्यमरवि: - ११।१९।२६।५८
मध्यमशनि: - ०२।१७।१५।३१
०९।०२।११।२७ शनिशीघ्रकेन्दम्

शीघ्रकेन्द्रस्य षड्भादधिकत्वाच्छीघ्रकेन्द्रं चक्राद्विशोधयेत् –

१२।००।००।००
०९।०२।११।२७
०२।२७।४८।३३

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८७। ४८।३३ (५ लब्धाङ्क तुल्य शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम्।
७५
१२ ।४८।३३ परिशेषम्।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमा परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१२।४८।३३ × ३ = ३८।२५।३९
१५) ३८।२५।३९ (०२
३०
०८ × ६० + २५ = ५०५
१५) ५०५। ३९ (३३
४९५
१० × ६० + ३९ = ६३९
१५) ६३९ (४२ + १
६३०

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

५४। ००। ००
- ०२ ।३३।४३
५६। ३३। ४३ शीघ्राङ्कम्।

इमां इशभिर्विभज्यते तदा - १०)५६।३३।४३ (०५
५०
०६ × ६० + ३३ = ३९३। ४३

१०) ३९३।४३ (३९
३९०
०३ × ६० + ४३ = १२३
१०) १२३ (१२
१२०

अतो कुज शीघ्रफलं ०५।३९।१२ शीघ्रफलार्द्ध ०२।४९।३६

शीघ्रकेन्द्रस्यतुलाभिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात्। अतो मध्यमशनिर्विशोध्यते तदा –

मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१
शीघ्रफलार्द्धराश्यादि: - ००।०२।४९।३६
०२।१४।२५।५५ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: स्यात्।

शनिर्मन्दफलं साध्यते तद्यथा –

शनिमन्दोच्चराश्यादि: - ०८।००।००।००
शीघ्रफलार्द्धसंस्कृतशनि: - ०२।१४।२५।५५
०५।१५।३४।०५ मन्दकेन्द्रम्।

०६।००।००।००
०५।१५।३४।०५
००।१४।२५।५५

इमां पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्कतुल्यमन्दाङ्का: गृह्यते।

१५) १४ ।२५। ५५ (० लब्धाङ्त्तुल्यमन्दाङ्का: ०० लब्धम्।
००
१४।२५।५५ परिशेषं

लब्धमन्दाङ्कादग्रिममन्दाङ्कं १९ अनयोरन्तरं १९ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते

१४।२५।५५ × १९ = २७४। १२।२५
१५) २७४ ।१२।२५ (१८
२७०
०४ × ६० + १२ = २५२
१५) २५२ ।२५ (१६
२४०

१२ × ६० + २५ = ७४५
१५) ७४५ (४९ + १
७३५

लब्धफलं संयोज्यते तदा –

००।००।००

\+ १८।१६।५०

१८।१६।५० मन्दफलांक: ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा -

१०) १८ ।१६।५० (०१

१०

०८ × ६० + १६ = ४९६

१०) ४९६ । ५० (४९

४९०

०६ × ६० + ५० = ४१०

१०) ४१० (४५

४१०

अतो शनिमन्दफलं ०१। ४९ । ४१ मन्दकेन्द्रे मेषादिषड्भे त्वाद् धनं स्यात् ।

मध्यमशनिराश्यादि: - ०२।१७।१५।३१

शनिमन्दफलं - ००। ०१।४९।४१

०२।१९।०५।१२ मन्दस्पष्टशनि: स्यात्।

द्वितयशीघ्रफलसाधनार्थं प्रथमशीघ्रकेन्द्राद् मन्दफलं विलोमपद्धत्या: संस्क्रियते । अर्थात् पूर्वं धनं चेद् ऋणं स्यात् । यतो हि मन्दफलं पूर्वं धनं स्यात् , अतो इत्यत्र ऋणं क्रियते।

शीघ्रकेन्द्रराश्यादि: - ०९।०२।११।२७

मन्दफलराश्यादि: - ००।०१।४९।४१

०९ । ००।२१।४६ शनिद्वितीयशीघ्रकेन्द्रम्

द्वितीयशीघ्रकेन्द्रं षड्भादधिकत्वाच्चक्राद्विशोध्यते -

१२।००।००।००

०९।००।२१।४६

०२।२९।३८।१४

इमां लवादिकृत्वा पञ्चदशभिर्विभज्यलब्धाङ्क तुल्यशीघ्रफलं लभ्यते।

१५) ८९।३८।१४ (५ लब्धाङ्क तत्तुल्यं शीघ्राङ्का: ५४ लब्धम्।

७५

१४।३८।१४ परिशेषं।

लब्धशीघ्राङ्कादग्रिमशीघ्राङ्कं ५७ अनयोरन्तरं ०३ इमां परिशेषेण गुण्य: पञ्चदशभिर्विभज्यते।

१४।३८।१४ × ३ = ४३ ।५४।४२

१५) ४३ ।५४।४२ (०२

३०

१३ × ६० + ५४ = ८३४

१५) ८३९ ।२० (५५

८२५

०९ × ६० + ४२ = ५८२

१५) ५८२ (३८ + १

५७०

१२

लब्धफलं संयोज्यते तदा -

५४ । ००। ००

०२ । ५५ । ३९

५६ । ५५ । ३९ शीघ्रफलं ।

इमां दशभिर्विभज्यते तदा –

१०) ५६ ।५५।३९ (०५

५०

०६ × ६० + ५५ = ४१५

१०) ४१५ ।०६ (४१

४१०

५ × ६० + ३९ = ३३९

१०) ३३९ (३३

३३०

अतो शनिद्वितीयशीघ्रफलं ०५।४१।३४ । शीघ्रकेन्द्रस्यतुलादिषड्भे त्वाद् ऋणं स्यात् ।

मन्दस्पष्टशनिराश्यादि: - ०२। २९। ०५। १२

द्वितीयशीघ्रफलराश्यादि: - ००।०५।४१।३४

०२।१३।२३।३८ स्पष्टशनि: स्यात् ।

इस प्रकार ग्रहलाघवीय रीति से भौमदि पंचताराग्रहों का गणितीय साधन किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी स्व-स्व सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रहों का अपनी-अपनी रीति के अनुसार ग्रहसाधन किया है।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह को भूमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है तदनुसार उसकी एक दिन की जो मध्यम गति आती है, आकाश में प्रतिदनि उतनी ही नहीं बल्कि उससे कुछ न्यून या अधिक का अनुभव होता है। इस कारण मध्यम गति द्वारा इष्टकाल में उसकी स्थिति जहाँ आती है वहाँ वह उस समय नहीं दिखाई देता। आकाश में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली गतिस्थिति को स्पष्ट गतिस्थिति कहते हैं। गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है। सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र ग्रहों पर आधारित है। अत: ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिषशास्त्र का प्राण है। ग्रहों का स्पष्टीकरण गणित ज्योतिष के अन्तर्गत करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान कोपर्निकस द्वारा आविष्कृत और केप्लर, न्यूटन इत्यादिकों द्वारा दृढ़ता से स्थापित ग्रहगति के सम्प्रति प्राय: सर्वमान्य बने हुए वास्तव सिद्धान्तों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने का एक मुख्य कारण है। वह यह कि पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा पृथ्वी की प्रदक्षिणा दीर्घवृत्त में करते हैं। अन्य ग्रहों की मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होने के कारण दो हैं। एक तो यह कि बुधादि पाँच ग्रह सूर्य के चारों और दीर्घवृत्त में घूमते हैं इसलिए उनके कक्षावृत्तों में मध्यमगति से स्पष्टगति भिन्न होती है और दूसरा कारण यह है कि सूर्यसम्बन्धी यह भिन्न स्थिति हम पृथ्वी पर से देखनेवालों को और भी भिन्न दिखाई देती है, क्योंकि सूर्य के चारों ओर घूमते रहने के कारण आकाश में पृथ्वी का स्थान सदा बदलता रहता है।

यद्यपि भास्कराचार्य जी ने भौमादि ग्रहों के स्पष्ट स्थानों के लिए पहले मन्दफल फिर शीघ्रफल संस्कार करने की व्यवस्था की है किन्तु केवल एक बार ही इन संस्कारों के द्वारा आकाश में ग्रहों के स्पष्ट स्थान उपलब्ध न हो सके, इसलिए इस प्रक्रिया में संशोधन स्वरूप इन फलों का दो बार संस्कार किया गया। पहले मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उसमें मन्दफल का आधा संस्कृत कर, इस पर से फिर मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल का मध्यम में संस्कार कर उस मन्दस्पष्ट ग्रह से शीघ्र केन्द्र बनाकर तब पूरे शीघ्रफल का संस्कार उस मन्दस्पष्ट में करने पर भूदृश्य स्पष्टग्रह होता है। सूर्यसिद्धान्त में यही प्रक्रिया लिखी है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की सारिणी के अनुसार असकृत् (अनेक बार) मन्दफल और शीघ्रफल का संस्कार कहा है। ग्रहगणित और उनकी आकाशीय स्थिति की समता के लिए अनेक भारतीय आचार्यों ने ग्रहवेध के द्वारा इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किया है। उनमें ब्रह्मगुप्त, केशव और उनके पुत्र गणेश दैवज्ञ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रहसाधन में एक तृतीय सारणि का आश्रय लिया है। उसके अनुसार पहले

मध्यम ग्रह में शीघ्रफल का आधा संस्कार कर फिर उस पर से मन्दफल लाकर इस पूरे मन्दफल को मध्यम ग्रह में संस्कृत कर उस मन्दस्पष्ट से शीघ्रकेन्द्र लाकर उस पर से लाये गये शीघ्रफल का संस्कार मन्दस्पष्ट में करने पर स्पष्ट ग्रह होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंच ताराग्रह – भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि को पंचतारा ग्रह कहते है।

ग्रहस्पष्टीकरण – गणितागत मध्यम गतिस्थिति द्वारा ग्रह की स्पष्ट गतिस्थिति का निरूपण ही **'ग्रहस्पष्टीकरण'** है। ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्। अर्थात् ग्रहों की गणितीय स्पष्टीकरण की क्रिया ग्रहस्पष्टीकरण कहलाती है।

गणितागत – गणितीय क्रिया के द्वारा आया हुआ।

वेधोपलब्ध – वेध-यन्त्रों के द्वारा वेधक्रियोपरान्त उपलब्ध।

आसन्न – सूक्ष्म के नजदीक

आभाषिक – देखने में लगने वाली स्थिति।

रेखादेशीय – लंकादेशीय। जहाँ का अक्षांश शून्य हो, उसे रेखादेश कहते है। यथा – लंकादि।

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त – महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय/ कपिलेश्वर शास्त्री

भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्णदीक्षित

ग्रहगति का क्रमिक विकास – श्रीचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ. सत्यदेव शर्मा

ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. घ
6. क

7. क

8. ख

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहस्पष्टीकरण किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. ज्योतिष शास्त्र में ग्रहस्पष्टीकरण की क्या आवश्यकता है?
3. ग्रहलाघव के अनुसार स्पष्टसूर्यग्रह का साधन कीजिये?
4. गुरू एवं शुक्र ग्रह का गणितीय साधन कीजिये?
5. सूर्यसिद्धान्त में कथित ग्रहस्फुटीकरण संस्कार का विवेचन कीजिये?